॥ श्रीहरिः ॥

सचित्र

श्रीदुर्गासप्तशती

हिन्दी अनुवाद तथा पाठ-विधि-सहित

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

अनुवादक—

पाण्डेय पं० श्रीरामनारायणदत्तजी शास्त्री 'राम'

सं० ------ ----- पुनर्मुद्रण -----
कुल मुद्रण ------

❖ **मूल्य— ---- रु०**
(---- रुपये)

ISBN ---------------

प्रकाशक एवं मुद्रक—
गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५
(गोबिन्दभवन-कार्यालय, कोलकाता का संस्थान)
फोन : **(०५५१) २३३४७२१;** फैक्स : **(०५५१) २३३६९९७**
e-mail : **booksales@gitapress.org** website : **www.gitapress.org**

॥ ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

प्रथम संस्करणका निवेदन

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥

दुर्गासप्तशती हिंदू-धर्मका सर्वमान्य ग्रन्थ है। इसमें भगवतीकी कृपाके सुन्दर इतिहासके साथ ही बड़े-बड़े गूढ़ साधन-रहस्य भरे हैं। कर्म, भक्ति और ज्ञानकी त्रिविध मन्दाकिनी बहानेवाला यह ग्रन्थ भक्तोंके लिये वांछाकल्पतरु है। सकाम भक्त इसके सेवनसे मनोऽभिलषित दुर्लभतम वस्तु या स्थिति सहज ही प्राप्त करते हैं और निष्काम भक्त परम दुर्लभ मोक्षको पाकर कृतार्थ होते हैं। राजा सुरथसे महर्षि मेधाने कहा था—'**तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्। आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा॥** महाराज! आप उन्हीं भगवती परमेश्वरीकी शरण ग्रहण कीजिये। वे आराधनासे प्रसन्न होकर मनुष्योंको भोग, स्वर्ग और अपुनरावर्ती मोक्ष प्रदान करती हैं।' इसीके अनुसार आराधना करके ऐश्वर्यकामी राजा सुरथने अखण्ड साम्राज्य प्राप्त किया तथा वैराग्यवान् समाधि वैश्यने दुर्लभ ज्ञानके द्वारा मोक्षकी प्राप्ति की। अबतक इस आशीर्वादरूप मन्त्रमय ग्रन्थके आश्रयसे न मालूम कितने आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु तथा प्रेमी भक्त अपना मनोरथ सफल कर चुके हैं। हर्षकी बात है कि जगज्जननी भगवती श्रीदुर्गाजीकी कृपासे वही सप्तशती संक्षिप्त पाठ-विधिसहित पाठकोंके समक्ष पुस्तकरूपमें उपस्थित की जा रही है। इसमें कथा-भाग तथा अन्य बातें वे ही हैं, जो 'कल्याण'के विशेषांक 'संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणांक' में प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ उपयोगी स्तोत्र और बढ़ाये गये हैं।

इसमें पाठ करनेकी विधि स्पष्ट, सरल और प्रामाणिक रूपमें दी गयी है। इसके मूल पाठको विशेषतः शुद्ध रखनेका प्रयास किया गया है। आजकल प्रेसोंमें छपी हुई अधिकांश पुस्तकें अशुद्ध निकलती हैं, किंतु प्रस्तुत पुस्तकको इस दोषसे बचानेकी यथासाध्य चेष्टा की गयी है। पाठकोंकी सुविधाके लिये कहीं-कहीं महत्त्वपूर्ण पाठान्तर भी दे दिये गये हैं। शापोद्धारके अनेक प्रकार बतलाये गये हैं। कवच, अर्गला और कीलकके भी अर्थ दिये गये हैं। वैदिक-तान्त्रिक रात्रिसूक्त और देवीसूक्तके साथ ही देव्यथर्वशीर्ष, सिद्ध-कुंजिकास्तोत्र, मूल सप्तश्लोकी दुर्गा, श्रीदुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला, श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्र, श्रीदुर्गामानसपूजा और देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रको भी दे देनेसे पुस्तककी उपादेयता विशेष बढ़ गयी है। नवार्ण-विधि तो है ही, आवश्यक न्यास भी नहीं छूटने पाये हैं। सप्तशतीके मूल श्लोकोंका पूरा अर्थ दे दिया गया है। तीनों रहस्योंमें आये हुए कई गूढ़ विषयोंको भी टिप्पणीद्वारा स्पष्ट किया गया है। इन विशेषताओंके कारण यह पाठ और अध्ययनके लिये बहुत ही उपयोगी और उत्तम पुस्तक हो गयी है।

सप्तशतीके पाठमें विधिका ध्यान रखना तो उत्तम है ही, उसमें भी सबसे उत्तम बात है भगवती दुर्गामाताके चरणोंमें प्रेमपूर्ण भक्ति। श्रद्धा और भक्तिके साथ जगदम्बाके स्मरणपूर्वक सप्तशतीका पाठ करनेवालेको उनकी कृपाका शीघ्र अनुभव हो सकता है। आशा है, प्रेमी पाठक इससे लाभ उठायेंगे। यद्यपि पुस्तकको सब प्रकारसे शुद्ध बनानेकी ही चेष्टा की गयी है, तथापि प्रमादवश कुछ अशुद्धियोंका रह जाना असम्भव नहीं है। ऐसी भूलोंके लिये क्षमा माँगते हुए हम पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे हमें सूचित करें, जिससे भविष्यमें उनका सुधार किया जा सके।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीदुर्गादेव्यै नमः ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- **अथ सप्तश्लोकी दुर्गा**	७
२- **श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्**	९
३- **पाठविधिः**	१३
१- **देव्याः कवचम्**	१९
२- **अर्गलास्तोत्रम्**	३०
३- **कीलकम्**	३६
४- **वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्**	४१
५- **तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्**	४३
६- **श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्**	४४
७- **नवार्णविधिः**	५२
८- **सप्तशतीन्यासः**	५६
४- **श्रीदुर्गासप्तशती**	
१- **प्रथम अध्याय**—मेधा ऋषिका राजा सुरथ और समाधिको भगवतीकी महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वधका प्रसंग सुनाना	५९
२- **द्वितीय अध्याय**—देवताओंके तेजसे देवीका प्रादुर्भाव और महिषासुरकी सेनाका वध	७५
३- **तृतीय अध्याय**—सेनापतियोंसहित महिषासुरका वध	८८
४- **चतुर्थ अध्याय**— इन्द्रादि देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति	९७
५- **पंचम अध्याय**—देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति, चण्ड-मुण्डके मुखसे अम्बिकाके रूपकी प्रशंसा सुनकर शुम्भका उनके पास दूत भेजना और दूतका निराश लौटना	१०९
६- **षष्ठ अध्याय**—धूम्रलोचन-वध	१२३
७- **सप्तम अध्याय**—चण्ड और मुण्डका वध	१२८
८- **अष्टम अध्याय**—रक्तबीज-वध	१३४

विषय	पृष्ठ-संख्या

९- **नवम अध्याय—**निशुम्भ-वध १४५

१०- **दशम अध्याय—**शुम्भ-वध १५३

११- **एकादश अध्याय—**देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवी-द्वारा देवताओंको वरदान १५९

१२- **द्वादश अध्याय—**देवी-चरित्रोंके पाठका माहात्म्य १७१

१३- **त्रयोदश अध्याय—**सुरथ और वैश्यको देवीका वरदान १७९

५- उपसंहारः १८३

१- ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम् १८६

२- तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम् १८९

३- प्राधानिकं रहस्यम् १९२

४- वैकृतिकं रहस्यम् १९८

५- मूर्तिरहस्यम् २०८

६- क्षमा-प्रार्थना २१४

७- श्रीदुर्गामानस-पूजा २१६

८- दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला २२३

९- देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम् २२६

१०- सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम् २३०

११- सप्तशतीके कुछ सिद्ध सम्पुट-मन्त्र २३३

१२- श्रीदेवीजीकी आरती २३८

१३- श्रीअम्बाजीकी आरती २३९

१४- देवीमयी २४०

अथ सप्तश्लोकी दुर्गा

शिव उवाच—

देवि त्वं भक्तसुलभे सर्वकार्यविधायिनी।
कलौ हि कार्यसिद्ध्यर्थमुपायं ब्रूहि यत्नतः॥

देव्युवाच—

शृणु देव प्रवक्ष्यामि कलौ सर्वेष्टसाधनम्।
मया तवैव स्नेहेनाप्यम्बास्तुतिः प्रकाश्यते॥

ॐ अस्य श्रीदुर्गासप्तश्लोकीस्तोत्रमन्त्रस्य नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, श्रीदुर्गाप्रीत्यर्थं सप्तश्लोकीदुर्गापाठे विनियोगः।

ॐ ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति॥ १॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥ २॥

शिवजी बोले—हे देवि! तुम भक्तोंके लिये सुलभ हो और समस्त कर्मोंका विधान करनेवाली हो। कलियुगमें कामनाओंकी सिद्धि-हेतु यदि कोई उपाय हो तो उसे अपनी वाणीद्वारा सम्यक्-रूपसे व्यक्त करो।

देवीने कहा—हे देव! आपका मेरे ऊपर बहुत स्नेह है। कलियुगमें समस्त कामनाओंको सिद्ध करनेवाला जो साधन है वह बतलाऊँगी, सुनो! उसका नाम है 'अम्बास्तुति'।

ॐ इस दुर्गासप्तश्लोकी स्तोत्रमन्त्रके नारायण ऋषि हैं, अनुष्टुप् छन्द है, श्रीमहाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती देवता हैं, श्रीदुर्गाकी प्रसन्नताके लिये सप्तश्लोकी दुर्गापाठमें इसका विनियोग किया जाता है।

वे भगवती महामाया देवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती हैं॥ १॥

माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो॥ २॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ३॥
शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ ४॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ ५॥
रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥ ६॥
सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥ ७॥

॥ इति श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्णा॥

नारायणी! तुम सब प्रकारका मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हो। कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो। तुम्हें नमस्कार है॥ ३॥

शरणमें आये हुए दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ ४॥

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयोंसे हमारी रक्षा करो; तुम्हें नमस्कार है॥ ५॥

देवि! तुम प्रसन्न होनेपर सब रोगोंको नष्ट कर देती हो और कुपित होनेपर मनोवांछित सभी कामनाओंका नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरणमें जा चुके हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं॥ ६॥

सर्वेश्वरि! तुम इसी प्रकार तीनों लोकोंकी समस्त बाधाओंको शान्त करो और हमारे शत्रुओंका नाश करती रहो॥ ७॥

॥ श्रीसप्तश्लोकी दुर्गा सम्पूर्ण॥

ॐ

॥ श्रीदुर्गायै नमः ॥

श्रीदुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

ईश्वर उवाच

शतनाम प्रवक्ष्यामि शृणुष्व कमलानने।
यस्य प्रसादमात्रेण दुर्गा प्रीता भवेत् सती॥ १॥
ॐ सती साध्वी भवप्रीता भवानी भवमोचनी।
आर्या दुर्गा जया चाद्या त्रिनेत्रा शूलधारिणी॥ २॥
पिनाकधारिणी चित्रा चण्डघण्टा महातपाः।
मनो बुद्धिरहंकारा चित्तरूपा चिता चितिः॥ ३॥
सर्वमन्त्रमयी सत्ता सत्यानन्दस्वरूपिणी।
अनन्ता भाविनी भाव्या भव्याभव्या सदागतिः॥ ४॥

शंकरजी पार्वतीजीसे कहते हैं—कमलानने! अब मैं अष्टोत्तरशतनामका वर्णन करता हूँ, सुनो; जिसके प्रसाद (पाठ या श्रवण)-मात्रसे परम साध्वी भगवती दुर्गा प्रसन्न हो जाती हैं॥ १॥

१-ॐ सती, २-साध्वी, ३-भवप्रीता (भगवान् शिवपर प्रीति रखनेवाली), ४-भवानी, ५-भवमोचनी (संसारबन्धनसे मुक्त करनेवाली), ६-आर्या,७-दुर्गा, ८-जया, ९-आद्या, १०-त्रिनेत्रा, ११-शूलधारिणी, १२-पिनाकधारिणी, १३-चित्रा, १४-चण्डघण्टा (प्रचण्ड स्वरसे घण्टानाद करनेवाली), १५-महातपा (भारी तपस्या करनेवाली), १६-मन (मनन-शक्ति), १७-बुद्धि (बोधशक्ति), १८-अहंकारा (अहंताका आश्रय), १९-चित्तरूपा, २०-चिता, २१-चिति (चेतना), २२-सर्वमन्त्रमयी, २३-सत्ता (सत्-स्वरूपा), २४-सत्यानन्दस्वरूपिणी, २५-अनन्ता (जिनके स्वरूपका कहीं अन्त नहीं),२६-भाविनी (सबको उत्पन्न करनेवाली), २७-भाव्या (भावना एवं ध्यान करनेयोग्य), २८-भव्या (कल्याणरूपा), २९-अभव्या (जिससे बढ़कर भव्य कहीं है नहीं), ३०-सदागति,

शाम्भवी देवमाता च चिन्ता रत्नप्रिया सदा।
सर्वविद्या दक्षकन्या दक्षयज्ञविनाशिनी॥ ५ ॥

अपर्णानेकवर्णा च पाटला पाटलावती।
पट्टाम्बरपरीधाना कलमञ्जीररञ्जिनी॥ ६ ॥

अमेयविक्रमा क्रूरा सुन्दरी सुरसुन्दरी।
वनदुर्गा च मातङ्गी मतङ्गमुनिपूजिता॥ ७ ॥

ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री कौमारी वैष्णवी तथा।
चामुण्डा चैव वाराही लक्ष्मीश्च पुरुषाकृतिः॥ ८ ॥

विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रिया नित्या च बुद्धिदा।
बहुला बहुलप्रेमा सर्ववाहनवाहना॥ ९ ॥
निशुम्भशुम्भहननी महिषासुरमर्दिनी।
मधुकैटभहन्त्री च चण्डमुण्डविनाशिनी॥ १० ॥
सर्वासुरविनाशा च सर्वदानवघातिनी।
सर्वशास्त्रमयी सत्या सर्वास्त्रधारिणी तथा॥ ११ ॥

३१-शाम्भवी (शिवप्रिया), ३२-देवमाता, ३३-चिन्ता, ३४-रत्नप्रिया, ३५-सर्वविद्या, ३६-दक्षकन्या, ३७-दक्षयज्ञविनाशिनी, ३८-अपर्णा (तपस्याके समय पत्तेको भी न खानेवाली), ३९-अनेकवर्णा (अनेक रंगोंवाली), ४०-पाटला (लाल रंगवाली), ४१-पाटलावती (गुलाबके फूल या लाल फूल धारण करनेवाली), ४२-पट्टाम्बरपरीधाना (रेशमी वस्त्र पहननेवाली), ४३-कलमंजीररंजिनी (मधुर ध्वनि करनेवाले मंजीरको धारण करके प्रसन्न रहनेवाली), ४४-अमेयविक्रमा (असीम पराक्रमवाली), ४५-क्रूरा (दैत्योंके प्रति कठोर), ४६-सुन्दरी, ४७-सुरसुन्दरी, ४८-वनदुर्गा, ४९-मातंगी, ५०-मतंगमुनिपूजिता, ५१-ब्राह्मी, ५२-माहेश्वरी, ५३-ऐन्द्री, ५४-कौमारी, ५५-वैष्णवी, ५६-चामुण्डा, ५७-वाराही, ५८-लक्ष्मी, ५९-पुरुषाकृति,

अनेकशस्त्रहस्ता च अनेकास्त्रस्य धारिणी।
कुमारी चैककन्या च कैशोरी युवती यतिः॥ १२॥
अप्रौढा चैव प्रौढा च वृद्धमाता बलप्रदा।
महोदरी मुक्तकेशी घोररूपा महाबला॥ १३॥
अग्निज्वाला रौद्रमुखी कालरात्रिस्तपस्विनी।
नारायणी भद्रकाली विष्णुमाया जलोदरी॥ १४॥
शिवदूती कराली च अनन्ता परमेश्वरी।
कात्यायनी च सावित्री प्रत्यक्षा ब्रह्मवादिनी॥ १५॥
य इदं प्रपठेन्नित्यं दुर्गानामशताष्टकम्।
नासाध्यं विद्यते देवि त्रिषु लोकेषु पार्वति॥ १६॥
धनं धान्यं सुतं जायां हयं हस्तिनमेव च।
चतुर्वर्गं तथा चान्ते लभेन्मुक्तिं च शाश्वतीम्॥ १७॥

६०–विमला, ६१–उत्कर्षिणी, ६२–ज्ञाना, ६३–क्रिया, ६४–नित्या, ६५–बुद्धिदा, ६६–बहुला, ६७–बहुलप्रेमा, ६८–सर्ववाहनवाहना, ६९–निशुम्भ–शुम्भहननी, ७०–महिषासुरमर्दिनी, ७१–मधुकैटभहन्त्री, ७२–चण्डमुण्डविनाशिनी, ७३–सर्वासुरविनाशा, ७४–सर्वदानवघातिनी, ७५–सर्वशास्त्रमयी, ७६–सत्या, ७७–सर्वास्त्रधारिणी, ७८–अनेकशस्त्रहस्ता, ७९–अनेकास्त्रधारिणी, ८०–कुमारी, ८१–एककन्या, ८२–कैशोरी, ८३–युवती, ८४–यति, ८५–अप्रौढा, ८६–प्रौढा, ८७–वृद्धमाता, ८८–बलप्रदा, ८९–महोदरी, ९०–मुक्तकेशी, ९१–घोररूपा, ९२–महाबला, ९३–अग्निज्वाला, ९४–रौद्रमुखी, ९५–कालरात्रि, ९६–तपस्विनी, ९७–नारायणी, ९८–भद्रकाली, ९९–विष्णुमाया, १००–जलोदरी, १०१–शिवदूती, १०२–कराली, १०३–अनन्ता (विनाशरहिता), १०४–परमेश्वरी, १०५–कात्यायनी, १०६–सावित्री, १०७–प्रत्यक्षा, १०८–ब्रह्मवादिनी॥ २—१५॥

देवी पार्वती! जो प्रतिदिन दुर्गाजीके इस अष्टोत्तरशतनामका पाठ करता है, उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं है॥ १६॥

कुमारीं पूजयित्वा तु ध्यात्वा देवीं सुरेश्वरीम्।
पूजयेत् परया भक्त्या पठेन्नामशताष्टकम्॥ १८॥
तस्य सिद्धिर्भवेद् देवि सर्वैः सुरवरैरपि।
राजानो दासतां यान्ति राज्यश्रियमवाप्नुयात्॥ १९॥
गोरोचनालक्तककुङ्कुमेन
सिन्दूरकर्पूरमधुत्रयेण।
विलिख्य यन्त्रं विधिना विधिज्ञो
भवेत् सदा धारयते पुरारिः॥ २०॥
भौमावास्यानिशामग्रे चन्द्रे शतभिषां गते।
विलिख्य प्रपठेत् स्तोत्रं स भवेत् सम्पदां पदम्॥ २१॥

इति श्रीविश्वसारतन्त्रे दुर्गाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रं समाप्तम्।

वह धन, धान्य, पुत्र, स्त्री, घोड़ा, हाथी, धर्म आदि चार पुरुषार्थ तथा अन्तमें सनातन मुक्ति भी प्राप्त कर लेता है॥ १७॥ कुमारीका पूजन और देवी सुरेश्वरीका ध्यान करके पराभक्तिके साथ उनका पूजन करे, फिर अष्टोत्तरशत-नामका पाठ आरम्भ करे॥ १८॥ देवि! जो ऐसा करता है, उसे सब श्रेष्ठ देवताओंसे भी सिद्धि प्राप्त होती है। राजा उसके दास हो जाते हैं। वह राज्यलक्ष्मीको प्राप्त कर लेता है॥ १९॥ गोरोचन, लाक्षा, कुंकुम, सिन्दूर, कपूर, घी (अथवा दूध), चीनी और मधु—इन वस्तुओंको एकत्र करके इनसे विधिपूर्वक यन्त्र लिखकर जो विधिज्ञ पुरुष सदा उस यन्त्रको धारण करता है, वह शिवके तुल्य (मोक्षरूप) हो जाता है॥ २०॥ भौमवती अमावास्याकी आधी रातमें, जब चन्द्रमा शतभिषा नक्षत्रपर हों, उस समय इस स्तोत्रको लिखकर जो इसका पाठ करता है, वह सम्पत्तिशाली होता है॥ २१॥

पाठविधिः *

साधक स्नान करके पवित्र हो आसन-शुद्धिकी क्रिया सम्पन्न करके शुद्ध आसनपर बैठे; साथमें शुद्ध जल, पूजनसामग्री और श्रीदुर्गासप्तशतीकी पुस्तक रखे। पुस्तकको अपने सामने काष्ठ आदिके शुद्ध आसनपर विराजमान कर दे। ललाटमें अपनी रुचिके अनुसार भस्म, चन्दन अथवा रोली लगा ले, शिखा बाँध ले; फिर पूर्वाभिमुख होकर तत्त्व-शुद्धिके लिये चार बार आचमन करे। उस समय अग्रांकित चार मन्त्रोंको क्रमशः पढ़े—

---

* यह विधि यहाँ संक्षिप्त रूपसे दी जाती है। नवरात्र आदि विशेष अवसरोंपर तथा शतचण्डी आदि अनुष्ठानोंमें विस्तृत विधिका उपयोग किया जाता है। उसमें यन्त्रस्थ कलश, गणेश, नवग्रह, मातृका, वास्तु, सप्तर्षि, सप्तचिरंजीव, ६४ योगिनी, ५० क्षेत्रपाल तथा अन्यान्य देवताओंकी वैदिक विधिसे पूजा होती है। अखण्ड दीपकी व्यवस्था की जाती है। देवीप्रतिमाकी अंगन्यास और अग्न्युत्तारण आदि विधिके साथ विधिवत् पूजा की जाती है। नवदुर्गापूजा, ज्योतिःपूजा, वटुक-गणेशादिसहित कुमारीपूजा, अभिषेक, नान्दीश्राद्ध, रक्षाबन्धन, पुण्याहवाचन, मंगलपाठ, गुरुपूजा, तीर्थावाहन, मन्त्र-स्नान आदि, आसनशुद्धि, प्राणायाम, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, अन्तर्मातृकान्यास, बहिर्मातृकान्यास, सृष्टिन्यास, स्थितिन्यास, शक्तिकलान्यास, शिवकलान्यास, हृदयादिन्यास, षोढान्यास, विलोमन्यास, तत्त्वन्यास, अक्षरन्यास, व्यापकन्यास, ध्यान, पीठपूजा, विशेषार्घ्य, क्षेत्रकीलन, मन्त्रपूजा, विविध मुद्राविधि, आवरणपूजा एवं प्रधानपूजा आदिका शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार अनुष्ठान होता है। इस प्रकार विस्तृत विधिसे पूजा करनेकी इच्छावाले भक्तोंको अन्यान्य पूजा-पद्धतियोंकी सहायतासे भगवतीकी आराधना करके पाठ आरम्भ करना चाहिये।

ॐ ऐं आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा॥
ॐ क्लीं शिवतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा।
ॐ ऐं ह्रीं क्लीं सर्वतत्त्वं शोधयामि नमः स्वाहा॥

तत्पश्चात् प्राणायाम करके गणेश आदि देवताओं एवं गुरुजनोंको प्रणाम करे; फिर '**पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ०**' इत्यादि मन्त्रसे कुशकी पवित्री धारण करके हाथमें लाल फूल, अक्षत और जल लेकर निम्नांकितरूपसे संकल्प करे—

ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः । ॐ नमः परमात्मने, श्रीपुराणपुरुषोत्तमस्य श्रीविष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्याद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे वैवस्वत-मन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे प्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भारतवर्षे भरतखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्तैकदेशे पुण्यप्रदेशे बौद्धावतारे वर्तमाने यथानामसंवत्सरे अमुकायने महामाङ्गल्यप्रदे मासानाम् उत्तमे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरान्वितायाम् अमुकनक्षत्रे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकामुकराशिस्थितेषु चन्द्रभौमबुधगुरुशुक्रशनिषु सत्सु शुभे योगे शुभकरणे एवंगुणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ सकलशास्त्रश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्तिकामः अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा अहं ममात्मनः सपुत्रस्त्रीबान्धवस्य श्रीनवदुर्गानुग्रहतो ग्रहकृतराजकृतसर्व-विधपीडानिवृत्तिपूर्वकं नैरुज्यदीर्घायुःपुष्टिधनधान्यसमृद्ध्यर्थं श्रीनवदुर्गाप्रसादेन सर्वा-पन्निवृत्तिसर्वाभीष्टफलावाप्तिधर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिद्वारा श्रीमहाकाली-महालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थं शापोद्धारपुरस्सरं कवचार्गलाकीलकपाठ-वेदतन्त्रोक्तरात्रिसूक्तपाठदेव्यथर्वशीर्षपाठन्यासविधिसहितनवार्णजपसप्तशतीन्यास-ध्यानसहितचरित्रसम्बन्धिविनियोगन्यासध्यानपूर्वकं च 'मार्कण्डेय उवाच॥ सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः ।' इत्याद्यारभ्य 'सावर्णिर्भविता मनुः' इत्यन्तं दुर्गासप्तशतीपाठं तदन्ते न्यासविधिसहितनवार्णमन्त्रजपं वेदतन्त्रोक्तदेवीसूक्तपाठं रहस्यत्रयपठनं शापोद्धारादिकं च करिष्ये।

इस प्रकार प्रतिज्ञा (संकल्प) करके देवीका ध्यान करते हुए पंचोपचारकी

विधिसे पुस्तककी पूजा[१] करे, योनिमुद्राका प्रदर्शन करके भगवतीको प्रणाम करे, फिर मूल नवार्णमन्त्रसे पीठ आदिमें आधारशक्तिकी स्थापना करके उसके ऊपर पुस्तकको विराजमान करे।[२] इसके बाद शापोद्धार[३] करना चाहिये। इसके अनेक प्रकार हैं। **'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं क्रां क्रीं चण्डिकादेव्यै शापनाशानुग्रहं कुरु कुरु स्वाहा'**—इस मन्त्रका आदि और अन्तमें सात बार जप करे। यह शापोद्धार मन्त्र कहलाता है। इसके अनन्तर उत्कीलन मन्त्रका जप किया जाता है। इसका जप आदि और अन्तमें

१- पुस्तकपूजाका मन्त्र—

ॐ नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥

(वाराहीतन्त्र तथा चिदम्बरसंहिता)

२- ध्यात्वा देवीं पञ्चपूजां कृत्वा योन्या प्रणम्य च।
आधारं स्थाप्य मूलेन स्थापयेत्तत्र पुस्तकम्॥

३- 'सप्तशती-सर्वस्व'के उपासना-क्रममें पहले शापोद्धार करके बादमें षडंगसहित पाठ करनेका निर्णय किया गया है, अतः कवच आदि पाठके पहले ही शापोद्धार कर लेना चाहिये। कात्यायनी-तन्त्रमें शापोद्धार तथा उत्कीलनका और ही प्रकार बतलाया गया है—'अन्त्याद्यार्कद्विरुद्रत्रिदिगब्ध्यङ्केष्विभर्तवः। अश्वोऽश्व इति सर्गाणां शापोद्धारे मनोः क्रमः॥' 'उत्कीलने चरित्राणां मध्याद्यन्तमिति क्रमः।' अर्थात् सप्तशतीके अध्यायोंका तेरह—एक, बारह—दो, ग्यारह—तीन, दस—चार, नौ—पाँच तथा आठ—छःके क्रमसे पाठ करके अन्तमें सातवें अध्यायको दो बार पढ़े। यह शापोद्धार है और पहले मध्यम चरित्रका, फिर प्रथम चरित्रका, तत्पश्चात् उत्तर चरित्रका पाठ करना उत्कीलन है। कुछ लोगोंके मतमें कीलकमें बताये अनुसार 'ददाति प्रतिगृह्णाति'के नियमसे कृष्णपक्षकी अष्टमी या चतुर्दशी तिथिमें देवीको सर्वस्व-समर्पण करके उन्हींका होकर उनके प्रसादरूपसे प्रत्येक वस्तुको उपयोगमें लाना ही शापोद्धार और उत्कीलन है। कोई कहते हैं—छः अंगोंसहित पाठ करना ही शापोद्धार है। अंगोंका त्याग ही शाप है। कुछ विद्वानोंकी रायमें शापोद्धार कर्म अनिवार्य नहीं है, क्योंकि रहस्याध्यायमें यह

इक्कीस-इक्कीस बार होता है। यह मन्त्र इस प्रकार है— '**ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं सप्तशति चण्डिके उत्कीलनं कुरु कुरु स्वाहा।**' इसके जपके पश्चात् आदि और अन्तमें सात-सात बार मृतसंजीवनी विद्याका जप करना चाहिये, जो इस प्रकार है— '**ॐ ह्रीं ह्रीं वं वं ऐं ऐं मृतसंजीवनि विद्ये मृतमुत्थापयोत्थापय क्रीं ह्रीं ह्रीं वं स्वाहा।**' मारीचकल्पके अनुसार सप्तशती-शापविमोचनका मन्त्र यह है— '**ॐ श्रीं श्रीं क्लीं हूं ॐ ऐं क्षोभय मोहय उत्कीलय उत्कीलय उत्कीलय ठं ठं।**' इस मन्त्रका आरम्भमें ही एक सौ आठ बार जप करना चाहिये, पाठके अन्तमें नहीं। अथवा रुद्रयामल महातन्त्रके अन्तर्गत दुर्गाकल्पमें कहे हुए चण्डिका-शाप-विमोचन मन्त्रोंका आरम्भमें ही पाठ करना चाहिये। वे मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ अस्य श्रीचण्डिकाया ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापविमोचनमन्त्रस्य वसिष्ठ-नारदसंवादसामवेदाधिपतिब्रह्माण ऋषयः सर्वैश्वर्यकारिणी श्रीदुर्गा देवता चरित्रत्रयं बीजं ह्रीं शक्तिः त्रिगुणात्मस्वरूपचण्डिकाशापविमुक्तौ मम संकल्पितकार्यसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ॐ (ह्रीं) रीं रेतःस्वरूपिण्यै मधुकैटभमर्दिन्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ १॥ ॐ श्रीं बुद्धिस्वरूपिण्यै महिषासुरसैन्यनाशिन्यै ब्रह्मवसिष्ठ विश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ २॥ ॐ रं रक्तस्वरूपिण्यै महिषासुरमर्दिन्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ ३॥ ॐ क्षुं क्षुधास्वरूपिण्यै देववन्दितायै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ४ ॥ ॐ छां

स्पष्टरूपसे कहा है कि जिसे एक ही दिनमें पूरे पाठका अवसर न मिले, वह एक दिन केवल मध्यम चरित्रका और दूसरे दिन शेष दो चरित्रोंका पाठ करे। इसके सिवा, जो प्रतिदिन नियमपूर्वक पाठ करते हैं, उनके लिये एक दिनमें एक पाठ न हो सकनेपर एक, दो, एक, चार, दो, एक और दो अध्यायोंके क्रमसे सात दिनोंमें पाठ पूरा करनेका आदेश दिया गया है। ऐसी दशामें प्रतिदिन शापोद्धार और कीलक कैसे सम्भव है। अस्तु, जो हो, हमने यहाँ जिज्ञासुओंके लाभार्थ शापोद्धार और उत्कीलन दोनोंके विधान दे दिये हैं।

छायास्वरूपिण्यै दूतसंवादिन्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ५ ॥ ॐ शं शक्तिस्वरूपिण्यै धूम्रलोचनघातिन्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ६ ॥ ॐ तृं तृषास्वरूपिण्यै चण्डमुण्डवधकारिण्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ७ ॥ ॐ क्षां क्षान्तिस्वरूपिण्यै रक्तबीजवधकारिण्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ८॥ ॐ जां जातिस्वरूपिण्यै निशुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ ९॥ ॐ लं लज्जास्वरूपिण्यै शुम्भवधकारिण्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ १०॥ ॐ शां शान्तिस्वरूपिण्यै देवस्तुत्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ ११॥ ॐ श्रं श्रद्धास्वरूपिण्यै सकलफलदात्र्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव ॥ १२॥ ॐ कां कान्तिस्वरूपिण्यै राजवरप्रदायै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ १३ ॥ ॐ मां मातृस्वरूपिण्यै अनर्गलमहिमसहितायै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ १४॥ ॐ ह्रीं श्रीं दुं दुर्गायै सं सर्वैश्वर्यकारिण्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ १५॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं नमः शिवायै अभेद्यकवचस्वरूपिण्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ १६॥ ॐ क्रीं काल्यै कालि ह्रीं फट् स्वाहायै ऋग्वेदस्वरूपिण्यै ब्रह्मवसिष्ठविश्वामित्रशापाद् विमुक्ता भव॥ १७॥ ॐ ऐं ह्रीं क्लीं महाकाली-महालक्ष्मीमहासरस्वतीस्वरूपिण्यै त्रिगुणात्मिकायै दुर्गादेव्यै नमः॥ १८॥

इत्येवं हि महामन्त्रान् पठित्वा परमेश्वर।
चण्डीपाठं दिवा रात्रौ कुर्यादेव न संशयः॥ १९॥
एवं मन्त्रं न जानाति चण्डीपाठं करोति यः।
आत्मानं चैव दातारं क्षीणं कुर्यान्न संशयः॥ २०॥

इस प्रकार शापोद्धार करनेके अनन्तर अन्तर्मातृका-बहिर्मातृका आदि न्यास करे, फिर श्रीदेवीका ध्यान करके रहस्यमें बताये अनुसार नौ कोष्ठोंवाले यन्त्रमें महालक्ष्मी आदिका पूजन करे, इसके बाद छः अंगोंसहित दुर्गासप्तशतीका पाठ आरम्भ किया जाता है। कवच, अर्गला, कीलक और तीनों रहस्य—ये ही सप्तशतीके छः अंग माने गये हैं। इनके क्रममें भी मतभेद है। चिदम्बर-संहितामें पहले अर्गला फिर कीलक तथा अन्तमें कवच पढ़नेका विधान है।*

* अर्गलं कीलकं चादौ पठित्वा कवचं पठेत्।
जप्या सप्तशती पश्चात् सिद्धिकामेन मन्त्रिणा॥

किंतु योगरत्नावलीमें पाठका क्रम इससे भिन्न है। उसमें कवचको बीज, अर्गलाको शक्ति तथा कीलकको कीलक संज्ञा दी गयी है। जिस प्रकार सब मन्त्रोंमें पहले बीजका, फिर शक्तिका तथा अन्तमें कीलकका उच्चारण होता है, उसी प्रकार यहाँ भी पहले कवचरूप बीजका, फिर अर्गलारूपा शक्तिका तथा अन्तमें कीलकरूप कीलकका क्रमशः पाठ होना चाहिये।* यहाँ इसी क्रमका अनुसरण किया गया है।

---

* कवचं बीजमादिष्टमर्गला शक्तिरुच्यते।
कीलकं कीलकं प्राहुः सप्तशत्या महामनोः॥

यथा सर्वमन्त्रेषु बीजशक्तिकीलकानां प्रथममुच्चारणं तथा सप्तशतीपाठेऽपि कवचार्गलाकीलकानां प्रथमं पाठः स्यात्।

इस प्रकार अनेक तन्त्रोंके अनुसार सप्तशतीके पाठका क्रम अनेक प्रकारका उपलब्ध होता है। ऐसी दशामें अपने देशमें पाठका जो क्रम पूर्वपरम्परासे प्रचलित हो, उसीका अनुसरण करना अच्छा है।

अथ देव्याः कवचम्

ॐ अस्य श्रीचण्डीकवचस्य ब्रह्मा ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, चामुण्डा देवता, अङ्गन्यासोक्तमातरो बीजम्, दिग्बन्धदेवतास्तत्त्वम्, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थे सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः।

ॐ नमश्चण्डिकायै॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ यद्गुह्यं परमं लोके सर्वरक्षाकरं नृणाम्।
यन्न कस्यचिदाख्यातं तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १॥

ब्रह्मोवाच

अस्ति गुह्यतमं विप्र सर्वभूतोपकारकम्।
देव्यास्तु कवचं पुण्यं तच्छृणुष्व महामुने॥ २॥
प्रथमं शैलपुत्री च द्वितीयं ब्रह्मचारिणी।
तृतीयं चन्द्रघण्टेति कूष्माण्डेति चतुर्थकम्॥ ३॥
पञ्चमं स्कन्दमातेति षष्ठं कात्यायनीति च।
सप्तमं कालरात्रीति महागौरीति चाष्टमम्॥ ४॥

ॐ चण्डिका देवीको नमस्कार है।

मार्कण्डेयजीने कहा—पितामह! जो इस संसारमें परम गोपनीय तथा मनुष्योंकी सब प्रकारसे रक्षा करनेवाला है और जो अबतक आपने दूसरे किसीके सामने प्रकट नहीं किया हो, ऐसा कोई साधन मुझे बताइये॥ १॥

ब्रह्माजी बोले—ब्रह्मन्! ऐसा साधन तो एक देवीका कवच ही है, जो गोपनीयसे भी परम गोपनीय, पवित्र तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका उपकार करनेवाला है। महामुने! उसे श्रवण करो॥ २॥ देवीकी नौ मूर्तियाँ हैं, जिन्हें 'नवदुर्गा' कहते हैं। उनके पृथक्-पृथक् नाम बतलाये जाते हैं। प्रथम नाम शैलपुत्री*

---

* गिरिराज हिमालयकी पुत्री 'पार्वतीदेवी'। यद्यपि ये सबकी अधीश्वरी हैं,

नवमं सिद्धिदात्री च नवदुर्गाः प्रकीर्तिताः।
उक्तान्येतानि नामानि ब्रह्मणैव महात्मना॥ ५॥
अग्निना दह्यमानस्तु शत्रुमध्ये गतो रणे।
विषमे दुर्गमे चैव भयार्ताः शरणं गताः॥ ६॥

है। दूसरी मूर्तिका नाम ब्रह्मचारिणी[१] है। तीसरा स्वरूप चन्द्रघण्टा[२] के नामसे प्रसिद्ध है। चौथी मूर्तिको कूष्माण्डा[३] कहते हैं। पाँचवीं दुर्गाका नाम स्कन्दमाता[४] है। देवीके छठे रूपको कात्यायनी[५] कहते हैं। सातवाँ कालरात्रि[६] और आठवाँ स्वरूप महागौरी[७] के नामसे प्रसिद्ध है। नवीं दुर्गाका नाम सिद्धिदात्री[८] है। ये सब नाम सर्वज्ञ महात्मा वेदभगवान्‌के द्वारा ही प्रतिपादित हुए हैं॥ ३—५॥ जो मनुष्य अग्निमें जल रहा हो, रणभूमिमें शत्रुओंसे घिर गया हो, विषम संकटमें फँस गया हो तथा इस प्रकार भयसे आतुर होकर जो भगवती दुर्गाकी शरणमें प्राप्त हुए हों, उनका कभी कोई अमंगल नहीं होता। युद्धके समय संकटमें पड़नेपर भी उनके ऊपर कोई विपत्ति नहीं

तथापि हिमालयकी तपस्या और प्रार्थनासे प्रसन्न हो कृपापूर्वक उनकी पुत्रीके रूपमें प्रकट हुईं। यह बात पुराणोंमें प्रसिद्ध है। १. ब्रह्म चारयितुं शीलं यस्याः सा ब्रह्मचारिणी—सच्चिदानन्दमय ब्रह्मस्वरूपकी प्राप्ति कराना जिनका स्वभाव हो, वे ‘ब्रह्मचारिणी’ हैं। २. चन्द्रः घण्टायां यस्याः सा—आह्लादकारी चन्द्रमा जिनकी घण्टामें स्थित हों, उन देवीका नाम ‘चन्द्रघण्टा’ है। ३. कुत्सितः ऊष्मा कूष्मा—त्रिविधतापयुतः संसारः, स अण्डे मांसपेश्यामुदररूपायां यस्याः सा कूष्माण्डा। अर्थात् त्रिविध तापयुक्त संसार जिनके उदरमें स्थित है, वे भगवती ‘कूष्माण्डा’ कहलाती हैं। ४. छान्दोग्यश्रुतिके अनुसार भगवतीकी शक्तिसे उत्पन्न हुए सनत्कुमारका नाम स्कन्द है । उनकी माता होनेसे वे ‘स्कन्दमाता’ कहलाती हैं । ५. देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये देवी महर्षि कात्यायनके आश्रमपर प्रकट हुईं और महर्षिने उन्हें अपनी कन्या माना; इसलिये ‘कात्यायनी’ नामसे उनकी प्रसिद्धि हुई । ६. सबको मारनेवाले कालकी भी रात्रि (विनाशिका) होनेसे उनका नाम ‘कालरात्रि’ है । ७. इन्होंने तपस्याद्वारा महान् गौरवर्ण प्राप्त किया था, अतः ये महागौरी कहलायीं। ८. सिद्धि अर्थात् मोक्षको देनेवाली होनेसे उनका नाम ‘सिद्धिदात्री’ है।

न तेषां जायते किंचिदशुभं रणसंकटे।
नापदं तस्य पश्यामि शोकदुःखभयं न हि॥ ७ ॥
यैस्तु भक्त्या स्मृता नूनं तेषां वृद्धिः प्रजायते।
ये त्वां स्मरन्ति देवेशि रक्षसे तान्न संशयः॥ ८ ॥
प्रेतसंस्था तु चामुण्डा वाराही महिषासना।
ऐन्द्री गजसमारूढा वैष्णवी गरुडासना॥ ९ ॥
माहेश्वरी वृषारूढा कौमारी शिखिवाहना।
लक्ष्मीः पद्मासना देवी पद्महस्ता हरिप्रिया॥ १० ॥
श्वेतरूपधरा देवी ईश्वरी वृषवाहना।
ब्राह्मी हंससमारूढा सर्वाभरणभूषिता॥ ११ ॥
इत्येता मातरः सर्वाः सर्वयोगसमन्विताः।
नानाभरणशोभाढ्या नानारत्नोपशोभिताः॥ १२ ॥

दिखायी देती। उन्हें शोक, दुःख और भयकी प्राप्ति नहीं होती॥ ६-७॥

जिन्होंने भक्तिपूर्वक देवीका स्मरण किया है, उनका निश्चय ही अभ्युदय होता है। देवेश्वरि! जो तुम्हारा चिन्तन करते हैं, उनकी तुम निःसन्देह रक्षा करती हो॥ ८॥ चामुण्डादेवी प्रेतपर आरूढ़ होती हैं। वाराही भैंसेपर सवारी करती हैं। ऐन्द्रीका वाहन ऐरावत हाथी है। वैष्णवीदेवी गरुडपर ही आसन जमाती हैं॥ ९॥ माहेश्वरी वृषभपर आरूढ़ होती हैं। कौमारीका वाहन मयूर है। भगवान् विष्णुकी प्रियतमा लक्ष्मीदेवी कमलके आसनपर विराजमान हैं और हाथोंमें कमल धारण किये हुए हैं॥ १०॥ वृषभपर आरूढ़ ईश्वरीदेवीने श्वेत रूप धारण कर रखा है। ब्राह्मीदेवी हंसपर बैठी हुई हैं और सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित हैं॥ ११॥ इस प्रकार ये सभी माताएँ सब प्रकारकी योगशक्तियोंसे सम्पन्न हैं। इनके सिवा और भी बहुत-सी देवियाँ हैं, जो अनेक प्रकारके आभूषणोंकी शोभासे युक्त तथा नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित हैं॥ १२॥

दृश्यन्ते रथमारूढा देव्यः क्रोधसमाकुलाः।
शङ्खं चक्रं गदां शक्तिं हलं च मुसलायुधम्॥ १३॥
खेटकं तोमरं चैव परशुं पाशमेव च।
कुन्तायुधं त्रिशूलं च शार्ङ्गमायुधमुत्तमम्॥ १४॥
दैत्यानां देहनाशाय भक्तानामभयाय च।
धारयन्त्यायुधानीत्थं देवानां च हिताय वै॥ १५॥
नमस्तेऽस्तु महारौद्रे महाघोरपराक्रमे।
महाबले महोत्साहे महाभयविनाशिनि॥ १६॥
त्राहि मां देवि दुष्प्रेक्ष्ये शत्रूणां भयवर्धिनि।
प्राच्यां रक्षतु मामैन्द्री आग्नेय्यामग्निदेवता॥ १७॥
दक्षिणेऽवतु वाराही नैर्ऋत्यां खड्गधारिणी।
प्रतीच्यां वारुणी रक्षेद् वायव्यां मृगवाहिनी॥ १८॥

ये सम्पूर्ण देवियाँ क्रोधमें भरी हुई हैं और भक्तोंकी रक्षाके लिये रथपर बैठी दिखायी देती हैं। ये शंख, चक्र, गदा, शक्ति, हल और मुसल, खेटक और तोमर, परशु तथा पाश, कुन्त और त्रिशूल एवं उत्तम शार्ङ्गधनुष आदि अस्त्र-शस्त्र अपने हाथोंमें धारण करती हैं। दैत्योंके शरीरका नाश करना, भक्तोंको अभयदान देना और देवताओंका कल्याण करना—यही उनके शस्त्र-धारणका उद्देश्य है॥ १३—१५॥ [कवच आरम्भ करनेके पहले इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—] महान् रौद्ररूप, अत्यन्त घोर पराक्रम, महान् बल और महान् उत्साहवाली देवि! तुम महान् भयका नाश करनेवाली हो, तुम्हें नमस्कार है॥ १६॥ तुम्हारी ओर देखना भी कठिन है। शत्रुओंका भय बढ़ानेवाली जगदम्बिके! मेरी रक्षा करो।

पूर्व दिशामें ऐन्द्री (इन्द्रशक्ति) मेरी रक्षा करे। अग्निकोणमें अग्निशक्ति, दक्षिण दिशामें वाराही तथा नैर्ऋत्यकोणमें खड्गधारिणी मेरी रक्षा करे। पश्चिम दिशामें वारुणी और वायव्यकोणमें मृगपर सवारी करनेवाली देवी मेरी रक्षा करे॥ १७-१८॥

उदीच्यां पातु कौमारी ऐशान्यां शूलधारिणी।
ऊर्ध्वं ब्रह्माणि मे रक्षेदधस्ताद् वैष्णवी तथा॥ १९॥
एवं दश दिशो रक्षेच्चामुण्डा शववाहना।
जया मे चाग्रतः पातु विजया पातु पृष्ठतः॥ २०॥
अजिता वामपार्श्वे तु दक्षिणे चापराजिता।
शिखामुद्योतिनी रक्षेदुमा मूर्ध्नि व्यवस्थिता॥ २१॥
मालाधरी ललाटे च भ्रुवौ रक्षेद् यशस्विनी।
त्रिनेत्रा च भ्रुवोर्मध्ये यमघण्टा च नासिके॥ २२॥
शङ्खिनी चक्षुषोर्मध्ये श्रोत्रयोर्द्वारवासिनी।
कपोलौ कालिका रक्षेत्कर्णमूले तु शांकरी॥ २३॥
नासिकायां सुगन्धा च उत्तरोष्ठे च चर्चिका।
अधरे चामृतकला जिह्वायां च सरस्वती॥ २४॥

उत्तर दिशामें कौमारी और ईशान-कोणमें शूलधारिणीदेवी रक्षा करे। ब्रह्माणि! तुम ऊपरकी ओरसे मेरी रक्षा करो और वैष्णवीदेवी नीचेकी ओरसे मेरी रक्षा करे॥ १९॥ इसी प्रकार शवको अपना वाहन बनानेवाली चामुण्डादेवी दसों दिशाओंमें मेरी रक्षा करे।

जया आगेसे और विजया पीछेकी ओरसे मेरी रक्षा करे॥ २०॥ वामभागमें अजिता और दक्षिणभागमें अपराजिता रक्षा करे। उद्योतिनी शिखाकी रक्षा करे। उमा मेरे मस्तकपर विराजमान होकर रक्षा करे॥ २१॥ ललाटमें मालाधरी रक्षा करे और यशस्विनीदेवी मेरी भौंहोंका संरक्षण करे। भौंहोंके मध्यभागमें त्रिनेत्रा और नथुनोंकी यमघण्टादेवी रक्षा करे॥ २२॥ दोनों नेत्रोंके मध्यभागमें शंखिनी और कानोंमें द्वारवासिनी रक्षा करे। कालिकादेवी कपोलोंकी तथा भगवती शांकरी कानोंके मूलभागकी रक्षा करे॥ २३॥ नासिकामें सुगन्धा और ऊपरके ओठमें चर्चिकादेवी रक्षा करे। नीचेके ओठमें अमृतकला तथा जिह्वामें सरस्वतीदेवी रक्षा करे॥ २४॥

दन्तान् रक्षतु कौमारी कण्ठदेशे तु चण्डिका।
घण्टिकां चित्रघण्टा च महामाया च तालुके॥ २५॥
कामाक्षी चिबुकं रक्षेद् वाचं मे सर्वमङ्गला।
ग्रीवायां भद्रकाली च पृष्ठवंशे धनुर्धरी॥ २६॥
नीलग्रीवा बहिःकण्ठे नलिकां नलकूबरी।
स्कन्धयोः खड्गिनी रक्षेद् बाहू मे वज्रधारिणी॥ २७॥
हस्तयोर्दण्डिनी रक्षेदम्बिका चाङ्गुलीषु च।
नखाञ्छूलेश्वरी रक्षेत्कुक्षौ रक्षेत्कुलेश्वरी॥ २८॥
स्तनौ रक्षेन्महादेवी मनः शोकविनाशिनी।
हृदये ललिता देवी उदरे शूलधारिणी॥ २९॥
नाभौ च कामिनी रक्षेद् गुह्यं गुह्येश्वरी तथा।
पूतना कामिका मेढ्रं गुदे महिषवाहिनी॥ ३०॥

कौमारी दाँतोंकी और चण्डिका कण्ठप्रदेशकी रक्षा करे। चित्रघण्टा गलेकी घाँटीकी और महामाया तालुमें रहकर रक्षा करे॥ २५॥ कामाक्षी ठोढ़ीकी और सर्वमंगला मेरी वाणीकी रक्षा करे। भद्रकाली ग्रीवामें और धनुर्धरी पृष्ठवंश (मेरुदण्ड)-में रहकर रक्षा करे॥ २६॥ कण्ठके बाहरी भागमें नीलग्रीवा और कण्ठकी नलीमें नलकूबरी रक्षा करे। दोनों कंधोंमें खड्गिनी और मेरी दोनों भुजाओंकी वज्रधारिणी रक्षा करे॥ २७॥ दोनों हाथोंमें दण्डिनी और अंगुलियोंमें अम्बिका रक्षा करे। शूलेश्वरी नखोंकी रक्षा करे। कुलेश्वरी कुक्षि (पेट)-में रहकर रक्षा करे॥ २८॥

महादेवी दोनों स्तनोंकी और शोकविनाशिनीदेवी मनकी रक्षा करे। ललितादेवी हृदयमें और शूलधारिणी उदरमें रहकर रक्षा करे॥ २९॥ नाभिमें कामिनी और गुह्यभागकी गुह्येश्वरी रक्षा करे। पूतना और कामिका लिंगकी और महिषवाहिनी गुदाकी रक्षा करे॥ ३०॥

कट्यां भगवती रक्षेज्जानुनी विन्ध्यवासिनी।
जङ्घे महाबला रक्षेत्सर्वकामप्रदायिनी॥ ३१॥
गुल्फयोर्नारसिंही च पादपृष्ठे तु तैजसी।
पादाङ्गुलीषु श्री रक्षेत्पादाधस्तलवासिनी॥ ३२॥
नखान् दंष्ट्राकराली च केशांश्चैवोर्ध्वकेशिनी।
रोमकूपेषु कौबेरी त्वचं वागीश्वरी तथा॥ ३३॥
रक्तमज्जावसामांसान्यस्थिमेदांसि पार्वती।
अन्त्राणि कालरात्रिश्च पित्तं च मुकुटेश्वरी॥ ३४॥
पद्मावती पद्मकोशे कफे चूडामणिस्तथा।
ज्वालामुखी नखज्वालामभेद्या सर्वसंधिषु॥ ३५॥
शुक्रं ब्रह्माणि मे रक्षेच्छायां छत्रेश्वरी तथा।
अहंकारं मनो बुद्धिं रक्षेन्मे धर्मधारिणी॥ ३६॥

भगवती कटिभागमें और विन्ध्यवासिनी घुटनोंकी रक्षा करे। सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली महाबलादेवी दोनों पिण्डलियोंकी रक्षा करे॥ ३१॥ नारसिंही दोनों घुट्ठियोंकी और तैजसीदेवी दोनों चरणोंके पृष्ठभागकी रक्षा करे। श्रीदेवी पैरोंकी अंगुलियोंमें और तलवासिनी पैरोंके तलुओंमें रहकर रक्षा करे॥ ३२॥ अपनी दाढ़ोंके कारण भयंकर दिखायी देनेवाली दंष्ट्राकरालीदेवी नखोंकी और ऊर्ध्वकेशिनीदेवी केशोंकी रक्षा करे। रोमावलियोंके छिद्रोंमें कौबेरी और त्वचाकी वागीश्वरीदेवी रक्षा करे॥ ३३॥ पार्वतीदेवी रक्त, मज्जा, वसा, मांस, हड्डी और मेदकी रक्षा करे। आँतोंकी कालरात्रि और पित्तकी मुकुटेश्वरी रक्षा करे॥ ३४॥ मूलाधार आदि कमल-कोशोंमें पद्मावतीदेवी और कफमें चूडामणिदेवी स्थित होकर रक्षा करे। नखके तेजकी ज्वालामुखी रक्षा करे। जिसका किसी भी अस्त्रसे भेदन नहीं हो सकता, वह अभेद्यादेवी शरीरकी समस्त संधियोंमें रहकर रक्षा करे॥ ३५॥

ब्रह्माणि! आप मेरे वीर्यकी रक्षा करें। छत्रेश्वरी छायाकी तथा धर्मधारिणी-देवी मेरे अहंकार, मन और बुद्धिकी रक्षा करे॥ ३६॥

प्राणापानौ तथा व्यानमुदानं च समानकम्।
वज्रहस्ता च मे रक्षेत्प्राणं कल्याणशोभना॥ ३७॥
रसे रूपे च गन्धे च शब्दे स्पर्शे च योगिनी।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव रक्षेन्नारायणी सदा॥ ३८॥
आयू रक्षतु वाराही धर्मं रक्षतु वैष्णवी।
यशः कीर्तिं च लक्ष्मीं च धनं विद्यां च चक्रिणी॥ ३९॥
गोत्रमिन्द्राणि मे रक्षेत्पशून्मे रक्ष चण्डिके।
पुत्रान् रक्षेन्महालक्ष्मीर्भार्यां रक्षतु भैरवी॥ ४०॥
पन्थानं सुपथा रक्षेन्मार्गं क्षेमकरी तथा।
राजद्वारे महालक्ष्मीर्विजया सर्वतः स्थिता॥ ४१॥
रक्षाहीनं तु यत्स्थानं वर्जितं कवचेन तु।
तत्सर्वं रक्ष मे देवि जयन्ती पापनाशिनी॥ ४२॥

हाथमें वज्र धारण करनेवाली वज्रहस्तादेवी मेरे प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान वायुकी रक्षा करे। कल्याणसे शोभित होनेवाली भगवती कल्याणशोभना मेरे प्राणकी रक्षा करे॥ ३७॥ रस, रूप, गन्ध, शब्द और स्पर्श—इन विषयोंका अनुभव करते समय योगिनीदेवी रक्षा करे तथा सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुणकी रक्षा सदा नारायणीदेवी करे॥ ३८॥ वाराही आयुकी रक्षा करे। वैष्णवी धर्मकी रक्षा करे तथा चक्रिणी (चक्र धारण करनेवाली)-देवी यश, कीर्ति, लक्ष्मी, धन तथा विद्याकी रक्षा करे॥ ३९॥ इन्द्राणि! आप मेरे गोत्रकी रक्षा करें। चण्डिके! तुम मेरे पशुओंकी रक्षा करो। महालक्ष्मी पुत्रोंकी रक्षा करे और भैरवी पत्नीकी रक्षा करे॥ ४०॥ मेरे पथकी सुपथा तथा मार्गकी क्षेमकरी रक्षा करे। राजाके दरबारमें महालक्ष्मी रक्षा करे तथा सब ओर व्याप्त रहनेवाली विजयादेवी सम्पूर्ण भयोंसे मेरी रक्षा करे॥ ४१॥

देवि! जो स्थान कवचमें नहीं कहा गया है, अतएव रक्षासे रहित है, वह सब तुम्हारे द्वारा सुरक्षित हो; क्योंकि तुम विजयशालिनी और पापनाशिनी हो॥ ४२॥

पदमेकं न गच्छेत्तु यदीच्छेच्छुभमात्मनः।
कवचेनावृतो नित्यं यत्र यत्रैव गच्छति॥ ४३॥
तत्र तत्रार्थलाभश्च विजयः सार्वकामिकः।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यते भूतले पुमान्॥ ४४॥
निर्भयो जायते मर्त्यः संग्रामेष्वपराजितः।
त्रैलोक्ये तु भवेत्पूज्यः कवचेनावृतः पुमान्॥ ४५॥
इदं तु देव्याः कवचं देवानामपि दुर्लभम्।
यः पठेत्प्रयतो नित्यं त्रिसन्ध्यं श्रद्धयान्वितः॥ ४६॥
दैवी कला भवेत्तस्य त्रैलोक्येष्वपराजितः।
जीवेद् वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः॥ ४७॥

यदि अपने शरीरका भला चाहे तो मनुष्य बिना कवचके कहीं एक पग भी न जाय—कवचका पाठ करके ही यात्रा करे। कवचके द्वारा सब ओरसे सुरक्षित मनुष्य जहाँ-जहाँ भी जाता है, वहाँ-वहाँ उसे धन-लाभ होता है तथा सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धि करनेवाली विजयकी प्राप्ति होती है। वह जिस-जिस अभीष्ट वस्तुका चिन्तन करता है, उस-उसको निश्चय ही प्राप्त कर लेता है। वह पुरुष इस पृथ्वीपर तुलनारहित महान् ऐश्वर्यका भागी होता है॥ ४३-४४॥ कवचसे सुरक्षित मनुष्य निर्भय हो जाता है। युद्धमें उसकी पराजय नहीं होती तथा वह तीनों लोकोंमें पूजनीय होता है॥ ४५॥ देवीका यह कवच देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। जो प्रतिदिन नियमपूर्वक तीनों संध्याओंके समय श्रद्धाके साथ इसका पाठ करता है, उसे दैवी कला प्राप्त होती है तथा वह तीनों लोकोंमें कहीं भी पराजित नहीं होता। इतना ही नहीं, वह अपमृत्युसे* रहित हो सौसे भी अधिक वर्षोंतक जीवित रहता है॥ ४६-४७॥

* अकाल-मृत्यु अथवा अग्नि, जल, बिजली एवं सर्प आदिसे होनेवाली मृत्युको 'अपमृत्यु' कहते हैं।

नश्यन्ति व्याधयः सर्वे लूताविस्फोटकादयः।
स्थावरं जङ्गमं चैव कृत्रिमं चापि यद्विषम्॥ ४८॥
अभिचाराणि सर्वाणि मन्त्रयन्त्राणि भूतले।
भूचराः खेचराश्चैव जलजाश्चोपदेशिकाः॥ ४९॥
सहजा कुलजा माला डाकिनी शाकिनी तथा।
अन्तरिक्षचरा घोरा डाकिन्यश्च महाबलाः॥ ५०॥
ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः।
ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः॥ ५१॥
नश्यन्ति दर्शनात्तस्य कवचे हृदि संस्थिते।
मानोन्नतिर्भवेद् राज्ञस्तेजोवृद्धिकरं परम्॥ ५२॥

मकरी, चेचक और कोढ़ आदि उसकी सम्पूर्ण व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। कनेर, भाँग, अफीम, धतूरे आदिका स्थावर विष, साँप और बिच्छू आदिके काटनेसे चढ़ा हुआ जंगम विष तथा अहिफेन और तेलके संयोग आदिसे बननेवाला कृत्रिम विष—ये सभी प्रकारके विष दूर हो जाते हैं, उनका कोई असर नहीं होता॥ ४८॥ इस पृथ्वीपर मारण-मोहन आदि जितने आभिचारिक प्रयोग होते हैं तथा इस प्रकारके जितने मन्त्र-यन्त्र होते हैं, वे सब इस कवचको हृदयमें धारण कर लेनेपर उस मनुष्यको देखते ही नष्ट हो जाते हैं। ये ही नहीं, पृथ्वीपर विचरनेवाले ग्रामदेवता, आकाशचारी देवविशेष, जलके सम्बन्धसे प्रकट होनेवाले गण, उपदेशमात्रसे सिद्ध होनेवाले निम्नकोटिके देवता, अपने जन्मके साथ प्रकट होनेवाले देवता, कुलदेवता, माला (कण्ठमाला आदि), डाकिनी, शाकिनी, अन्तरिक्षमें विचरनेवाली अत्यन्त बलवती भयानक डाकिनियाँ, ग्रह, भूत, पिशाच, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, ब्रह्मराक्षस, बेताल, कूष्माण्ड और भैरव आदि अनिष्टकारक देवता भी हृदयमें कवच धारण किये रहनेपर उस मनुष्यको देखते ही भाग जाते हैं। कवचधारी पुरुषको राजासे सम्मान-वृद्धि प्राप्त होती है। यह कवच मनुष्यके तेजकी वृद्धि करनेवाला और उत्तम है॥ ४९—५२॥

यशसा वर्धते सोऽपि कीर्तिमण्डितभूतले।
जपेत्सप्तशतीं चण्डीं कृत्वा तु कवचं पुरा॥ ५३॥

यावद्भूमण्डलं धत्ते सशैलवनकाननम्।
तावत्तिष्ठति मेदिन्यां संततिः पुत्रपौत्रिकी॥ ५४॥

देहान्ते परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम्।
प्राप्नोति पुरुषो नित्यं महामायाप्रसादतः॥ ५५॥

लभते परमं रूपं शिवेन सह मोदते॥ ॐ॥ ५६॥

इति देव्याः कवचं सम्पूर्णम्।

कवचका पाठ करनेवाला पुरुष अपनी कीर्तिसे विभूषित भूतलपर अपने सुयशके साथ-साथ वृद्धिको प्राप्त होता है। जो पहले कवचका पाठ करके उसके बाद सप्तशती चण्डीका पाठ करता है, उसकी जबतक वन, पर्वत और काननोंसहित यह पृथ्वी टिकी रहती है, तबतक यहाँ पुत्र-पौत्र आदि संतानपरम्परा बनी रहती है॥ ५३-५४॥ फिर देहका अन्त होनेपर वह पुरुष भगवती महामायाके प्रसादसे उस नित्य परमपदको प्राप्त होता है, जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ है॥ ५५॥ वह सुन्दर दिव्य रूप धारण करता और कल्याणमय शिवके साथ आनन्दका भागी होता है॥ ५६॥

अथार्गलास्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीअर्गलास्तोत्रमन्त्रस्य विष्णुर्ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहालक्ष्मीर्देवता, श्रीजगदम्बाप्रीतये सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः ॥

ॐ नमश्चण्डिकायै ॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥ १ ॥

ॐ चण्डिकादेवीको नमस्कार है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—जयन्ती[१], मंगला[२], काली[३], भद्रकाली[४], कपालिनी[५], दुर्गा[६], क्षमा[७], शिवा[८], धात्री[९], स्वाहा[१०] और स्वधा[११]—इन

---

१. जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते इति 'जयन्ती'— सबसे उत्कृष्ट एवं विजयशालिनी। २. मङ्गं जननमरणादिरूपं सर्पणं भक्तानां लाति गृह्णाति नाशयति या सा मङ्गला मोक्षप्रदा— जो अपने भक्तोंके जन्म-मरण आदि संसार-बन्धनको दूर करती हैं, उन मोक्षदायिनी मंगलमयी देवीका नाम 'मंगला' है । ३. कलयति भक्षयति प्रलयकाले सर्वम् इति काली— जो प्रलयकालमें सम्पूर्ण सृष्टिको अपना ग्रास बना लेती है; वह 'काली' है। ४. भद्रं मङ्गलं सुखं वा कलयति स्वीकरोति भक्तेभ्यो दातुम् इति भद्रकाली सुखप्रदा— जो अपने भक्तोंको देनेके लिये ही भद्र, सुख किंवा मंगल स्वीकार करती है, वह 'भद्रकाली' है। ५. हाथमें कपाल तथा गलेमें मुण्डमाला धारण करनेवाली। ६. दुःखेन अष्टाङ्गयोगकर्मोपासनारूपेण क्लेशेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा— जो अष्टांगयोग, कर्म एवं उपासनारूप दुःसाध्य साधनसे प्राप्त होती हैं, वे जगदम्बिका 'दुर्गा' कहलाती हैं। ७. क्षमते सहते भक्तानाम् अन्येषां वा सर्वानपराधान् जननीत्वेनातिशयकरुणामयस्वभावादिति क्षमा— सम्पूर्ण जगत्की जननी होनेसे अत्यन्त करुणामय स्वभाव होनेके कारण जो भक्तों अथवा दूसरोंके भी सारे अपराध क्षमा करती हैं, उनका नाम 'क्षमा' है। ८. सबका शिव अर्थात् कल्याण करनेवाली जगदम्बाको 'शिवा' कहते हैं। ९.सम्पूर्ण प्रपंचको धारण करनेके कारण भगवतीका नाम 'धात्री' है। १०.स्वाहारूपसे यज्ञभाग ग्रहण करके देवताओंका पोषण करनेवाली। ११.स्वधारूपसे श्राद्ध और तर्पणको स्वीकार करके पितरोंका पोषण करनेवाली।

जय त्वं देवि चामुण्डे जय भूतार्तिहारिणि।
जय सर्वगते देवि कालरात्रि नमोऽस्तु ते॥ २॥

मधुकैटभविद्राविविधातृवरदे नमः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ ३॥

महिषासुरनिर्णाशि भक्तानां सुखदे नमः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ ४॥

रक्तबीजवधे देवि चण्डमुण्डविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ ५॥

शुम्भस्यैव निशुम्भस्य धूम्राक्षस्य च मर्दिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ ६॥

नामोंसे प्रसिद्ध जगदम्बिके! तुम्हें मेरा नमस्कार हो। देवि चामुण्डे! तुम्हारी जय हो। सम्पूर्ण प्राणियोंकी पीड़ा हरनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो। सबमें व्याप्त रहनेवाली देवि! तुम्हारी जय हो। कालरात्रि! तुम्हें नमस्कार हो॥ १-२॥ मधु और कैटभको मारनेवाली तथा ब्रह्माजीको वरदान देनेवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है। तुम मुझे रूप (आत्मस्वरूपका ज्ञान) दो, जय (मोहपर विजय) दो, यश (मोह-विजय तथा ज्ञान-प्राप्तिरूप यश) दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ ३॥ महिषासुरका नाश करनेवाली तथा भक्तोंको सुख देनेवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है। तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ ४॥ रक्तबीजका वध और चण्ड-मुण्डका विनाश करनेवाली देवि! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ ५॥ शुम्भ और निशुम्भ तथा धूम्रलोचनका मर्दन करनेवाली देवि! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ ६॥

वन्दिताङ्घ्रियुगे देवि सर्वसौभाग्यदायिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ ७ ॥
अचिन्त्यरूपचरिते सर्वशत्रुविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ ८ ॥
नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ ९ ॥
स्तुवद्भ्यो भक्तिपूर्वं त्वां चण्डिके व्याधिनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ १० ॥
चण्डिके सततं ये त्वामर्चयन्तीह भक्तितः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ ११ ॥
देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ १२ ॥

सबके द्वारा वन्दित युगल चरणोंवाली तथा सम्पूर्ण सौभाग्य प्रदान करनेवाली देवि! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ ७॥ देवि! तुम्हारे रूप और चरित्र अचिन्त्य हैं। तुम समस्त शत्रुओंका नाश करनेवाली हो। रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ ८॥ पापोंको दूर करनेवाली चण्डिके! जो भक्तिपूर्वक तुम्हारे चरणोंमें सर्वदा मस्तक झुकाते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ ९॥ रोगोंका नाश करनेवाली चण्डिके! जो भक्तिपूर्वक तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ १०॥ चण्डिके! इस संसारमें जो भक्तिपूर्वक तुम्हारी पूजा करते हैं, उन्हें रूप दो, जय दो, यश दो और उनके काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ ११॥ मुझे सौभाग्य और आरोग्य दो। परम सुख दो, रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ १२॥

विधेहि द्विषतां नाशं विधेहि बलमुच्चकैः।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ १३ ॥
विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ १४ ॥
सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्टचरणेऽम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ १५ ॥
विद्यावन्तं यशस्वन्तं लक्ष्मीवन्तं जनं कुरु।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ १६ ॥
प्रचण्डदैत्यदर्पघ्ने चण्डिके प्रणताय मे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ १७ ॥
चतुर्भुजे चतुर्वक्त्रसंस्तुते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ १८ ॥

जो मुझसे द्वेष रखते हों, उनका नाश और मेरे बलकी वृद्धि करो। रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ १३॥ देवि! मेरा कल्याण करो। मुझे उत्तम सम्पत्ति प्रदान करो। रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ १४॥

अम्बिके! देवता और असुर—दोनों ही अपने माथेके मुकुटकी मणियोंको तुम्हारे चरणोंपर घिसते रहते हैं। तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ १५॥ तुम अपने भक्तजनको विद्वान्, यशस्वी और लक्ष्मीवान् बनाओ तथा रूप दो, जय दो, यश दो और उसके काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ १६॥ प्रचण्ड दैत्योंके दर्पका दलन करनेवाली चण्डिके! मुझ शरणागतको रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ १७॥ चतुर्मुख ब्रह्माजीके द्वारा प्रशंसित चार भुजाधारिणी परमेश्वरि! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ १८॥

कृष्णेन संस्तुते देवि शश्वद्भक्त्या सदाम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ १९॥

हिमाचलसुतानाथसंस्तुते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ २०॥

इन्द्राणीपतिसद्भावपूजिते परमेश्वरि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ २१॥

देवि प्रचण्डदोर्दण्डदैत्यदर्पविनाशिनि।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ २२॥

देवि भक्तजनोद्दामदत्तानन्दोदयेऽम्बिके।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥ २३॥

देवि अम्बिके! भगवान् विष्णु नित्य-निरन्तर भक्तिपूर्वक तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं। तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ १९॥ हिमालय-कन्या पार्वतीके पति महादेवजीके द्वारा प्रशंसित होनेवाली परमेश्वरि! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ २०॥ शचीपति इन्द्रके द्वारा सद्भावसे पूजित होनेवाली परमेश्वरि! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ २१॥ प्रचण्ड भुजदण्डोंवाले दैत्योंका घमंड चूर करनेवाली देवि! तुम रूप दो, जय दो, यश दो और काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ २२॥ देवि अम्बिके! तुम अपने भक्तजनोंको सदा असीम आनन्द प्रदान करती रहती हो। मुझे रूप दो, जय दो, यश दो और मेरे काम-क्रोध आदि शत्रुओंका नाश करो॥ २३॥

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्॥ २४॥

इदं स्तोत्रं पठित्वा तु महास्तोत्रं पठेन्नरः।
स तु सप्तशतीसंख्यावरमाप्नोति सम्पदाम्॥ ॐ॥ २५॥

इति देव्या अर्गलास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

मनकी इच्छाके अनुसार चलनेवाली मनोहर पत्नी प्रदान करो, जो दुर्गम संसारसागरसे तारनेवाली तथा उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हो॥ २४॥ जो मनुष्य इस स्तोत्रका पाठ करके सप्तशतीरूपी महास्तोत्रका पाठ करता है, वह सप्तशतीकी जप-संख्यासे मिलनेवाले श्रेष्ठ फलको प्राप्त होता है। साथ ही वह प्रचुर सम्पत्ति भी प्राप्त कर लेता है॥ २५॥

अथ कीलकम्

ॐ अस्य श्रीकीलकमन्त्रस्य शिव ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमहासरस्वती देवता, श्रीजगदम्बाप्रीत्यर्थं सप्तशतीपाठाङ्गत्वेन जपे विनियोगः।

ॐ नमश्चण्डिकायै॥

मार्कण्डेय उवाच

ॐ विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे।
श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे॥ १॥

सर्वमेतद्विजानीयान्मन्त्राणामभिकीलकम्।
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सततं जाप्यतत्परः॥ २॥

सिद्ध्यन्त्युच्चाटनादीनि वस्तूनि सकलान्यपि।
एतेन स्तुवतां देवी स्तोत्रमात्रेण सिद्ध्यति॥ ३॥

ॐ चण्डिकादेवीको नमस्कार है।

मार्कण्डेयजी कहते हैं—विशुद्ध ज्ञान ही जिनका शरीर है, तीनों वेद ही जिनके तीन दिव्य नेत्र हैं, जो कल्याण-प्राप्तिके हेतु हैं तथा अपने मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट धारण करते हैं, उन भगवान् शिवको नमस्कार है॥ १॥ मन्त्रोंका जो अभिकीलक है अर्थात् मन्त्रोंकी सिद्धिमें विघ्न उपस्थित करनेवाले शापरूपी कीलकका जो निवारण करनेवाला है, उस सप्तशतीस्तोत्रको सम्पूर्णरूपसे जानना चाहिये (और जानकर उसकी उपासना करनी चाहिये), यद्यपि सप्तशतीके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंके जपमें भी जो निरन्तर लगा रहता है, वह भी कल्याणका भागी होता है॥ २॥ उसके भी उच्चाटन आदि कर्म सिद्ध होते हैं तथा उसे भी समस्त दुर्लभ वस्तुओंकी प्राप्ति हो जाती है; तथापि जो अन्य मन्त्रोंका जप न करके केवल इस सप्तशती नामक स्तोत्रसे ही देवीकी स्तुति करते हैं, उन्हें स्तुतिमात्रसे ही सच्चिदानन्दस्वरूपिणीदेवी सिद्ध हो जाती हैं॥ ३॥

न मन्त्रो नौषधं तत्र न किञ्चिदपि विद्यते।
विना जाप्येन सिद्ध्येत सर्वमुच्चाटनादिकम्॥ ४॥
समग्राण्यपि सिद्ध्यन्ति लोकशङ्कामिमां हरः।
कृत्वा निमन्त्रयामास सर्वमेवमिदं शुभम्॥ ५॥
स्तोत्रं वै चण्डिकायास्तु तच्च गुप्तं चकार सः।
समाप्तिर्न च पुण्यस्य तां यथावन्नियन्त्रणाम्॥ ६॥
सोऽपि क्षेममवाप्नोति सर्वमेवं न संशयः।
कृष्णायां वा चतुर्दश्यामष्टम्यां वा समाहितः॥ ७॥

उन्हें अपने कार्यकी सिद्धिके लिये मन्त्र, ओषधि तथा अन्य किसी साधनके उपयोगकी आवश्यकता नहीं रहती। बिना जपके ही उनके उच्चाटन आदि समस्त आभिचारिक कर्म सिद्ध हो जाते हैं॥ ४॥ इतना ही नहीं, उनकी सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तुएँ भी सिद्ध होती हैं। लोगोंके मनमें यह शंका थी कि 'जब केवल सप्तशतीकी उपासनासे अथवा सप्तशतीको छोड़कर अन्य मन्त्रोंकी उपासनासे भी समानरूपसे सब कार्य सिद्ध होते हैं, तब इनमें श्रेष्ठ कौन–सा साधन है?' लोगोंकी इस शंकाको सामने रखकर भगवान् शंकरने अपने पास आये हुए जिज्ञासुओंको समझाया कि यह सप्तशती नामक सम्पूर्ण स्तोत्र ही सर्वश्रेष्ठ एवं कल्याणमय है॥ ५॥

तदनन्तर भगवती चण्डिकाके सप्तशती नामक स्तोत्रको महादेवजीने गुप्त कर दिया। सप्तशतीके पाठसे जो पुण्य प्राप्त होता है, उसकी कभी समाप्ति नहीं होती; किंतु अन्य मन्त्रोंके जपजन्य पुण्यकी समाप्ति हो जाती है। अतः भगवान् शिवने अन्य मन्त्रोंकी अपेक्षा जो सप्तशतीकी ही श्रेष्ठताका निर्णय किया, उसे यथार्थ ही जानना चाहिये॥ ६॥ अन्य मन्त्रोंका जप करनेवाला पुरुष भी यदि सप्तशतीके स्तोत्र और जपका अनुष्ठान कर ले तो वह भी पूर्णरूपसे ही कल्याणका भागी होता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो साधक कृष्णपक्षकी चतुर्दशी अथवा अष्टमीको एकाग्रचित्त होकर भगवतीकी सेवामें अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है और फिर उसे प्रसादरूपसे ग्रहण करता है, उसीपर भगवती

ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति।
इत्थंरूपेण कीलेन महादेवेन कीलितम्॥ ८ ॥
यो निष्कीलां विधायैनां नित्यं जपति संस्फुटम्।
स सिद्धः स गणः सोऽपि गन्धर्वो जायते नरः॥ ९ ॥
न चैवाप्यटतस्तस्य भयं क्वापीह जायते।
नापमृत्युवशं याति मृतो मोक्षमवाप्नुयात्॥ १० ॥
ज्ञात्वा प्रारभ्य कुर्वीत न कुर्वाणो विनश्यति।
ततो ज्ञात्वैव सम्पन्नमिदं प्रारभ्यते बुधैः॥ ११ ॥

प्रसन्न होती हैं; अन्यथा उनकी प्रसन्नता नहीं प्राप्त होती।[१] इस प्रकार सिद्धिके प्रतिबन्धकरूप कीलके द्वारा महादेवजीने इस स्तोत्रको कीलित कर रखा है॥ ७-८॥ जो पूर्वोक्त रीतिसे निष्कीलन करके इस सप्तशतीस्तोत्रका प्रतिदिन स्पष्ट उच्चारणपूर्वक पाठ करता है, वह मनुष्य सिद्ध हो जाता है, वही देवीका पार्षद होता है और वही गन्धर्व भी होता है॥ ९॥ सर्वत्र विचरते रहनेपर भी इस संसारमें उसे कहीं भी भय नहीं होता। वह अपमृत्युके वशमें नहीं पड़ता तथा देह त्यागनेके अनन्तर मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ १०॥ अतः कीलनको जानकर उसका परिहार करके ही सप्तशतीका पाठ आरम्भ करे। जो ऐसा नहीं करता, उसका नाश हो जाता है।[२] इसलिये कीलक और निष्कीलनका ज्ञान प्राप्त करनेपर ही यह स्तोत्र निर्दोष होता है और विद्वान् पुरुष इस निर्दोष स्तोत्रका ही पाठ आरम्भ करते हैं॥ ११॥

---

१. यह निष्कीलन अथवा शापोद्धारका ही विशेष प्रकार है। भगवतीका उपासक उपर्युक्त तिथिको देवीकी सेवामें उपस्थित हो अपना न्यायोपार्जित धन उन्हें अर्पित करते हुए एकाग्रचित्तसे प्रार्थना करे—'मातः! आजसे यह सारा धन तथा अपने-आपको भी मैंने आपकी सेवामें अर्पण कर दिया। इसपर मेरा कोई स्वत्व नहीं रहा।' फिर भगवतीका ध्यान करते हुए यह भावना करे, मानो जगदम्बा कह रही हैं—'बेटा! संसार-यात्राके निर्वाहार्थ तू मेरा यह प्रसादरूप धन ग्रहण कर।' इस प्रकार देवीकी आज्ञा शिरोधार्य करके उस धनको प्रसाद-बुद्धिसे ग्रहण करे और धर्मशास्त्रोक्त मार्गसे उसका सद्व्यय करते हुए सदा देवीके ही अधीन होकर रहे। यह 'दानप्रतिग्रह-करण' कहलाता है। इससे सप्तशतीका शापोद्धार होता और देवीकी कृपा प्राप्त होती है।

२. यहाँ कीलक और निष्कीलनके ज्ञानकी अनिवार्यता बतानेके लिये ही विनाश

सौभाग्यादि च यत्किञ्चिद् दृश्यते ललनाजने।
तत्सर्वं तत्प्रसादेन तेन जाप्यमिदं शुभम्॥ १२॥

शनैस्तु जप्यमानेऽस्मिन् स्तोत्रे सम्पत्तिरुच्चकैः।
भवत्येव समग्रापि ततः प्रारभ्यमेव तत्॥ १३॥

ऐश्वर्यं यत्प्रसादेन सौभाग्यारोग्यसम्पदः।
शत्रुहानिः परो मोक्षः स्तूयते सा न किं जनैः॥ॐ॥ १४॥

इति देव्याः कीलकस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

स्त्रियोंमें जो कुछ भी सौभाग्य आदि दृष्टिगोचर होता है, वह सब देवीके प्रसादका ही फल है। अतः इस कल्याणमय स्तोत्रका सदा जप करना चाहिये॥ १२॥ इस स्तोत्रका मन्दस्वरसे पाठ करनेपर स्वल्प फलकी प्राप्ति होती है और उच्चस्वरसे पाठ करनेपर पूर्ण फलकी सिद्धि होती है। अतः उच्चस्वरसे ही इसका पाठ आरम्भ करना चाहिये॥ १३॥ जिनके प्रसादसे ऐश्वर्य, सौभाग्य, आरोग्य, सम्पत्ति, शत्रुनाश तथा परम मोक्षकी भी सिद्धि होती है, उन कल्याणमयी जगदम्बाकी स्तुति मनुष्य क्यों नहीं करते?॥ १४॥

होना कहा है। वास्तवमें किसी प्रकार भी देवीका पाठ करे, उससे लाभ ही होता है। यह बात वचनान्तरोंसे सिद्ध है।

इसके अनन्तर रात्रिसूक्तका पाठ करना उचित है। पाठके आरम्भमें रात्रिसूक्त और अन्तमें देवीसूक्तके पाठकी विधि है। मारीचकल्पका वचन है—

रात्रिसूक्तं पठेदादौ मध्ये सप्तशतीस्तवम्।
प्रान्ते तु पठनीयं वै देवीसूक्तमिति क्रमः॥

रात्रिसूक्तके बाद विनियोग, न्यास और ध्यानपूर्वक नवार्णमन्त्रका जप करके सप्तशतीका पाठ आरम्भ करना चाहिये। पाठके अन्तमें पुनः विधिपूर्वक नवार्णमन्त्रका जप करके देवीसूक्तका तथा तीनों रहस्योंका पाठ करना उचित है। कोई-कोई नवार्णजपके बाद रात्रिसूक्तका पाठ बतलाते हैं तथा अन्तमें भी देवीसूक्तके बाद नवार्णजपका औचित्य प्रतिपादन करते हैं; किंतु यह ठीक नहीं है। चिदम्बरसंहितामें कहा है—'**मध्ये नवार्णपुटितं कृत्वा स्तोत्रं सदाभ्यसेत्।**' अर्थात् सप्तशतीका पाठ बीचमें हो और आदि-अन्तमें नवार्णजपसे उसे सम्पुटित कर दिया जाय। डामरतन्त्रमें यह बात अधिक स्पष्ट कर दी गयी है—

शतमादौ शतं चान्ते जपेन्मन्त्रं नवार्णकम्।
चण्डीं सप्तशतीं मध्ये सम्पुटोऽयमुदाहृतः॥

अर्थात् आदि और अन्तमें सौ-सौ बार नवार्णमन्त्रका जप करे और मध्यमें सप्तशती दुर्गाका पाठ करे; यह सम्पुट कहा गया है। यदि आदि-अन्तमें रात्रिसूक्त और देवीसूक्तका पाठ हो और उसके पहले एवं अन्तमें नवार्ण-जप हो, तब तो वह पाठ नवार्ण-सम्पुटित नहीं कहला सकता; क्योंकि जिससे सम्पुट हो उसके मध्यमें अन्य प्रकारके मन्त्रका प्रवेश नहीं होना चाहिये। यदि बीचमें रात्रिसूक्त और देवीसूक्त रहेंगे तो वह पाठ उन्हींसे सम्पुटित कहलायेगा; ऐसी दशामें डामरतन्त्र आदिके वचनोंसे स्पष्ट ही विरोध होगा। अतः पहले रात्रिसूक्त, फिर नवार्ण-जप, फिर न्यासपूर्वक सप्तशती-पाठ, फिर विधिवत् नवार्ण-जप, फिर क्रमशः देवीसूक्त एवं रहस्य-त्रयका पाठ—यही क्रम ठीक है। रात्रिसूक्त भी दो प्रकारके हैं—वैदिक और तान्त्रिक। वैदिक रात्रिसूक्त ऋग्वेदकी आठ ऋचाएँ हैं और तान्त्रिक तो दुर्गासप्तशतीके प्रथमाध्यायमें ही है। यहाँ दोनों दिये जाते हैं। रात्रिदेवताके प्रतिपादक सूक्तको रात्रिसूक्त कहते हैं। यह रात्रिदेवी दो प्रकारकी हैं—एक जीवरात्रि और दूसरी ईश्वररात्रि। जीवरात्रि वही है, जिसमें प्रतिदिन जगत्के साधारण जीवोंका व्यवहार लुप्त होता है। दूसरी ईश्वररात्रि वह है, जिसमें

ईश्वरके जगद्रूप व्यवहारका लोप होता है; उसीको कालरात्रि या महाप्रलयरात्रि कहते हैं। उस समय केवल ब्रह्म और उनकी मायाशक्ति, जिसे अव्यक्त प्रकृति कहते हैं, शेष रहती है। इसकी अधिष्ठात्रीदेवी 'भुवनेश्वरी' हैं।[1] रात्रिसूक्तसे उन्हींका स्तवन होता है।

अथ वेदोक्तं रात्रिसूक्तम्[2]

ॐ रात्रीत्याद्यष्टर्चस्य सूक्तस्य कुशिकः सौभरो रात्रिर्वा भारद्वाजो ऋषिः, रात्रिर्देवता, गायत्री छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।

ॐ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः। विश्वा अधि श्रियोऽधित॥ १ ॥

ओर्वप्रा अमर्त्यानिवतो देव्युद्वतः। ज्योतिषा बाधते तमः॥ २ ॥

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती। अपेदु हासते तमः॥ ३ ॥

महत्तत्त्वादिरूप व्यापक इन्द्रियोंसे सब देशोंमें समस्त वस्तुओंको प्रकाशित करनेवाली ये रात्रिरूपा देवी अपने उत्पन्न किये हुए जगत्‌के जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंको विशेषरूपसे देखती हैं और उनके अनुरूप फलकी व्यवस्था करनेके लिये समस्त विभूतियोंको धारण करती हैं॥ १॥

ये देवी अमर हैं और सम्पूर्ण विश्वको, नीचे फैलनेवाली लता आदिको तथा ऊपर बढ़नेवाले वृक्षोंको भी व्याप्त करके स्थित हैं; इतना ही नहीं, ये ज्ञानमयी ज्योतिसे जीवोंके अज्ञानान्धकारका नाश कर देती हैं॥ २॥

परा चिच्छक्तिरूपा रात्रिदेवी आकर अपनी बहिन ब्रह्मविद्यामयी उषादेवीको प्रकट करती हैं, जिससे अविद्यामय अन्धकार स्वतः नष्ट हो जाता है॥ ३॥

१. ब्रह्ममायात्मिका रात्रिः परमेशलयात्मिका। तदधिष्ठातृदेवी तु भुवनेशी प्रकीर्तिता॥
(देवीपुराण)

२. ऋग्वेद........मं० १० अ० १० सू० १२७ मन्त्र १ से ८ तक।

सा नो अद्य यस्या वयं नि ते यामन्नविक्ष्महि। वृक्षे न वसतिं वय: ॥ ४ ॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिण: । नि श्येनासश्चिदर्थिन: ॥ ५ ॥

यावया वृक्यं वृकं यवय स्तेनमूर्म्ये। अथा न: सुतरा भव॥ ६ ॥

उप मा पेपिशत्तम: कृष्णं व्यक्तमस्थित। उष ऋणेव यातय॥ ७ ॥

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिव: । रात्रि स्तोमं न जिग्युषे॥ ८ ॥

वे रात्रिदेवी इस समय मुझपर प्रसन्न हों, जिनके आनेपर हमलोग अपने घरोंमें सुखसे सोते हैं—ठीक वैसे ही, जैसे रात्रिके समय पक्षी वृक्षोंपर बनाये हुए अपने घोंसलोंमें सुखपूर्वक शयन करते हैं॥ ४॥

उस करुणामयी रात्रिदेवीके अंकमें सम्पूर्ण ग्रामवासी मनुष्य, पैरोंसे चलनेवाले गाय, घोड़े आदि पशु, पंखोंसे उड़नेवाले पक्षी एवं पतंग आदि, किसी प्रयोजनसे यात्रा करनेवाले पथिक और बाज आदि भी सुखपूर्वक सोते हैं॥ ५॥

हे रात्रिमयी चिच्छक्ति! तुम कृपा करके वासनामयी वृकी तथा पापमय वृकको हमसे अलग करो। काम आदि तस्करसमुदायको भी दूर हटाओ। तदनन्तर हमारे लिये सुखपूर्वक तरनेयोग्य हो जाओ—मोक्षदायिनी एवं कल्याणकारिणी बन जाओ॥ ६॥

हे उषा! हे रात्रिकी अधिष्ठात्री देवी! सब ओर फैला हुआ यह अज्ञानमय काला अन्धकार मेरे निकट आ पहुँचा है। तुम इसे ऋणकी भाँति दूर करो—जैसे धन देकर अपने भक्तोंके ऋण दूर करती हो, उसी प्रकार ज्ञान देकर इस अज्ञानको भी हटा दो॥ ७॥

हे रात्रिदेवी! तुम दूध देनेवाली गौके समान हो। मैं तुम्हारे समीप आकर स्तुति आदिसे तुम्हें अपने अनुकूल करता हूँ। परम व्योमस्वरूप परमात्माकी पुत्री! तुम्हारी कृपासे मैं काम आदि शत्रुओंको जीत चुका हूँ, तुम स्तोमकी भाँति मेरे इस हविष्यको भी ग्रहण करो॥ ८॥

अथ तन्त्रोक्तं रात्रिसूक्तम्*

ॐ विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्।
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥ १ ॥

ब्रह्मोवाच

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता॥ २ ॥
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः।
त्वमेव सन्ध्या सावित्री त्वं देवि जननी परा॥ ३ ॥
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्।
त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा॥ ४ ॥
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥ ५ ॥
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः।
महामोहा च भवती महादेवी महासुरी॥ ६ ॥
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा॥ ७ ॥
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा।
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च॥ ८ ॥
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा॥ ९ ॥
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी।
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी॥ १० ॥

---

* इसका अर्थ सप्तशतीके प्रथम अध्याय (पृष्ठ ६९ से लेकर ७२ तक)–में देखिये।

यच्च किञ्चित् क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके।
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा॥ ११ ॥
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति यो जगत्।
सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥ १२ ॥
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च।
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्॥ १३ ॥
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता।
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ॥ १४ ॥
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु।
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥ १५ ॥

इति रात्रिसूक्तम्।

श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्*

ॐ सर्वे वै देवा देवीमुपतस्थुः कासि त्वं महादेवीति॥ १ ॥

साब्रवीत्—अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च॥ २ ॥

ॐ सभी देवता देवीके समीप गये और नम्रतासे पूछने लगे—हे महादेवि! तुम कौन हो?॥ १ ॥

उसने कहा—मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ। मुझसे प्रकृति-पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत् उत्पन्न हुआ है॥ २ ॥

* अब यहाँ अर्थसहित देव्यथर्वशीर्ष दिया जाता है । अथर्ववेदमें इसकी बड़ी महिमा बतायी गयी है । इसके पाठसे देवीकी कृपा शीघ्र प्राप्त होती है, यद्यपि सप्तशतीपाठका अंग बनाकर इसका अन्यत्र कहीं उल्लेख नहीं हुआ है तथापि यदि सप्तशतीस्तोत्र आरम्भ करनेसे पूर्व इसका पाठ कर लिया जाय तो बहुत बड़ा लाभ हो

अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत्॥ ३॥

वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम्॥ ४॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ ॥ ५॥

अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि॥ ६॥

मैं आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ। मैं विज्ञान और अविज्ञानरूपा हूँ। अवश्य जाननेयोग्य ब्रह्म और अब्रह्म भी मैं ही हूँ। पंचीकृत और अपंचीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ। यह सारा दृश्य-जगत् मैं ही हूँ॥ ३॥

वेद और अवेद मैं हूँ। विद्या और अविद्या भी मैं, अजा और अनजा (प्रकृति और उससे भिन्न) भी मैं, नीचे-ऊपर, अगल-बगल भी मैं ही हूँ॥ ४॥

मैं रुद्रों और वसुओंके रूपमें संचार करती हूँ। मैं आदित्यों और विश्वेदेवोंके रूपोंमें फिरा करती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनोंका, इन्द्र एवं अग्निका और दोनों अश्विनीकुमारोंका भरण-पोषण करती हूँ॥ ५॥

मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भगको धारण करती हूँ। त्रैलोक्यको आक्रान्त करनेके लिये विस्तीर्ण पादक्षेप करनेवाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापतिको मैं ही धारण करती हूँ॥ ६॥

सकता है। इस उद्देश्यसे हम रात्रिसूक्तके बाद इसका समावेश करते हैं। आशा है, जगदम्बाके उपासक इससे संतुष्ट होंगे।

अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते। अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद। स दैवीं सम्पदमाप्नोति॥ ७॥

ते देवा अब्रुवन्—नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ ८ ॥
तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्मफलेषु जुष्टाम्।
दुर्गां देवीं शरणं प्रपद्यामहेऽसुरान्नाशयित्र्यै ते नमः॥ ९ ॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥ १०॥

देवोंको उत्तम हवि पहुँचानेवाले और सोमरस निकालनेवाले यजमानके लिये हविर्द्रव्योंसे युक्त धन धारण करती हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत्की ईश्वरी, उपासकोंको धन देनेवाली, ब्रह्मरूप और यज्ञार्होंमें (यजन करनेयोग्य देवोंमें) मुख्य हूँ। मैं आत्मस्वरूपपर आकाशादि निर्माण करती हूँ। मेरा स्थान आत्मस्वरूपको धारण करनेवाली बुद्धिवृत्तिमें है। जो इस प्रकार जानता है, वह दैवी सम्पत्ति लाभ करता है॥ ७॥

तब उन देवोंने कहा—देवीको नमस्कार है। बड़े-बड़ोंको अपने-अपने कर्तव्यमें प्रवृत्त करनेवाली कल्याणकर्त्रीको सदा नमस्कार है। गुणसाम्यावस्थारूपिणी मंगलमयी देवीको नमस्कार है। नियमयुक्त होकर हम उन्हें प्रणाम करते हैं॥ ८॥

उन अग्निके-से वर्णवाली, ज्ञानसे जगमगानेवाली, दीप्तिमती, कर्मफलप्राप्तिके हेतु सेवन की जानेवाली दुर्गादेवीकी हम शरणमें हैं। असुरोंका नाश करनेवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ ९॥

प्राणरूप देवोंने जिस प्रकाशमान वैखरी वाणीको उत्पन्न किया, उसे अनेक प्रकारके प्राणी बोलते हैं। वह कामधेनुतुल्य आनन्ददायक और अन्न तथा बल देनेवाली वाग्रूपिणी भगवती उत्तम स्तुतिसे संतुष्ट होकर हमारे समीप आये॥ १०॥

कालरात्रीं ब्रह्मस्तुतां वैष्णवीं स्कन्दमातरम्।
सरस्वतीमदितिं दक्षदुहितरं नमामः पावनां शिवाम्॥ ११॥
महालक्ष्म्यै च विद्महे सर्वशक्त्यै च धीमहि।
तन्नो देवी प्रचोदयात्॥ १२॥
अदितिर्ह्यजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
तां देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः॥ १३॥
कामो योनिः कमला वज्रपाणिर्गुहा हसा मातरिश्वाभ्रमिन्द्रः।
पुनर्गुहा सकला मायया च पुरूच्यैषा विश्वमातादिविद्योम्॥ १४॥
एषाऽऽत्मशक्तिः। एषा विश्वमोहिनी। पाशाङ्कुशधनुर्बाणधरा। एषा श्रीमहाविद्या। य एवं वेद स शोकं तरति॥ १५॥

कालका भी नाश करनेवाली, वेदोंद्वारा स्तुत हुई विष्णुशक्ति, स्कन्दमाता (शिवशक्ति), सरस्वती (ब्रह्मशक्ति), देवमाता अदिति और दक्षकन्या (सती), पापनाशिनी कल्याणकारिणी भगवतीको हम प्रणाम करते हैं॥ ११॥

हम महालक्ष्मीको जानते हैं और उन सर्वशक्तिरूपिणीका ही ध्यान करते हैं। वह देवी हमें उस विषयमें (ज्ञान-ध्यानमें) प्रवृत्त करें॥ १२॥

हे दक्ष! आपकी जो कन्या अदिति हैं, वे प्रसूता हुईं और उनके मृत्युरहित कल्याणमय देव उत्पन्न हुए॥ १३॥

काम (क), योनि (ए), कमला (ई), वज्रपाणि—इन्द्र (ल), गुहा (ह्रीं), ह, स—वर्ण, मातरिश्वा—वायु (क), अभ्र (ह), इन्द्र (ल), पुनः गुहा (ह्रीं), स, क, ल—वर्ण और माया (ह्रीं)—यह सर्वात्मिका जगन्माताकी मूल विद्या है और वह ब्रह्मरूपिणी है॥ १४॥

[शिवशक्त्यभेदरूपा, ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मिका, सरस्वती-लक्ष्मी-गौरीरूपा, अशुद्ध-मिश्र-शुद्धोपासनात्मिका, समरसीभूत-शिवशक्त्यात्मक ब्रह्मस्वरूपका निर्विकल्प ज्ञान देनेवाली, सर्वतत्त्वात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी—यही इस मन्त्रका भावार्थ है। यह मन्त्र सब मन्त्रोंका मुकुटमणि है और मन्त्रशास्त्रमें पंचदशी आदि श्रीविद्याके नामसे प्रसिद्ध है। इसके छः प्रकारके अर्थ अर्थात् भावार्थ, वाच्यार्थ, सम्प्रदायार्थ, लौकिकार्थ,

नमस्ते अस्तु भगवति मातरस्मान् पाहि सर्वतः॥ १६॥

सैषाष्टौ वसवः। सैषैकादश रुद्राः। सैषा द्वादशादित्याः। सैषा विश्वेदेवाः सोमपा असोमपाश्च। सैषा यातुधाना असुरा रक्षांसि पिशाचा यक्षाः सिद्धाः। सैषा सत्त्वरजस्तमांसि। सैषा ब्रह्मविष्णुरुद्ररूपिणी। सैषा प्रजापतीन्द्रमनवः। सैषा ग्रहनक्षत्रज्योतींषि। कलाकाष्ठादिकालरूपिणी। तामहं प्रणौमि नित्यम्॥

पापापहारिणीं देवीं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम्।
अनन्तां विजयां शुद्धां शरण्यां शिवदां शिवाम्॥ १७॥

रहस्यार्थ और तत्त्वार्थ 'नित्यषोडशिकार्णव' ग्रन्थमें बताये गये हैं। इसी प्रकार 'वरिवस्यारहस्य' आदि ग्रन्थोंमें इसके और भी अनेक अर्थ दिखाये गये हैं। श्रुतिमें भी ये मन्त्र इस प्रकारसे अर्थात् क्वचित् स्वरूपोच्चार, क्वचित् लक्षणा और लक्षित लक्षणासे और कहीं वर्णके पृथक्-पृथक् अवयव दर्शाकर जान-बूझकर विश्रृंखलरूपसे कहे गये हैं। इससे यह मालूम होगा कि ये मन्त्र कितने गोपनीय और महत्त्वपूर्ण हैं।]

ये परमात्माकी शक्ति हैं। ये विश्वमोहिनी हैं। पाश, अंकुश, धनुष और बाण धारण करनेवाली हैं। ये 'श्रीमहाविद्या' हैं। जो ऐसा जानता है, वह शोकको पार कर जाता है॥ १५॥

भगवती! तुम्हें नमस्कार है। माता! सब प्रकारसे हमारी रक्षा करो॥ १६॥

(मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहते हैं—) वही ये अष्ट वसु हैं; वही ये एकादश रुद्र हैं; वही ये द्वादश आदित्य हैं; वही ये सोमपान करनेवाले और सोमपान न करनेवाले विश्वेदेव हैं; वही ये यातुधान (एक प्रकारके राक्षस), असुर, राक्षस, पिशाच, यक्ष और सिद्ध हैं; वही ये सत्त्व-रज-तम हैं; वही ये ब्रह्म-विष्णु-रुद्ररूपिणी हैं; वही ये प्रजापति-इन्द्र-मनु हैं; वही ये ग्रह, नक्षत्र और तारे हैं; वही कला-काष्ठादि कालरूपिणी हैं; उन पाप नाश करनेवाली, भोग-मोक्ष देनेवाली, अन्तरहित, विजयाधिष्ठात्री, निर्दोष, शरण लेनेयोग्य, कल्याणदात्री और मंगलरूपिणी देवीको हम सदा प्रणाम करते हैं॥ १७॥

वियदीकारसंयुक्तं वीतिहोत्रसमन्वितम्।
अर्धेन्दुलसितं देव्या बीजं सर्वार्थसाधकम्॥ १८॥

एवमेकाक्षरं ब्रह्म यतयः शुद्धचेतसः।
ध्यायन्ति परमानन्दमया ज्ञानाम्बुराशयः॥ १९॥

वाङ्माया ब्रह्मसूस्तस्मात् षष्ठं वक्त्रसमन्वितम्।
सूर्योऽवामश्रोत्रबिन्दुसंयुक्तष्टात्तृतीयकः।
नारायणेन सम्मिश्रो वायुश्चाधरयुक् ततः।
विच्चे नवार्णकोऽर्णः स्यान्महदानन्ददायकः॥ २०॥

हृत्पुण्डरीकमध्यस्थां प्रातःसूर्यसमप्रभाम्।

वियत्—आकाश (ह) तथा 'ई' कारसे युक्त, वीतिहोत्र—अग्नि (र)-सहित, अर्धचन्द्र (ँ)-से अलंकृत जो देवीका बीज है, वह सब मनोरथ पूर्ण करनेवाला है। इस प्रकार इस एकाक्षर ब्रह्म (ह्रीं)-का ऐसे यति ध्यान करते हैं, जिनका चित्त शुद्ध है, जो निरतिशयानन्दपूर्ण और ज्ञानके सागर हैं। (यह मन्त्र देवीप्रणव माना जाता है। ॐकारके समान ही यह प्रणव भी व्यापक अर्थसे भरा हुआ है। संक्षेपमें इसका अर्थ इच्छा-ज्ञान-क्रिया, धार, अद्वैत, अखण्ड, सच्चिदानन्द, समरसीभूत, शिवशक्तिस्फुरण है।)॥ १८-१९॥

वाणी (ऐं), माया (ह्रीं), ब्रह्मसू—काम (क्लीं), इसके आगे छठा व्यंजन अर्थात् च, वही वक्त्र अर्थात् आकारसे युक्त (चा), सूर्य (म), 'अवाम श्रोत्र'—दक्षिण कर्ण (उ) और बिन्दु अर्थात् अनुस्वारसे युक्त (मुं), टकारसे तीसरा ड, वही नारायण अर्थात् 'आ' से मिश्र (डा), वायु (य), वही अधर अर्थात् 'ऐ' से युक्त (यै) और 'विच्चे' यह नवार्णमन्त्र उपासकोंको आनन्द और ब्रह्मसायुज्य देनेवाला है॥ २०॥

[इस मन्त्रका अर्थ—हे चित्स्वरूपिणी महासरस्वती! हे सद्रूपिणी महालक्ष्मी! हे आनन्दरूपिणी महाकाली! ब्रह्मविद्या पानेके लिये हम सब

पाशाङ्कुशधरां सौम्यां वरदाभयहस्तकाम्।
त्रिनेत्रां रक्तवसनां भक्तकामदुघां भजे॥ २१॥
नमामि त्वां महादेवीं महाभयविनाशिनीम्।
महादुर्गप्रशमनीं महाकारुण्यरूपिणीम्॥ २२॥

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्मादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति॥ २३॥

मन्त्राणां मातृका देवी शब्दानां ज्ञानरूपिणी।

समय तुम्हारा ध्यान करते हैं। हे महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-स्वरूपिणी चण्डिके! तुम्हें नमस्कार है। अविद्यारूप रज्जुकी दृढ़ ग्रन्थिको खोलकर मुझे मुक्त करो।]

हृत्कमलके मध्यमें रहनेवाली, प्रातःकालीन सूर्यके समान प्रभावाली, पाश और अंकुश धारण करनेवाली, मनोहर रूपवाली, वरद और अभयमुद्रा धारण किये हुए हाथोंवाली, तीन नेत्रोंसे युक्त, रक्तवस्त्र परिधान करनेवाली और कामधेनुके समान भक्तोंके मनोरथ पूर्ण करनेवाली देवीको मैं भजता हूँ॥ २१॥

महाभयका नाश करनेवाली, महासंकटको शान्त करनेवाली और महान् करुणाकी साक्षात् मूर्ति तुम महादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ॥ २२॥

जिसका स्वरूप ब्रह्मादिक नहीं जानते—इसलिये जिसे अज्ञेया कहते हैं, जिसका अन्त नहीं मिलता—इसलिये जिसे अनन्ता कहते हैं, जिसका लक्ष्य दीख नहीं पड़ता—इसलिये जिसे अलक्ष्या कहते हैं, जिसका जन्म समझमें नहीं आता—इसलिये जिसे अजा कहते हैं, जो अकेली ही सर्वत्र है—इसलिये जिसे एका कहते हैं, जो अकेली ही विश्वरूपमें सजी हुई है—इसलिये जिसे नैका कहते हैं, वह इसीलिये अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका और नैका कहाती हैं॥ २३॥

सब मन्त्रोंमें 'मातृका'—मूलाक्षररूपसे रहनेवाली, शब्दोंमें ज्ञान (अर्थ)-रूपसे

ज्ञानानां चिन्मयातीता* शून्यानां शून्यसाक्षिणी।
यस्याः परतरं नास्ति सैषा दुर्गा प्रकीर्तिता॥ २४॥

तां दुर्गां दुर्गमां देवीं दुराचारविघातिनीम्।
नमामि भवभीतोऽहं संसारार्णवतारिणीम्॥ २५॥

इदमथर्वशीर्षं योऽधीते स पञ्चाथर्वशीर्षजपफलमाप्नोति। इदमथर्वशीर्षमज्ञात्वा योऽर्चां स्थापयति—शतलक्षं प्रजप्त्वापि सोऽर्चासिद्धिं न विन्दति। शतमष्टोत्तरं चास्य पुरश्चर्याविधिः स्मृतः।

दशवारं पठेद् यस्तु सद्यः पापैः प्रमुच्यते।
महादुर्गाणि तरति महादेव्याः प्रसादतः॥ २६॥

सायमधीयानो दिवसकृतं पापं नाशयति। प्रातरधीयानो रात्रिकृतं पापं नाशयति। सायं प्रातः प्रयुञ्जानो अपापो

रहनेवाली, ज्ञानोंमें 'चिन्मयातीता', शून्योंमें 'शून्यसाक्षिणी' तथा जिनसे और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है, वे दुर्गाके नामसे प्रसिद्ध हैं॥ २४॥

उन दुर्विज्ञेय, दुराचारनाशक और संसारसागरसे तारनेवाली दुर्गादेवीको संसारसे डरा हुआ मैं नमस्कार करता हूँ॥ २५॥

इस अथर्वशीर्षका जो अध्ययन करता है, उसे पाँचों अथर्वशीर्षोंके जपका फल प्राप्त होता है। इस अथर्वशीर्षको न जानकर जो प्रतिमास्थापन करता है, वह सैकड़ों लाख जप करके भी अर्चासिद्धि नहीं प्राप्त करता। अष्टोत्तरशत (१०८ बार) जप (इत्यादि) इसकी पुरश्चरणविधि है। जो इसका दस बार पाठ करता है, वह उसी क्षण पापोंसे मुक्त हो जाता है और महादेवीके प्रसादसे बड़े दुस्तर संकटोंको पार कर जाता है॥ २६॥

इसका सायंकालमें अध्ययन करनेवाला दिनमें किये हुए पापोंका नाश करता है, प्रातःकालमें अध्ययन करनेवाला रात्रिमें किये हुए पापोंका नाश करता है।

---

* 'चिन्मयानन्दा' भी एक पाठ है और वह ठीक ही मालूम होता है।

भवति। निशीथे तुरीयसन्ध्यायां जप्त्वा वाक्सिद्धिर्भवति। नूतनायां प्रतिमायां जप्त्वा देवतासांनिध्यं भवति। प्राणप्रतिष्ठायां जप्त्वा प्राणानां प्रतिष्ठा भवति। भौमाश्विन्यां महादेवीसंनिधौ जप्त्वा महामृत्युं तरति। स महामृत्युं तरति य एवं वेद। इत्युपनिषत्॥

अथ नवार्णविधिः

इस प्रकार रात्रिसूक्त और देव्यथर्वशीर्षका पाठ करनेके पश्चात् निम्नांकितरूपसे नवार्णमन्त्रके विनियोग, न्यास और ध्यान आदि करे।

श्रीगणपतिर्जयति। 'ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।'

इसे पढ़कर जल गिराये।

नीचे लिखे न्यासवाक्योंमेंसे एक-एकका उच्चारण करके दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे क्रमशः सिर, मुख, हृदय, गुदा, दोनों चरण और नाभि—इन अगोंका स्पर्श करे।

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे।

दोनों समय अध्ययन करनेवाला निष्पाप होता है। मध्यरात्रिमें तुरीय* संध्याके समय जप करनेसे वाक्सिद्धि प्राप्त होती है। नयी प्रतिमापर जप करनेसे देवतासान्निध्य प्राप्त होता है। प्राणप्रतिष्ठाके समय जप करनेसे प्राणोंकी प्रतिष्ठा होती है। भौमाश्विनी (अमृतसिद्धि) योगमें महादेवीकी सन्निधिमें जप करनेसे महामृत्युसे तर जाता है। जो इस प्रकार जानता है, वह महामृत्युसे तर जाता है। इस प्रकार यह अविद्यानाशिनी ब्रह्मविद्या है।

---

* श्रीविद्याके उपासकोंके लिये चार संध्याएँ आवश्यक हैं। इनमें तुरीय संध्या मध्यरात्रिमें होती है।

महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'—इस मूलमन्त्रसे हाथोंकी शुद्धि करके करन्यास करे।

करन्यासः

करन्यासमें हाथकी विभिन्न अँगुलियों, हथेलियों और हाथके पृष्ठभागमें मन्त्रोंका न्यास (स्थापन) किया जाता है; इसी प्रकार अंगन्यासमें हृदयादि अंगोंमें मन्त्रोंकी स्थापना होती है। मन्त्रोंको चेतन और मूर्तिमान् मानकर उन-उन अंगोंका नाम लेकर उन मन्त्रमय देवताओंका ही स्पर्श और वन्दन किया जाता है, ऐसा करनेसे पाठ या जप करनेवाला स्वयं मन्त्रमय होकर मन्त्रदेवताओंद्वारा सर्वथा सुरक्षित हो जाता है। उसके बाहर-भीतरकी शुद्धि होती है, दिव्य बल प्राप्त होता है और साधना निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण तथा परम लाभदायक होती है।

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः (दोनों हाथोंकी तर्जनी अँगुलियोंसे दोनों अँगूठोंका स्पर्श)।

ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः (दोनों हाथोंके अँगूठोंसे दोनों तर्जनी अँगुलियोंका स्पर्श)।

ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः (अँगूठोंसे मध्यमा अँगुलियोंका स्पर्श)।

ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः (अनामिका अँगुलियोंका स्पर्श)।

ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः (कनिष्ठिका अँगुलियोंका स्पर्श)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः (हथेलियों और उनके पृष्ठभागोंका परस्पर स्पर्श)।

हृदयादिन्यासः

इसमें दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे 'हृदय' आदि अंगोंका स्पर्श किया जाता है।

ॐ ऐं हृदयाय नमः (दाहिने हाथकी पाँचों अँगुलियोंसे हृदयका स्पर्श)।

ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा (सिरका स्पर्श)।

ॐ क्लीं शिखायै वषट् (शिखाका स्पर्श)।

ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे बायें कंधेका और बायें हाथकी अँगुलियोंसे दाहिने कंधेका साथ ही स्पर्श)।

ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट् (दाहिने हाथकी अँगुलियोंके अग्रभागसे दोनों नेत्रों और ललाटके मध्यभागका स्पर्श)।

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट् (यह वाक्य पढ़कर दाहिने हाथको सिरके ऊपरसे बायीं ओरसे पीछेकी ओर ले जाकर दाहिनी ओरसे आगेकी ओर ले आये और तर्जनी तथा मध्यमा अँगुलियोंसे बायें हाथकी हथेलीपर ताली बजाये)।

अक्षरन्यासः

निम्नांकित वाक्योंको पढ़कर क्रमशः शिखा आदिका दाहिने हाथकी अँगुलियोंसे स्पर्श करे।

ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ यैं नमः, वामनासापुटे। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चें नमः, गुह्ये।

इस प्रकार न्यास करके मूलमन्त्रसे आठ बार व्यापक (दोनों हाथोंद्वारा सिरसे लेकर पैरतकके सब अंगोंका) स्पर्श करे, फिर प्रत्येक दिशामें चुटकी बजाते हुए न्यास करे—

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः। ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः। ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं नैर्ऋत्यै नमः। ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः। ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः।*

* यहाँ प्रचलित परम्पराके अनुसार न्यासविधि संक्षेपसे दी गयी है। जो विस्तारसे

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥ १ ॥[1]
अक्षस्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥ २ ॥[2]
घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥ ३ ॥[3]

फिर **'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः'** इस मन्त्रसे मालाकी पूजा करके प्रार्थना करे—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

इसके बाद **'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'** इस मन्त्रका १०८ बार जप करे और—

करना चाहें, वे अन्यत्रसे सारस्वतन्यास, मातृकागणन्यास, षड्देवीन्यास, ब्रह्मादिन्यास, महालक्ष्म्यादिन्यास, बीजमन्त्रन्यास, विलोमबीजन्यास, मन्त्रव्याप्तिन्यास आदि अन्य प्रकारके न्यास भी कर सकते हैं।

१. इसका अर्थ सप्तशतीके प्रथम अध्यायके आरम्भ (पृष्ठ ५९-६०)-में है।

२. इसका अर्थ सप्तशतीके द्वितीय अध्यायके आरम्भ (पृष्ठ ७५)-में है।

३. इसका अर्थ सप्तशतीके पाँचवें अध्यायके आरम्भ (पृष्ठ १०९)-में है।

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥

इस श्लोकको पढ़कर देवीके वामहस्तमें जप निवेदन करे।

सप्तशतीन्यासः

तदनन्तर सप्तशतीके विनियोग, न्यास और ध्यान करने चाहिये। न्यासकी प्रणाली पूर्ववत् है—

प्रथममध्यमोत्तरचरित्राणां ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, नन्दाशाकम्भरीभीमाः शक्तयः, रक्तदन्तिकादुर्गाभ्रामर्यो बीजानि, अग्निवायुसूर्यास्तत्त्वानि, ऋग्यजुःसामवेदा ध्यानानि, सकलकामनासिद्धये श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा[1]॥ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥ तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि॥ मध्यमाभ्यां नमः।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्॥ अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः[2]॥ कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते[3]॥ करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा०—हृदयाय नमः।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि०—शिरसे स्वाहा।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च०—शिखायै वषट्।

---

१. इसका अर्थ पृष्ठ ७१ में है। २. इन चार श्लोकोंका अर्थ पृष्ठ १०४-१०५ में है। ३. इसका अर्थ पृष्ठ १६४ में है।

ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि०—कवचाय हुम्।
ॐ खड्गशूलगदादीनि०—नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे०—अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥[1]

इसके बाद प्रथम चरित्रका विनियोग और ध्यान करके '**मार्कण्डेय उवाच**' से सप्तशतीका पाठ आरम्भ करे। प्रत्येक चरित्रका विनियोग मूल सप्तशतीके साथ ही दिया गया है तथा प्रत्येक अध्यायके आरम्भमें अर्थसहित ध्यान भी दे दिया गया है। पाठ प्रेमपूर्वक भगवतीका ध्यान करते हुए करे। मीठा स्वर, अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण, पदोंका विभाग, उत्तम स्वर, धीरता, एक लयके साथ बोलना—ये सब पाठकोंके गुण हैं।[2] जो पाठ करते समय रागपूर्वक गाता, उच्चारणमें जल्दबाजी करता, सिर हिलाता, अपनी हाथसे लिखी हुई पुस्तकपर पाठ करता, अर्थकी जानकारी नहीं रखता और अधूरा ही मन्त्र कण्ठस्थ करता है, वह पाठ करनेवालोंमें अधम माना गया है।[3] जबतक अध्यायकी पूर्ति न हो, तबतक बीचमें पाठ बंद न करे। यदि प्रमादवश अध्यायके बीचमें पाठका विराम हो जाय तो पुनः प्रति बार पूरे अध्यायका पाठ करे।[4]

१.इसका अर्थ बारहवें अध्यायके आरम्भ (पृष्ठ १७१)-में है।

२.माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥

३.गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥

४.यावन्न पूर्यतेऽध्यायस्तावन्न विरमेत्पठन्।
यदि प्रमादादध्याये विरामो भवति प्रिये।
पुनरध्यायमारभ्य पठेत्सर्वं मुहुर्मुहुः॥

अज्ञानवश पुस्तक हाथमें लेकर पाठ करनेका फल आधा ही होता है। स्तोत्रका पाठ मानसिक नहीं, वाचिक होना चाहिये। वाणीसे उसका स्पष्ट उच्चारण ही उत्तम माना गया है।[१] बहुत जोर-जोरसे बोलना तथा पाठमें उतावली करना वर्जित है। यत्नपूर्वक शुद्ध एवं स्थिरचित्तसे पाठ करना चाहिये।[२] यदि पाठ कण्ठस्थ न हो तो पुस्तकसे करे। अपने हाथसे लिखे हुए अथवा ब्राह्मणेतर पुरुषके लिखे हुए स्तोत्रका पाठ न करे।[३] यदि एक सहस्रसे अधिक श्लोकोंका या मन्त्रोंका ग्रन्थ हो तो पुस्तक देखकर ही पाठ करे; इससे कम श्लोक हों तो उन्हें कण्ठस्थ करके बिना पुस्तकके भी पाठ किया जा सकता है।[४] अध्याय समाप्त होनेपर 'इति', 'वध', 'अध्याय' तथा 'समाप्त' शब्दका उच्चारण नहीं करना चाहिये।[५]

---

१. अज्ञानात्स्थापिते हस्ते पाठे ह्यर्धफलं ध्रुवम्।
न मानसे पठेत्स्तोत्रं वाचिकं तु प्रशस्यते॥

२. उच्चैः पाठं निषिद्धं स्यात्त्वरां च परिवर्जयेत्।
शुद्धेनाचलचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नतः॥

३. कण्ठस्थपाठाभावे तु पुस्तकोपरि वाचयेत्।
न स्वयं लिखितं स्तोत्रं नाब्राह्मणलिपिं पठेत्॥

४. पुस्तके वाचनं शस्तं सहस्रादधिकं यदि।
ततो न्यूनस्य तु भवेद् वाचनं पुस्तकं विना॥

५. अध्यायकी पूर्ति होनेपर यों कहना चाहिये—'श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये प्रथमः ॐ तत्सत्।' इसी प्रकार 'द्वितीयः', 'तृतीयः' आदि कहकर समाप्त करना चाहिये।

॥ श्रीदुर्गायै नमः ॥

अथ श्रीदुर्गासप्तशती

प्रथमोऽध्यायः

मेधा ऋषिका राजा सुरथ और समाधिको भगवतीकी महिमा बताते हुए मधु-कैटभ-वधका प्रसंग सुनाना

विनियोगः

ॐ प्रथमचरित्रस्य ब्रह्मा ऋषिः, महाकाली देवता, गायत्री छन्दः, नन्दा शक्तिः, रक्तदन्तिका बीजम्, अग्निस्तत्त्वम्, ऋग्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहाकालीप्रीत्यर्थे प्रथमचरित्रजपे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥ १॥

प्रथम चरित्रके ब्रह्मा ऋषि, महाकाली देवता, गायत्री छन्द, नन्दा शक्ति, रक्तदन्तिका बीज, अग्नि तत्त्व और ऋग्वेद स्वरूप है। श्रीमहाकाली देवताकी प्रसन्नताके लिये प्रथम चरित्रके जपमें विनियोग किया जाता है।

भगवान् विष्णुके सो जानेपर मधु और कैटभको मारनेके लिये कमलजन्मा ब्रह्माजीने जिनका स्तवन किया था, उन महाकाली देवीका मैं सेवन करता हूँ। वे अपने दस हाथोंमें खड्ग, चक्र, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, भुशुण्डि, मस्तक और शंख धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे समस्त अंगोंमें दिव्य आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके शरीरकी कान्ति नीलमणिके समान है तथा वे दस मुख और दस पैरोंसे युक्त हैं।

ॐ नमश्चण्डिकायै[1]

'ॐ' ऐं मार्कण्डेय उवाच॥ १॥

सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः।
निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम॥ २॥

महामायानुभावेन यथा मन्वन्तराधिपः।
स बभूव महाभागः सावर्णिस्तनयो रवेः॥ ३॥

स्वारोचिषेऽन्तरे पूर्वं चैत्रवंशसमुद्भवः।
सुरथो नाम राजाभूत्समस्ते क्षितिमण्डले॥ ४॥

तस्य पालयतः सम्यक् प्रजाः पुत्रानिवौरसान्।
बभूवुः शत्रवो भूपाः कोलाविध्वंसिनस्तदा॥ ५॥

मार्कण्डेयजी बोले—॥ १॥ सूर्यके पुत्र सावर्णि जो आठवें मनु कहे जाते हैं, उनकी उत्पत्तिकी कथा विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सुनो॥ २॥ सूर्यकुमार महाभाग सावर्णि भगवती महामायाके अनुग्रहसे जिस प्रकार मन्वन्तरके स्वामी हुए, वही प्रसंग सुनाता हूँ॥ ३॥ पूर्वकालकी बात है, स्वारोचिष मन्वन्तरमें सुरथ नामके एक राजा थे, जो चैत्रवंशमें उत्पन्न हुए थे। उनका समस्त भूमण्डलपर अधिकार था॥ ४॥ वे प्रजाका अपने औरस पुत्रोंकी भाँति धर्मपूर्वक पालन करते थे; तो भी उस समय कोलाविध्वंसी[2] नामके क्षत्रिय उनके शत्रु हो गये॥ ५॥

---

१. ॐ चण्डीदेवीको नमस्कार है।

२. 'कोलाविध्वंसी' यह किसी विशेष कुलके क्षत्रियोंकी संज्ञा है। दक्षिणमें 'कोला' नगरी प्रसिद्ध है, वह प्राचीन कालमें राजधानी थी। जिन क्षत्रियोंने उसपर आक्रमण करके उसका विध्वंस किया, वे 'कोलाविध्वंसी' कहलाये।

तस्य तैरभवद् युद्धमतिप्रबलदण्डिनः।
न्यूनैरपि स तैर्युद्धे कोलाविध्वंसिभिर्जितः॥ ६ ॥

ततः स्वपुरमायातो निजदेशाधिपोऽभवत्।
आक्रान्तः स महाभागस्तैस्तदा प्रबलारिभिः॥ ७ ॥

अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्य दुरात्मभिः।
कोशो बलं चापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः॥ ८ ॥

ततो मृगयाव्याजेन हृतस्वाम्यः स भूपतिः।
एकाकी हयमारुह्य जगाम गहनं वनम्॥ ९ ॥

स तत्राश्रममद्राक्षीद् द्विजवर्यस्य मेधसः।
प्रशान्तश्वापदाकीर्णं मुनिशिष्योपशोभितम्॥ १० ॥

राजा सुरथकी दण्डनीति बड़ी प्रबल थी। उनका शत्रुओंके साथ संग्राम हुआ। यद्यपि कोलाविध्वंसी संख्यामें कम थे, तो भी राजा सुरथ युद्धमें उनसे परास्त हो गये॥ ६॥ तब वे युद्धभूमिसे अपने नगरको लौट आये और केवल अपने देशके राजा होकर रहने लगे (समूची पृथ्वीसे अब उनका अधिकार जाता रहा), किंतु वहाँ भी उन प्रबल शत्रुओंने उस समय महाभाग राजा सुरथपर आक्रमण कर दिया॥ ७॥

राजाका बल क्षीण हो चला था; इसलिये उनके दुष्ट, बलवान् एवं दुरात्मा मन्त्रियोंने वहाँ उनकी राजधानीमें भी राजकीय सेना और खजानेको हथिया लिया॥ ८॥ सुरथका प्रभुत्व नष्ट हो चुका था, इसलिये वे शिकार खेलनेके बहाने घोड़ेपर सवार हो वहाँसे अकेले ही एक घने जंगलमें चले गये॥ ९॥ वहाँ उन्होंने विप्रवर मेधा मुनिका आश्रम देखा, जहाँ कितने ही हिंसक जीव [अपनी स्वाभाविक हिंसावृत्ति छोड़कर] परम शान्तभावसे रहते थे। मुनिके बहुत-से शिष्य उस वनकी शोभा बढ़ा रहे थे॥ १०॥

तस्थौ कंचित्स कालं च मुनिना तेन सत्कृतः।
इतश्चेतश्च विचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे॥ ११॥
सोऽचिन्तयत्तदा तत्र ममत्वाकृष्टचेतनः*।
मत्पूर्वैः पालितं पूर्वं मया हीनं पुरं हि तत्॥ १२॥
मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतः पाल्यते न वा।
न जाने स प्रधानो मे शूरहस्ती सदामदः॥ १३॥
मम वैरिवशं यातः कान् भोगानुपलप्स्यते।
ये ममानुगता नित्यं प्रसादधनभोजनैः॥ १४॥
अनुवृत्तिं ध्रुवं तेऽद्य कुर्वन्त्यन्यमहीभृताम्।
असम्यग्व्ययशीलैस्तैः कुर्वद्भिः सततं व्ययम्॥ १५॥
संचितः सोऽतिदुःखेन क्षयं कोशो गमिष्यति।
एतच्चान्यच्च सततं चिन्तयामास पार्थिवः॥ १६॥
तत्र विप्राश्रमाभ्याशे वैश्यमेकं ददर्श सः।
स पृष्टस्तेन कस्त्वं भो हेतुश्चागमनेऽत्र कः॥ १७॥

वहाँ जानेपर मुनिने उनका सत्कार किया और वे उन मुनिश्रेष्ठके आश्रमपर इधर-उधर विचरते हुए कुछ कालतक रहे॥ ११॥ फिर ममतासे आकृष्टचित्त होकर वहाँ इस प्रकार चिन्ता करने लगे—'पूर्वकालमें मेरे पूर्वजोंने जिसका पालन किया था, वही नगर आज मुझसे रहित है। पता नहीं, मेरे दुराचारी भृत्यगण उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते हैं या नहीं। जो सदा मदकी वर्षा करनेवाला और शूरवीर था, वह मेरा प्रधान हाथी अब शत्रुओंके अधीन होकर न जाने किन भोगोंको भोगता होगा? जो लोग मेरी कृपा, धन और भोजन पानेसे सदा मेरे पीछे-पीछे चलते थे, वे निश्चय ही अब दूसरे राजाओंका अनुसरण करते होंगे। उन अपव्ययी लोगोंके द्वारा सदा खर्च होते रहनेके कारण अत्यन्त कष्टसे जमा किया हुआ मेरा वह खजाना खाली हो जायगा।' ये तथा और भी कई बातें राजा सुरथ निरन्तर सोचते रहते थे। एक दिन उन्होंने वहाँ विप्रवर मेधाके आश्रमके निकट एक वैश्यको देखा और उससे पूछा—'भाई! तुम

* पाठान्तर—ममत्वाकृष्टमानसः।

सशोक इव कस्मात्त्वं दुर्मना इव लक्ष्यसे।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य भूपतेः प्रणयोदितम्॥ १८॥
प्रत्युवाच स तं वैश्यः प्रश्रयावनतो नृपम्॥ १९॥

वैश्य उवाच ॥ २० ॥

समाधिर्नाम वैश्योऽहमुत्पन्नो धनिनां कुले॥ २१॥
पुत्रदारैर्निरस्तश्च धनलोभादसाधुभिः।
विहीनश्च धनैर्दारैः पुत्रैरादाय मे धनम्॥ २२॥
वनमभ्यागतो दुःखी निरस्तश्चाप्तबन्धुभिः।
सोऽहं न वेद्मि पुत्राणां कुशलाकुशलात्मिकाम्॥ २३॥
प्रवृत्तिं स्वजनानां च दाराणां चात्र संस्थितः।
किं नु तेषां गृहे क्षेममक्षेमं किं नु साम्प्रतम्॥ २४॥
कथं ते किं नु सद्वृत्ता दुर्वृत्ताः किं नु मे सुताः॥ २५॥

राजोवाच ॥ २६ ॥

यैर्निरस्तो भवाँल्लुब्धैः पुत्रदारादिभिर्धनैः॥ २७॥

कौन हो? यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है? तुम क्यों शोकग्रस्त और अनमने-से दिखायी देते हो?' राजा सुरथका यह प्रेमपूर्वक कहा हुआ वचन सुनकर वैश्यने विनीतभावसे उन्हें प्रणाम करके कहा—॥ १२—१९॥

वैश्य बोला—॥ २०॥ राजन्! मैं धनियोंके कुलमें उत्पन्न एक वैश्य हूँ। मेरा नाम समाधि है॥ २१॥ मेरे दुष्ट स्त्री-पुत्रोंने धनके लोभसे मुझे घरसे बाहर निकाल दिया है। मैं इस समय धन, स्त्री और पुत्रोंसे वंचित हूँ। मेरे विश्वसनीय बन्धुओंने मेरा ही धन लेकर मुझे दूर कर दिया है, इसलिये दुःखी होकर मैं वनमें चला आया हूँ। यहाँ रहकर मैं इस बातको नहीं जानता कि मेरे पुत्रोंकी, स्त्रीकी और स्वजनोंकी कुशल है या नहीं। इस समय घरमें वे कुशलसे रहते हैं अथवा उन्हें कोई कष्ट है?॥ २२—२४॥ वे मेरे पुत्र कैसे हैं? क्या वे सदाचारी हैं अथवा दुराचारी हो गये हैं?॥ २५॥

राजाने पूछा—॥ २६॥ जिन लोभी स्त्री-पुत्र आदिने धनके कारण

तेषु किं भवतः स्नेहमनुबध्नाति मानसम्॥ २८॥

वैश्य उवाच ॥ २९॥

एवमेतद्यथा प्राह भवानस्मद्गतं वचः॥ ३०॥
किं करोमि न बध्नाति मम निष्ठुरतां मनः।
यैः संत्यज्य पितृस्नेहं धनलुब्धैर्निराकृतः॥ ३१॥
पतिस्वजनहार्दं च हार्दि तेष्वेव मे मनः।
किमेतन्नाभिजानामि जानन्नपि महामते॥ ३२॥
यत्प्रेमप्रवणं चित्तं विगुणेष्वपि बन्धुषु।
तेषां कृते मे निःश्वासो दौर्मनस्यं च जायते॥ ३३॥
करोमि किं यन्न मनस्तेष्वप्रीतिषु निष्ठुरम्॥ ३४॥

मार्कण्डेय उवाच ॥ ३५॥

ततस्तौ सहितौ विप्र तं मुनिं समुपस्थितौ॥ ३६॥

तुम्हें घरसे निकाल दिया, उनके प्रति तुम्हारे चित्तमें इतना स्नेहका बन्धन क्यों है॥ २७-२८॥

वैश्य बोला—॥ २९॥ आप मेरे विषयमें जैसी बात कहते हैं, वह सब ठीक है॥ ३०॥ किंतु क्या करूँ, मेरा मन निष्ठुरता नहीं धारण करता। जिन्होंने धनके लोभमें पड़कर पिताके प्रति स्नेह, पतिके प्रति प्रेम तथा आत्मीयजनके प्रति अनुरागको तिलांजलि दे मुझे घरसे निकाल दिया है, उन्हींके प्रति मेरे हृदयमें इतना स्नेह है। महामते! गुणहीन बन्धुओंके प्रति भी जो मेरा चित्त इस प्रकार प्रेममग्न हो रहा है, यह क्या है—इस बातको मैं जानकर भी नहीं जान पाता। उनके लिये मैं लंबी साँसें ले रहा हूँ और मेरा हृदय अत्यन्त दु:खित हो रहा है॥ ३१—३३॥ उन लोगोंमें प्रेमका सर्वथा अभाव है; तो भी उनके प्रति जो मेरा मन निष्ठुर नहीं हो पाता, इसके लिये क्या करूँ?॥ ३४॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥ ३५॥ ब्रह्मन्! तदनन्तर राजाओंमें श्रेष्ठ

समाधिर्नाम वैश्योऽसौ स च पार्थिवसत्तमः।
कृत्वा तु तौ यथान्यायं यथार्हं तेन संविदम्॥ ३७॥
उपविष्टौ कथाः काश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ॥ ३८॥

राजोवाच ॥ ३९॥

भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्व तत्॥ ४०॥
दुःखाय यन्मे मनसः स्वचित्तायत्ततां विना।
ममत्वं गतराज्यस्य राज्याङ्गेष्वखिलेष्वपि॥ ४१॥
जानतोऽपि यथाज्ञस्य किमेतन्मुनिसत्तम।
अयं च निकृतः* पुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः॥ ४२॥
स्वजनेन च संत्यक्तस्तेषु हार्दी तथाप्यति।
एवमेष तथाहं च द्वावप्यत्यन्तदुःखितौ॥ ४३॥
दृष्टदोषेऽपि विषये ममत्वाकृष्टमानसौ।

सुरथ और वह समाधि नामक वैश्य दोनों साथ-साथ मेधा मुनिकी सेवामें उपस्थित हुए और उनके साथ यथायोग्य न्यायानुकूल विनयपूर्ण बर्ताव करके बैठे। तत्पश्चात् वैश्य और राजाने कुछ वार्तालाप आरम्भ किया॥ ३६—३८॥

राजाने कहा—॥ ३९॥ भगवन्! मैं आपसे एक बात पूछना चाहता हूँ, उसे बताइये॥ ४०॥ मेरा चित्त अपने अधीन न होनेके कारण वह बात मेरे मनको बहुत दुःख देती है। जो राज्य मेरे हाथसे चला गया है, उसमें और उसके सम्पूर्ण अंगोंमें मेरी ममता बनी हुई है॥ ४१॥ मुनिश्रेष्ठ! यह जानते हुए भी कि वह अब मेरा नहीं है, अज्ञानीकी भाँति मुझे उसके लिये दुःख होता है; यह क्या है? इधर यह वैश्य भी घरसे अपमानित होकर आया है। इसके पुत्र, स्त्री और भृत्योंने इसे छोड़ दिया है॥ ४२॥ स्वजनोंने भी इसका परित्याग कर दिया है, तो भी यह उनके प्रति अत्यन्त हार्दिक स्नेह रखता है। इस प्रकार यह तथा मैं—

* पा०— निष्कृतः।

तत्किमेतन्महाभाग[1] यन्मोहो ज्ञानिनोरपि॥ ४४॥
ममास्य च भवत्येषा विवेकान्धस्य मूढता॥ ४५॥

ऋषिरुवाच ॥ ४६॥

ज्ञानमस्ति समस्तस्य जन्तोर्विषयगोचरे॥ ४७॥
विषयश्च[2] महाभाग याति[3] चैवं पृथक् पृथक्।
दिवान्धाः प्राणिनः केचिद्रात्रावन्धास्तथापरे॥ ४८॥
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः।
ज्ञानिनो मनुजाः सत्यं किं[4] तु ते न हि केवलम्॥ ४९॥
यतो हि ज्ञानिनः सर्वे पशुपक्षिमृगादयः।
ज्ञानं च तन्मनुष्याणां यत्तेषां मृगपक्षिणाम्॥ ५०॥

दोनों ही बहुत दुःखी हैं॥ ४३॥ जिसमें प्रत्यक्ष दोष देखा गया है, उस विषयके लिये भी हमारे मनमें ममताजनित आकर्षण पैदा हो रहा है। महाभाग! हम दोनों समझदार हैं; तो भी हममें जो मोह पैदा हुआ है, यह क्या है? विवेकशून्य पुरुषकी भाँति मुझमें और इसमें भी यह मूढ़ता प्रत्यक्ष दिखायी देती है॥ ४४-४५॥

ऋषि बोले—॥ ४६॥ महाभाग! विषयमार्गका ज्ञान सब जीवोंको है॥ ४७॥ इसी प्रकार विषय भी सबके लिये अलग-अलग हैं, कुछ प्राणी दिनमें नहीं देखते और दूसरे रातमें ही नहीं देखते॥ ४८॥ तथा कुछ जीव ऐसे हैं, जो दिन और रात्रिमें भी बराबर ही देखते हैं। यह ठीक है कि मनुष्य समझदार होते हैं; किंतु केवल वे ही ऐसे नहीं होते॥ ४९॥ पशु, पक्षी और मृग आदि सभी प्राणी समझदार होते हैं। मनुष्योंकी समझ भी वैसी ही होती है, जैसी उन मृग और पक्षियोंकी होती है॥ ५०॥

१. पा०—तत्केनैत०। २. पा०—याश्च। ३. पा०—यान्ति। ४. पा०—किंनु ते।

मनुष्याणां च यत्तेषां तुल्यमन्यत्तथोभयोः।
ज्ञानेऽपि सति पश्यैतान् पतङ्गाञ्छावचञ्चुषु॥ ५१॥
कणमोक्षादृतान्मोहात्पीड्यमानानपि क्षुधा।
मानुषा मनुजव्याघ्र साभिलाषाः सुतान् प्रति॥ ५२॥
लोभात्प्रत्युपकाराय नन्वेतान्[1] किं न पश्यसि।
तथापि ममतावर्त्ते मोहगर्ते निपातिताः॥ ५३॥
महामायाप्रभावेण संसारस्थितिकारिणा[2]।
तन्नात्र विस्मयः कार्यो योगनिद्रा जगत्पतेः॥ ५४॥
महामाया हरेश्चैषा[3] तया सम्मोह्यते जगत्।
ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा॥ ५५॥
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति।
तया विसृज्यते विश्वं जगदेतच्चराचरम्॥ ५६॥

तथा जैसी मनुष्योंकी होती है,वैसी ही उन मृग-पक्षी आदिकी होती है। यह तथा अन्य बातें भी प्रायः दोनोंमें समान ही हैं। समझ होनेपर भी इन पक्षियोंको तो देखो, ये स्वयं भूखसे पीड़ित होते हुए भी मोहवश बच्चोंकी चोंचमें कितने चावसे अन्नके दाने डाल रहे हैं! नरश्रेष्ठ! क्या तुम नहीं देखते कि ये मनुष्य समझदार होते हुए भी लोभवश अपने किये हुए उपकारका बदला पानेके लिये पुत्रोंकी अभिलाषा करते हैं? यद्यपि उन सबमें समझकी कमी नहीं है, तथापि वे संसारकी स्थिति (जन्म-मरणकी परम्परा) बनाये रखनेवाले भगवती महामायाके प्रभावद्वारा ममतामय भँवरसे युक्त मोहके गहरे गर्तमें गिराये गये हैं। इसलिये इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिये। जगदीश्वर भगवान् विष्णुकी योगनिद्रारूपा जो भगवती महामाया हैं, उन्हींसे यह जगत् मोहित हो रहा है। वे भगवती महामायादेवी ज्ञानियोंके भी चित्तको बलपूर्वक खींचकर मोहमें डाल देती हैं। वे ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्की सृष्टि करती हैं तथा वे ही प्रसन्न होनेपर

१. पा०—नन्वेते। २. पा०—रिणः। ३. पा०—चैतत्।

सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।
सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी॥ ५७॥
संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी॥ ५८॥

राजोवाच ॥ ५९॥

भगवन् का हि सा देवी महामायेति यां भवान्॥ ६०॥
ब्रवीति कथमुत्पन्ना सा कर्मास्याश्च[1] किं द्विज।
यत्प्रभावा[2] च सा देवी यत्स्वरूपा यदुद्भवा॥ ६१॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर॥ ६२॥

ऋषिरुवाच ॥ ६३॥

नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिदं ततम्॥ ६४॥
तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयतां मम।
देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवति सा यदा॥ ६५॥

मनुष्योंको मुक्तिके लिये वरदान देती हैं। वे ही परा विद्या संसार-बन्धन और मोक्षकी हेतुभूता सनातनीदेवी तथा सम्पूर्ण ईश्वरोंकी भी अधीश्वरी हैं॥ ५१—५८॥

राजाने पूछा—॥ ५९॥ भगवन्! जिन्हें आप महामाया कहते हैं, वे देवी कौन हैं? ब्रह्मन्! उनका आविर्भाव कैसे हुआ? तथा उनके चरित्र कौन-कौन हैं? ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे! उन देवीका जैसा प्रभाव हो, जैसा स्वरूप हो और जिस प्रकार प्रादुर्भाव हुआ हो, वह सब मैं आपके मुखसे सुनना चाहता हूँ॥ ६०—६२॥

ऋषि बोले—॥ ६३॥ राजन्! वास्तवमें तो वे देवी नित्यस्वरूपा ही हैं। सम्पूर्ण जगत् उन्हींका रूप है तथा उन्होंने समस्त विश्वको व्याप्त कर रखा है, तथापि उनका प्राकट्य अनेक प्रकारसे होता है। वह मुझसे सुनो। यद्यपि वे नित्य और अजन्मा हैं, तथापि जब देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये

---

१. पा०—कर्म चास्याश्च। २. पा०—यत्स्वभावा।

उत्पन्नेति तदा लोके सा नित्याप्यभिधीयते।
योगनिद्रां यदा विष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते॥ ६६॥
आस्तीर्य शेषमभजत्कल्पान्ते भगवान् प्रभुः।
तदा द्वावसुरौ घोरौ विख्यातौ मधुकैटभौ॥ ६७॥
विष्णुकर्णमलोद्भूतौ हन्तुं ब्रह्माणमुद्यतौ।
स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः॥ ६८॥
दृष्ट्वा तावसुरौ चोग्रौ प्रसुप्तं च जनार्दनम्।
तुष्टाव योगनिद्रां तामेकाग्रहृदयस्थितः॥ ६९॥
विबोधनार्थाय हरेर्हरिनेत्रकृतालयाम्*।
विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीं स्थितिसंहारकारिणीम्॥ ७०॥
निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलां तेजसः प्रभुः॥ ७१॥

प्रकट होती हैं, उस समय लोकमें उत्पन्न हुई कहलाती हैं। कल्पके अन्तमें जब सम्पूर्ण जगत् एकार्णवमें निमग्न हो रहा था और सबके प्रभु भगवान् विष्णु शेषनागकी शय्या बिछाकर योगनिद्राका आश्रय ले सो रहे थे, उस समय उनके कानोंके मैलसे दो भयंकर असुर उत्पन्न हुए, जो मधु और कैटभके नामसे विख्यात थे। वे दोनों ब्रह्माजीका वध करनेको तैयार हो गये। भगवान् विष्णुके नाभिकमलमें विराजमान प्रजापति ब्रह्माजीने जब उन दोनों भयानक असुरोंको अपने पास आया और भगवान्को सोया हुआ देखा, तब एकाग्रचित्त होकर उन्होंने भगवान् विष्णुको जगानेके लिये उनके नेत्रोंमें निवास करनेवाली योगनिद्राका स्तवन आरम्भ किया। जो इस विश्वकी अधीश्वरी, जगत्को धारण करनेवाली, संसारका पालन और संहार करनेवाली तथा तेजःस्वरूप भगवान् विष्णुकी अनुपम शक्ति हैं, उन्हीं भगवती निद्रादेवीकी भगवान् ब्रह्मा स्तुति करने लगे॥ ६४—७१॥

* किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद ही 'ब्रह्मोवाच' है। तथा 'निद्रां भगवतीं' इस श्लोकार्धके स्थानमें—'स्तौमि निद्रां भगवतीं विष्णोरतुलतेजसः॥' ऐसा पाठ है।

ब्रह्मोवाच ॥ ७२ ॥

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषट्कारःस्वरात्मिका॥ ७३ ॥

सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता।
अर्धमात्रास्थिता नित्या यानुच्चार्या विशेषतः ॥ ७४ ॥

त्वमेव संध्या* सावित्री त्वं देवि जननी परा।
त्वयैतद्धार्यते विश्वं त्वयैतत्सृज्यते जगत्॥ ७५ ॥

त्वयैतत्पाल्यते देवि त्वमत्स्यन्ते च सर्वदा।
विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने॥ ७६ ॥

तथा संहृतिरूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये।
महाविद्या महामाया महामेधा महास्मृतिः ॥ ७७ ॥

ब्रह्माजीने कहा—॥ ७२ ॥ देवि! तुम्हीं स्वाहा, तुम्हीं स्वधा और तुम्हीं वषट्कार हो। स्वर भी तुम्हारे ही स्वरूप हैं। तुम्हीं जीवनदायिनी सुधा हो। नित्य अक्षर प्रणवमें अकार, उकार, मकार—इन तीन मात्राओंके रूपमें तुम्हीं स्थित हो तथा इन तीन मात्राओंके अतिरिक्त जो बिन्दुरूपा नित्य अर्धमात्रा है, जिसका विशेषरूपसे उच्चारण नहीं किया जा सकता, वह भी तुम्हीं हो। देवि! तुम्हीं संध्या, सावित्री तथा परम जननी हो। देवि! तुम्हीं इस विश्व-ब्रह्माण्डको धारण करती हो। तुमसे ही इस जगत्की सृष्टि होती है। तुम्हींसे इसका पालन होता है और सदा तुम्हीं कल्पके अन्तमें सबको अपना ग्रास बना लेती हो। जगन्मयी देवि! इस जगत्की उत्पत्तिके समय तुम सृष्टिरूपा हो, पालन-कालमें स्थितिरूपा हो तथा कल्पान्तके समय संहाररूप धारण करनेवाली हो। तुम्हीं महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति,

---

* पा०—सा त्वं।

महामोहा च भवती महादेवी महासुरी[१]।
प्रकृतिस्त्वं च सर्वस्य गुणत्रयविभाविनी॥ ७८॥
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा।
त्वं श्रीस्त्वमीश्वरी त्वं ह्रीस्त्वं बुद्धिर्बोधलक्षणा॥ ७९॥
लज्जा पुष्टिस्तथा तुष्टिस्त्वं शान्तिः क्षान्तिरेव च।
खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा॥ ८०॥
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा।
सौम्या सौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी॥ ८१॥
परापराणां परमा त्वमेव परमेश्वरी।
यच्च किंचित्क्वचिद्वस्तु सदसद्वाखिलात्मिके॥ ८२॥
तस्य सर्वस्य या शक्तिः सा त्वं किं स्तूयसे तदा[२]।
यया त्वया जगत्स्रष्टा जगत्पात्यत्ति[३] यो जगत्॥ ८३॥

महामोहरूपा, महादेवी और महासुरी हो। तुम्हीं तीनों गुणोंको उत्पन्न करनेवाली सबकी प्रकृति हो। भयंकर कालरात्रि, महारात्रि और मोहरात्रि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं श्री, तुम्हीं ईश्वरी, तुम्हीं ह्री और तुम्हीं बोधस्वरूपा बुद्धि हो। लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति और क्षमा भी तुम्हीं हो। तुम खड्गधारिणी, शूलधारिणी, घोररूपा तथा गदा, चक्र, शंख और धनुष धारण करनेवाली हो। बाण, भुशुण्डी और परिघ—ये भी तुम्हारे अस्त्र हैं। तुम सौम्य और सौम्यतर हो—इतना ही नहीं, जितने भी सौम्य एवं सुन्दर पदार्थ हैं, उन सबकी अपेक्षा तुम अत्यधिक सुन्दरी हो। पर और अपर—सबसे परे रहनेवाली परमेश्वरी तुम्हीं हो। सर्वस्वरूपे देवि! कहीं भी सत्-असत्‌रूप जो कुछ वस्तुएँ हैं और उन सबकी जो शक्ति है, वह तुम्हीं हो। ऐसी अवस्थामें तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? जो इस जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं, उन भगवान्‌को भी

१. पा०—महेश्वरी। २. पा०—मया। ३. पा०—पातात्ति।

सोऽपि निद्रावशं नीतः कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः।
विष्णुः शरीरग्रहणमहमीशान एव च॥ ८४॥
कारितास्ते यतोऽतस्त्वां कः स्तोतुं शक्तिमान् भवेत्।
सा त्वमित्थं प्रभावैः स्वैरुदारैर्देवि संस्तुता॥ ८५॥
मोहयैतौ दुराधर्षावसुरौ मधुकैटभौ।
प्रबोधं च जगत्स्वामी नीयतामच्युतो लघु॥ ८६॥
बोधश्च क्रियतामस्य हन्तुमेतौ महासुरौ॥ ८७॥

ऋषिरुवाच॥ ८८॥

एवं स्तुता तदा देवी तामसी तत्र वेधसा॥ ८९॥
विष्णोः प्रबोधनार्थाय निहन्तुं मधुकैटभौ।
नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः॥ ९०॥
निर्गम्य दर्शने तस्थौ ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
उत्तस्थौ च जगन्नाथस्तया मुक्तो जनार्दनः॥ ९१॥

जब तुमने निद्राके अधीन कर दिया है, तब तुम्हारी स्तुति करनेमें यहाँ कौन समर्थ हो सकता है? मुझको, भगवान् शंकरको तथा भगवान् विष्णुको भी तुमने ही शरीर धारण कराया है; अतः तुम्हारी स्तुति करनेकी शक्ति किसमें है? देवि! तुम तो अपने इन उदार प्रभावोंसे ही प्रशंसित हो। ये जो दोनों दुर्धर्ष असुर मधु और कैटभ हैं, इनको मोहमें डाल दो और जगदीश्वर भगवान् विष्णुको शीघ्र ही जगा दो। साथ ही इनके भीतर इन दोनों महान् असुरोंको मार डालनेकी बुद्धि उत्पन्न कर दो॥ ७३—८७॥

ऋषि कहते हैं—॥ ८८॥ राजन्! जब ब्रह्माजीने वहाँ मधु और कैटभको मारनेके उद्देश्यसे भगवान् विष्णुको जगानेके लिये तमोगुणकी अधिष्ठात्री देवी योगनिद्राकी इस प्रकार स्तुति की, तब वे भगवान्‌के नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षःस्थलसे निकलकर अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी दृष्टिके समक्ष खड़ी हो गयीं। योगनिद्रासे मुक्त होनेपर जगत्‌के स्वामी भगवान् जनार्दन उस

एकार्णवेऽहिशयनात्ततः स ददृशे च तौ।
मधुकैटभौ दुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ॥ ९२ ॥
क्रोधरक्तेक्षणावत्तुं[1] ब्रह्माणं जनितोद्यमौ।
समुत्थाय ततस्ताभ्यां युयुधे भगवान् हरिः॥ ९३ ॥
पञ्चवर्षसहस्राणि बाहुप्रहरणो विभुः।
तावप्यतिबलोन्मत्तौ महामायाविमोहितौ॥ ९४ ॥
उक्तवन्तौ वरोऽस्मत्तो व्रियतामिति केशवम्॥ ९५ ॥

श्रीभगवानुवाच॥ ९६ ॥

भवेतामद्य मे तुष्टौ मम वध्यावुभावपि॥ ९७ ॥
किमन्येन वरेणात्र एतावद्धि वृतं मम[2]॥ ९८ ॥

ऋषिरुवाच॥ ९९ ॥

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत्॥ १०० ॥

एकार्णवके जलमें शेषनागकी शय्यासे जाग उठे। फिर उन्होंने उन दोनों असुरोंको देखा। वे दुरात्मा मधु और कैटभ अत्यन्त बलवान् तथा पराक्रमी थे और क्रोधसे लाल आँखें किये ब्रह्माजीको खा जानेके लिये उद्योग कर रहे थे। तब भगवान् श्रीहरिने उठकर उन दोनोंके साथ पाँच हजार वर्षोंतक केवल बाहुयुद्ध किया। वे दोनों भी अत्यन्त बलके कारण उन्मत्त हो रहे थे। इधर महामायाने भी उन्हें मोहमें डाल रखा था; इसलिये वे भगवान् विष्णुसे कहने लगे—'हम तुम्हारी वीरतासे संतुष्ट हैं। तुम हमलोगोंसे कोई वर माँगो'॥ ८९—९५॥

श्रीभगवान् बोले—॥ ९६॥ यदि तुम दोनों मुझपर प्रसन्न हो तो अब मेरे हाथसे मारे जाओ। बस, इतना-सा ही मैंने वर माँगा है। यहाँ दूसरे किसी वरसे क्या लेना है॥ ९७-९८॥

ऋषि कहते हैं—॥ ९९॥ इस प्रकार धोखेमें आ जानेपर जब उन्होंने

---

१. पा०—णौ हन्तुं। २. पा०—मया ।

विलोक्य ताभ्यां गदितो भगवान् कमलेक्षणः[1]।
आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता॥ १०१ ॥

ऋषिरुवाच॥ १०२॥

तथेत्युक्त्वा भगवता शङ्खचक्रगदाभृता।
कृत्वा चक्रेण वै च्छिन्ने जघने शिरसी तयोः॥ १०३ ॥
एवमेषा समुत्पन्ना ब्रह्मणा संस्तुता स्वयम्।
प्रभावमस्या देव्यास्तु भूयः शृणु वदामि ते॥ ऐं ॐ॥ १०४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये मधुकैटभवधो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

उवाच १४, अर्धश्लोकाः २४, श्लोकाः ६६, एवमादितः॥ १०४॥

सम्पूर्ण जगत्में जल-ही-जल देखा, तब कमलनयन भगवान्से कहा—'जहाँ पृथ्वी जलमें डूबी हुई न हो—जहाँ सूखा स्थान हो, वहीं हमारा वध करो'॥ १००-१०१॥

ऋषि कहते हैं—॥ १०२॥ तब 'तथास्तु' कहकर शंख, चक्र और गदा धारण करनेवाले भगवान्ने उन दोनोंके मस्तक अपनी जाँघपर रखकर चक्रसे काट डाले। इस प्रकार ये देवी महामाया ब्रह्माजीकी स्तुति करनेपर स्वयं प्रकट हुई थीं। अब पुनः तुमसे उनके प्रभावका वर्णन करता हूँ, सुनो॥ १०३-१०४॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'मधु-कैटभ-वध' नामक पहला अध्याय पूरा हुआ॥ १॥

---

१. मार्कण्डेयपुराणकी कई प्रतियोंमें यहाँ 'प्रीतौ स्वस्तव युद्धेन श्लाघ्यस्त्वं मृत्युरावयोः।' इतना अधिक पाठ है।

द्वितीयोऽध्यायः

देवताओंके तेजसे देवीका प्रादुर्भाव और महिषासुरकी सेनाका वध

विनियोगः

ॐ मध्यमचरित्रस्य विष्णुर्ऋषिः, महालक्ष्मीर्देवता, उष्णिक् छन्दः, शाकम्भरी शक्तिः, दुर्गा बीजम्, वायुस्तत्त्वम्, यजुर्वेदः स्वरूपम्, श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं मध्यमचरित्रजपे विनियोगः ।

ध्यानम्

ॐ अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥

'ॐ ह्रीं' ऋषिरुवाच॥ १॥

देवासुरमभूद्युद्धं पूर्णमब्दशतं पुरा।

ॐ मध्यम चरित्रके विष्णु ऋषि, महालक्ष्मी देवता, उष्णिक् छन्द, शाकम्भरी शक्ति, दुर्गा बीज, वायु तत्त्व और यजुर्वेद स्वरूप है। श्रीमहालक्ष्मीकी प्रसन्नताके लिये मध्यम चरित्रके पाठमें इसका विनियोग है।

मैं कमलके आसनपर बैठी हुई प्रसन्न मुखवाली महिषासुरमर्दिनी भगवती महालक्ष्मीका भजन करता हूँ, जो अपने हाथोंमें अक्षमाला, फरसा, गदा, बाण, वज्र, पद्म, धनुष, कुण्डिका, दण्ड, शक्ति, खड्ग, ढाल, शंख, घण्टा, मधुपात्र, शूल, पाश और चक्र धारण करती हैं।

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ पूर्वकालमें देवताओं और असुरोंमें पूरे सौ

महिषेऽसुराणामधिपे देवानां च पुरन्दरे॥ २॥
तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यं पराजितम्।
जित्वा च सकलान् देवानिन्द्रोऽभून्महिषासुरः॥ ३॥
ततः पराजिता देवाः पद्मयोनिं प्रजापतिम्।
पुरस्कृत्य गतास्तत्र यत्रेशगरुडध्वजौ॥ ४॥
यथावृत्तं तयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम्।
त्रिदशाः कथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम्॥ ५॥
सूर्येन्द्राग्न्यनिलेन्दूनां यमस्य वरुणस्य च।
अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति॥ ६॥
स्वर्गान्निराकृताः सर्वे तेन देवगणा भुवि।
विचरन्ति यथा मर्त्या महिषेण दुरात्मना॥ ७॥
एतद्वः कथितं सर्वममरारिविचेष्टितम्।
शरणं वः प्रपन्नाः स्मो वधस्तस्य विचिन्त्यताम्॥ ८॥

वर्षोंतक घोर संग्राम हुआ था। उसमें असुरोंका स्वामी महिषासुर था और देवताओंके नायक इन्द्र थे। उस युद्धमें देवताओंकी सेना महाबली असुरोंसे परास्त हो गयी। सम्पूर्ण देवताओंको जीतकर महिषासुर इन्द्र बन बैठा॥ २-३॥ तब पराजित देवता प्रजापति ब्रह्माजीको आगे करके उस स्थानपर गये, जहाँ भगवान् शंकर और विष्णु विराजमान थे॥ ४॥ देवताओंने महिषासुरके पराक्रम तथा अपनी पराजयका यथावत् वृत्तान्त उन दोनों देवेश्वरोंसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया॥ ५॥ वे बोले—'भगवन्! महिषासुर सूर्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्रमा, यम, वरुण तथा अन्य देवताओंके भी अधिकार छीनकर स्वयं ही सबका अधिष्ठाता बना बैठा है॥ ६॥ उस दुरात्मा महिषने समस्त देवताओंको स्वर्गसे निकाल दिया है। अब वे मनुष्योंकी भाँति पृथ्वीपर विचरते हैं॥ ७॥ दैत्योंकी यह सारी करतूत हमने आपलोगोंसे कह सुनायी। अब हम आपकी ही शरणमें आये हैं। उसके वधका कोई उपाय सोचिये'॥ ८॥

इत्थं निशम्य देवानां वचांसि मधुसूदनः।
चकार कोपं शम्भुश्च भ्रुकुटीकुटिलाननौ॥ ९ ॥
ततोऽतिकोपपूर्णस्य चक्रिणो वदनात्ततः।
निश्चक्राम महत्तेजो ब्रह्मणः शंकरस्य च॥ १० ॥
अन्येषां चैव देवानां शक्रादीनां शरीरतः।
निर्गतं सुमहत्तेजस्तच्चैक्यं समगच्छत॥ ११ ॥
अतीव तेजसः कूटं ज्वलन्तमिव पर्वतम्।
ददृशुस्ते सुरास्तत्र ज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्॥ १२ ॥
अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम्।
एकस्थं तदभून्नारी व्याप्तलोकत्रयं त्विषा॥ १३ ॥
यदभूच्छाम्भवं तेजस्तेनाजायत तन्मुखम्।
याम्येन चाभवन् केशा बाहवो विष्णुतेजसा॥ १४ ॥

इस प्रकार देवताओंके वचन सुनकर भगवान् विष्णु और शिवने दैत्योंपर बड़ा क्रोध किया। उनकी भौंहें तन गयीं और मुँह टेढ़ा हो गया॥ ९॥ तब अत्यन्त कोपमें भरे हुए चक्रपाणि श्रीविष्णुके मुखसे एक महान् तेज प्रकट हुआ। इसी प्रकार ब्रह्मा, शंकर तथा इन्द्र आदि अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी बड़ा भारी तेज निकला। वह सब मिलकर एक हो गया॥ १०–११ ॥ महान् तेजका वह पुंज जाज्वल्यमान पर्वत-सा जान पड़ा। देवताओंने देखा, वहाँ उसकी ज्वालाएँ सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हो रही थीं॥ १२॥ सम्पूर्ण देवताओंके शरीरसे प्रकट हुए उस तेजकी कहीं तुलना नहीं थी। एकत्रित होनेपर वह एक नारीके रूपमें परिणत हो गया और अपने प्रकाशसे तीनों लोकोंमें व्याप्त जान पड़ा॥ १३॥ भगवान् शंकरका जो तेज था, उससे उस देवीका मुख प्रकट हुआ। यमराजके तेजसे उसके सिरमें बाल निकल आये। श्रीविष्णुभगवान्के तेजसे उसकी भुजाएँ उत्पन्न हुईं॥ १४॥

सौम्येन स्तनयोर्युग्मं मध्यं चैन्द्रेण चाभवत्।
वारुणेन च जङ्घोरू नितम्बस्तेजसा भुवः॥ १५॥

ब्रह्मणस्तेजसा पादौ तदङ्गुल्योऽर्कतेजसा।
वसूनां च कराङ्गुल्यः कौबेरेण च नासिका॥ १६॥

तस्यास्तु दन्ताः सम्भूताः प्राजापत्येन तेजसा।
नयनत्रितयं जज्ञे तथा पावकतेजसा॥ १७॥

भ्रुवौ च संध्ययोस्तेजः श्रवणावनिलस्य च।
अन्येषां चैव देवानां सम्भवस्तेजसां शिवा॥ १८॥

ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम्।
तां विलोक्य मुदं प्रापुरमरा महिषार्दिताः*॥ १९॥

चन्द्रमाके तेजसे दोनों स्तनोंका और इन्द्रके तेजसे मध्यभाग (कटिप्रदेश)–का प्रादुर्भाव हुआ। वरुणके तेजसे जंघा और पिंडली तथा पृथ्वीके तेजसे नितम्बभाग प्रकट हुआ॥ १५॥ ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण और सूर्यके तेजसे उसकी अँगुलियाँ हुईं। वसुओंके तेजसे हाथोंकी अँगुलियाँ और कुबेरके तेजसे नासिका प्रकट हुई॥ १६॥ उस देवीके दाँत प्रजापतिके तेजसे और तीनों नेत्र अग्निके तेजसे प्रकट हुए थे॥ १७॥ उसकी भौंहें संध्याके और कान वायुके तेजसे उत्पन्न हुए थे। इसी प्रकार अन्यान्य देवताओंके तेजसे भी उस कल्याणमयी देवीका आविर्भाव हुआ॥ १८॥

तदनन्तर समस्त देवताओंके तेजःपुंजसे प्रकट हुई देवीको देखकर महिषासुरके सताये हुए देवता बहुत प्रसन्न हुए॥ १९॥

---

* कई प्रतियोंमें इसके बाद 'ततो देवा ददुस्तस्यै स्वानि स्वान्यायुधानि च। ऊचुर्जयजयेत्युच्चैर्जयन्तीं ते जयैषिणः॥' इतना पाठ अधिक है।

शूलं शूलाद्विनिष्कृष्य ददौ तस्यै पिनाकधृक्।
चक्रं च दत्तवान् कृष्णः समुत्पाद्य[1] स्वचक्रतः॥ २०॥
शङ्खं च वरुणः शक्तिं ददौ तस्यै हुताशनः।
मारुतो दत्तवांश्चापं बाणपूर्णे तथेषुधी॥ २१॥
वज्रमिन्द्रः समुत्पाद्य[2] कुलिशादमराधिपः।
ददौ तस्यै सहस्राक्षो घण्टामैरावताद् गजात्॥ २२॥
कालदण्डाद्यमो दण्डं पाशं चाम्बुपतिर्ददौ।
प्रजापतिश्चाक्षमालां ददौ ब्रह्मा कमण्डलुम्॥ २३॥
समस्तरोमकूपेषु निजरश्मीन् दिवाकरः।
कालश्च दत्तवान् खड्गं तस्याश्चर्म[3] च निर्मलम्॥ २४॥
क्षीरोदश्चामलं हारमजरे च तथाम्बरे।
चूडामणिं तथा दिव्यं कुण्डले कटकानि च॥ २५॥
अर्धचन्द्रं तथा शुभ्रं केयूरान् सर्वबाहुषु।

पिनाकधारी भगवान् शंकरने अपने शूलसे एक शूल निकालकर उन्हें दिया; फिर भगवान् विष्णुने भी अपने चक्रसे चक्र उत्पन्न करके भगवतीको अर्पण किया॥ २०॥ वरुणने भी शंख भेंट किया, अग्निने उन्हें शक्ति दी और वायुने धनुष तथा बाणसे भरे हुए दो तरकस प्रदान किये॥ २१॥ सहस्र नेत्रोंवाले देवराज इन्द्रने अपनेवज्रसे वज्र उत्पन्न करके दिया और ऐरावत हाथीसे उतारकर एक घण्टा भी प्रदान किया॥ २२॥ यमराजने कालदण्डसे दण्ड, वरुणने पाश, प्रजापतिने स्फटिकाक्षकी माला तथा ब्रह्माजीने कमण्डलु भेंट किया॥ २३॥ सूर्यने देवीके समस्त रोम-कूपोंमें अपनी किरणोंका तेज भर दिया। कालने उन्हें चमकती हुई ढाल और तलवार दी॥ २४॥ क्षीरसमुद्रने उज्ज्वल हार तथा कभी जीर्ण न होनेवाले दो दिव्य वस्त्र भेंट किये। साथ ही उन्होंने दिव्य चूड़ामणि, दो कुण्डल, कड़े, उज्ज्वल अर्धचन्द्र, सब बाहुओंके लिये केयूर, दोनों चरणोंके लिये निर्मल नूपुर, गलेकी सुन्दर हँसली और सब अँगुलियोंमें

१. पा०—ट्य। २. पा०—ट्य। ३. पा०—तस्यै चर्म।

नूपुरौ विमलौ तद्वद् ग्रैवेयकमनुत्तमम्॥ २६॥
अङ्गुलीयकरत्नानि समस्तास्वङ्गुलीषु च।
विश्वकर्मा ददौ तस्यै परशुं चातिनिर्मलम्॥ २७॥
अस्त्राण्यनेकरूपाणि तथाभेद्यं च दंशनम्।
अम्लानपङ्कजां मालां शिरस्युरसि चापराम्॥ २८॥
अददज्जलधिस्तस्यै पङ्कजं चातिशोभनम्।
हिमवान् वाहनं सिंहं रत्नानि विविधानि च॥ २९॥
ददावशून्यं सुरया पानपात्रं धनाधिपः।
शेषश्च सर्वनागेशो महामणिविभूषितम्॥ ३०॥
नागहारं ददौ तस्यै धत्ते यः पृथिवीमिमाम्।
अन्यैरपि सुरैर्देवी भूषणैरायुधैस्तथा॥ ३१॥
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः।
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः॥ ३२॥
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत्।
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे॥ ३३॥

पहननेके लिये रत्नोंकी बनी अँगूठियाँ भी दीं। विश्वकर्माने उन्हें अत्यन्त निर्मल फरसा भेंट किया॥ २५—२७॥ साथ ही अनेक प्रकारके अस्त्र और अभेद्य कवच दिये; इनके सिवा मस्तक और वक्षःस्थलपर धारण करनेके लिये कभी न कुम्हलानेवाले कमलोंकी मालाएँ दीं॥ २८॥ जलधिने उन्हें सुन्दर कमलका फूल भेंट किया। हिमालयने सवारीके लिये सिंह तथा भाँति-भाँतिके रत्न समर्पित किये॥ २९॥ धनाध्यक्ष कुबेरने मधुसे भरा पानपात्र दिया तथा सम्पूर्ण नागोंके राजा शेषने, जो इस पृथ्वीको धारण करते हैं, उन्हें बहुमूल्य मणियोंसे विभूषित नागहार भेंट दिया। इसी प्रकार अन्य देवताओंने भी आभूषण और अस्त्र-शस्त्र देकर देवीका सम्मान किया। तत्पश्चात् उन्होंने बारंबार अट्टहासपूर्वक उच्चस्वरसे गर्जना की। उनके भयंकर नादसे सम्पूर्ण आकाश गूँज उठा॥ ३०—३२॥ देवीका वह अत्यन्त उच्चस्वरसे किया हुआ

चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः।
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम्*॥ ३४॥
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनां भक्तिनम्रात्ममूर्तयः।
दृष्ट्वा समस्तं संक्षुब्धं त्रैलोक्यममरारयः॥ ३५॥
सन्नद्धाखिलसैन्यास्ते समुत्तस्थुरुदायुधाः।
आः किमेतदिति क्रोधादाभाष्य महिषासुरः॥ ३६॥
अभ्यधावत तं शब्दमशेषैरसुरैर्वृतः।
स ददर्श ततो देवीं व्याप्तलोकत्रयां त्विषा॥ ३७॥
पादाक्रान्त्या नतभुवं किरीटोल्लिखिताम्बराम्।
क्षोभिताशेषपातालां धनुर्ज्यानिःस्वनेन ताम्॥ ३८॥

सिंहनाद कहीं समा न सका, आकाश उसके सामने लघु प्रतीत होने लगा। उससे बड़े जोरकी प्रतिध्वनि हुई, जिससे सम्पूर्ण विश्वमें हलचल मच गयी और समुद्र काँप उठे॥ ३३॥ पृथ्वी डोलने लगी और समस्त पर्वत हिलने लगे। उस समय देवताओंने अत्यन्त प्रसन्नताके साथ सिंहवाहिनी भवानीसे कहा—'देवि! तुम्हारी जय हो'॥ ३४॥ साथ ही महर्षियोंने भक्तिभावसे विनम्र होकर उनका स्तवन किया।

सम्पूर्ण त्रिलोकीको क्षोभग्रस्त देख दैत्यगण अपनी समस्त सेनाको कवच आदिसे सुसज्जित कर, हाथोंमें हथियार ले सहसा उठकर खड़े हो गये। उस समय महिषासुरने बड़े क्रोधमें आकर कहा—'आः! यह क्या हो रहा है?' फिर वह सम्पूर्ण असुरोंसे घिरकर उस सिंहनादकी ओर लक्ष्य करके दौड़ा और आगे पहुँचकर उसने देवीको देखा, जो अपनी प्रभासे तीनों लोकोंको प्रकाशित कर रही थीं॥ ३५—३७॥ उनके चरणोंके भारसे पृथ्वी दबी जा रही थी। माथेके मुकुटसे आकाशमें रेखा-सी खिंच रही थी तथा वे अपने धनुषकी टंकारसे सातों पातालोंको क्षुब्ध किये देती थीं॥ ३८॥

* पा०—वाहनाम्।

दिशो भुजसहस्रेण समन्ताद् व्याप्य संस्थिताम्।
ततः प्रववृते युद्धं तया देव्या सुरद्विषाम्॥ ३९॥
शस्त्रास्त्रैर्बहुधा मुक्तैरादीपितदिगन्तरम्।
महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्यो महासुरः॥ ४०॥
युयुधे चामरश्चान्यैश्चतुरङ्गबलान्वितः।
रथानामयुतैः षड्भिरुदग्राख्यो महासुरः॥ ४१॥
अयुध्यतायुतानां च सहस्रेण महाहनुः।
पञ्चाशद्भिश्च नियुतैरसिलोमा महासुरः॥ ४२॥
अयुतानां शतैः षड्भिर्बाष्कलो युयुधे रणे।
गजवाजिसहस्रौघैरनेकैः[1] परिवारितः[2]॥ ४३॥
वृतो रथानां कोट्या च युद्धे तस्मिन्नयुध्यत।
बिडालाख्योऽयुतानां च पञ्चाशद्भिरथायुतैः॥ ४४॥

देवी अपनी हजारों भुजाओंसे सम्पूर्ण दिशाओंको आच्छादित करके खड़ी थीं। तदनन्तर उनके साथ दैत्योंका युद्ध छिड़ गया॥ ३९॥ नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके प्रहारसे सम्पूर्ण दिशाएँ उद्भासित होने लगीं। चिक्षुर नामक महान् असुर महिषासुरका सेनानायक था॥ ४०॥ वह देवीके साथ युद्ध करने लगा। अन्य दैत्योंकी चतुरंगिणी सेना साथ लेकर चामर भी लड़ने लगा। साठ हजार रथियोंके साथ आकर उदग्र नामक महादैत्यने लोहा लिया॥ ४१॥ एक करोड़ रथियोंको साथ लेकर महाहनु नामक दैत्य युद्ध करने लगा। जिसके रोएँ तलवारके समान तीखे थे, वह असिलोमा नामका महादैत्य पाँच करोड़ रथी सैनिकोंसहित युद्धमें आ डटा॥ ४२॥ साठ लाख रथियोंसे घिरा हुआ बाष्कल नामक दैत्य भी उस युद्धभूमिमें लड़ने लगा। परिवारित[2] नामक राक्षस हाथीसवार और घुड़सवारोंके अनेक दलों तथा एक करोड़ रथियोंकी

१. पा०—कैरुग्रदर्शनः। २. परितो वारयति शत्रूनिति व्युत्पत्तिः।

युयुधे संयुगे तत्र रथानां परिवारितः* ।
अन्ये च तत्रायुतशो रथनागहयैर्वृताः ॥ ४५ ॥
युयुधुः संयुगे देव्या सह तत्र महासुराः ।
कोटिकोटिसहस्रैस्तु रथानां दन्तिनां तथा ॥ ४६ ॥
हयानां च वृतो युद्धे तत्राभून्महिषासुरः ।
तोमरैर्भिन्दिपालैश्च शक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ ४७ ॥
युयुधुः संयुगे देव्या खड्गैः परशुपट्टिशैः ।
केचिच्च चिक्षिपुः शक्तीः केचित्पाशांस्तथापरे ॥ ४८ ॥
देवीं खड्गप्रहारैस्तु ते तां हन्तुं प्रचक्रमुः ।
सापि देवी ततस्तानि शस्त्राण्यस्त्राणि चण्डिका ॥ ४९ ॥
लीलयैव प्रचिच्छेद निजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ।
अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥ ५० ॥

सेना लेकर युद्ध करने लगा। बिडाल नामक दैत्य पाँच अरब रथियोंसे घिरकर लोहा लेने लगा। इनके अतिरिक्त और भी हजारों महादैत्य रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेना साथ लेकर वहाँ देवीके साथ युद्ध करने लगे। स्वयं महिषासुर उस रणभूमिमें कोटि-कोटि सहस्र रथ, हाथी और घोड़ोंकी सेनासे घिरा हुआ खड़ा था। वे दैत्य देवीके साथ तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, खड्ग, परशु और पट्टिश आदि अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए युद्ध कर रहे थे। कुछ दैत्योंने उनपर शक्तिका प्रहार किया, कुछ लोगोंने पाश फेंके॥ ४३—४८ ॥ तथा कुछ दूसरे दैत्योंने खड्गप्रहार करके देवीको मार डालनेका उद्योग किया। देवीने भी क्रोधमें भरकर खेल-खेलमें ही अपने अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करके दैत्योंके वे समस्त अस्त्र-शस्त्र काट डाले। उनके मुखपर परिश्रम या थकावटका रंचमात्र भी चिह्न नहीं था, देवता

* किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद 'कृतः कालो रथानां च रणे पञ्चाशतायुतैः। युयुधे संयुगे तत्र तावद्भिः परिवारितः॥' इतना पाठ अधिक है।

मुमोचासुरदेहेषु शस्त्राण्यस्त्राणि चेश्वरी।
सोऽपि क्रुद्धो धुतसटो देव्या वाहनकेसरी॥ ५१॥
चचारासुरसैन्येषु वनेष्विव हुताशनः।
निःश्वासान् मुमुचे यांश्च युध्यमाना रणेऽम्बिका॥ ५२॥
त एव सद्यः सम्भूता गणाः शतसहस्रशः।
युयुधुस्ते परशुभिर्भिन्दिपालासिपट्टिशैः॥ ५३॥
नाशयन्तोऽसुरगणान् देवीशक्त्युपबृंहिताः।
अवादयन्त पटहान् गणाः शङ्खांस्तथापरे॥ ५४॥
मृदङ्गांश्च तथैवान्ये तस्मिन् युद्धमहोत्सवे।
ततो देवी त्रिशूलेन गदया शक्तिवृष्टिभिः*॥ ५५॥
खड्गादिभिश्च शतशो निजघान महासुरान्।
पातयामास चैवान्यान् घण्टास्वनविमोहितान्॥ ५६॥

और ऋषि उनकी स्तुति करते थे और वे भगवती परमेश्वरी दैत्योंके शरीरोंपर अस्त्र-शस्त्रोंकी वर्षा करती रहीं।

देवीका वाहन सिंह भी क्रोधमें भरकर गर्दनके बालोंको हिलाता हुआ असुरोंकी सेनामें इस प्रकार विचरने लगा, मानो वनोंमें दावानल फैल रहा हो। रणभूमिमें दैत्योंके साथ युद्ध करती हुई अम्बिकादेवीने जितने निःश्वास छोड़े, वे सभी तत्काल सैकड़ों-हजारों गणोंके रूपमें प्रकट हो गये और परशु, भिन्दिपाल, खड्ग तथा पट्टिश आदि अस्त्रोंद्वारा असुरोंका सामना करने लगे॥ ४९—५३॥ देवीकी शक्तिसे बढ़े हुए वे गण असुरोंका नाश करते हुए नगाड़ा और शंख आदि बाजे बजाने लगे॥ ५४॥ उस संग्राम-महोत्सवमें कितने ही गण मृदंग बजा रहे थे। तदनन्तर देवीने त्रिशूलसे, गदासे, शक्तिकी वर्षासे और खड्ग आदिसे सैकड़ों महादैत्योंका संहार कर डाला। कितनोंको घण्टेके भयंकर नादसे मूर्च्छित करके मार गिराया॥ ५५-५६॥

* पा०—शरवृष्टिभिः।

असुरान् भुवि पाशेन बद्ध्वा चान्यानकर्षयत्।
केचिद् द्विधा कृतास्तीक्ष्णैः खड्गपातैस्तथापरे॥ ५७॥
विपोथिता निपातेन गदया भुवि शेरते।
वेमुश्च केचिद्रुधिरं मुसलेन भृशं हताः॥ ५८॥
केचिन्निपतिता भूमौ भिन्नाः शूलेन वक्षसि।
निरन्तराः शरौघेण कृताः केचिद्रणाजिरे॥ ५९॥
श्येनानुकारिणः* प्राणान् मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः।
केषांचिद् बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे॥ ६०॥
शिरांसि पेतुरन्येषामन्ये मध्ये विदारिताः।
विच्छिन्नजङ्घास्त्वपरे पेतुरुर्व्यां महासुराः॥ ६१॥
एकबाह्वक्षिचरणाः केचिद्देव्या द्विधा कृताः।
छिन्नेऽपि चान्ये शिरसि पतिताः पुनरुत्थिताः॥ ६२॥

बहुतेरे दैत्योंको पाशसे बाँधकर धरतीपर घसीटा। कितने ही दैत्य उनकी तीखी तलवारकी मारसे दो-दो टुकड़े हो गये॥ ५७॥ कितने ही गदाकी चोटसे घायल हो धरतीपर सो गये। कितने ही मूसलकी मारसे अत्यन्त आहत होकर रक्त वमन करने लगे। कुछ दैत्य शूलसे छाती फट जानेके कारण पृथ्वीपर ढेर हो गये। उस रणांगणमें बाणसमूहोंकी वृष्टिसे कितने ही असुरोंकी कमर टूट गयी॥ ५८-५९॥ बाजकी तरह झपटनेवाले देवपीडक दैत्यगण अपने प्राणोंसे हाथ धोने लगे। किन्हींकी बाँहें छिन्न-भिन्न हो गयीं। कितनोंकी गर्दनें कट गयीं। कितने ही दैत्योंके मस्तक कट-कटकर गिरने लगे। कुछ लोगोंके शरीर मध्यभागमें ही विदीर्ण हो गये। कितने ही महादैत्य जाँघें कट जानेसे पृथ्वीपर गिर पड़े। कितनोंको ही देवीने एक बाँह, एक पैर और एक नेत्रवाले करके दो टुकड़ोंमें चीर डाला। कितने ही दैत्य मस्तक कट जानेपर

* पा०—सेनानु०। शल्यानु०। शैलानु०।

कबन्धा युयुधुर्देव्या गृहीतपरमायुधाः।
ननृतुश्चापरे तत्र युद्धे तूर्यलयाश्रिताः॥ ६३॥
कबन्धाश्छिन्नशिरसः खड्गशक्त्यृष्टिपाणयः।
तिष्ठ तिष्ठेति भाषन्तो देवीमन्ये महासुराः* ॥ ६४॥
पातितै रथनागाश्वैरसुरैश्च वसुन्धरा।
अगम्या साभवत्तत्र यत्राभूत्स महारणः॥ ६५॥
शोणितौघा महानद्यः सद्यस्तत्र प्रसुस्रुवुः।
मध्ये चासुरसैन्यस्य वारणासुरवाजिनाम्॥ ६६॥
क्षणेन तन्महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका।
निन्ये क्षयं यथा वह्निस्तृणदारुमहाचयम्॥ ६७॥

भी गिरकर फिर उठ जाते और केवल धड़के ही रूपमें अच्छे-अच्छे हथियार हाथमें ले देवीके साथ युद्ध करने लगते थे। दूसरे कबन्ध युद्धके बाजोंकी लयपर नाचते थे॥ ६०—६३॥ कितने ही बिना सिरके धड़ हाथोंमें खड्ग, शक्ति और ऋष्टि लिये दौड़ते थे तथा दूसरे-दूसरे महादैत्य 'ठहरो! ठहरो!!' यह कहते हुए देवीको युद्धके लिये ललकारते थे। जहाँ वह घोर संग्राम हुआ था, वहाँकी धरती देवीके गिराये हुए रथ, हाथी, घोड़े और असुरोंकी लाशोंसे ऐसी पट गयी थी कि वहाँ चलना-फिरना असम्भव हो गया था॥ ६४-६५॥ दैत्योंकी सेनामें हाथी, घोड़े और असुरोंके शरीरोंसे इतनी अधिक मात्रामें रक्तपात हुआ था कि थोड़ी ही देरमें वहाँ खूनकी बड़ी-बड़ी नदियाँ बहने लगीं॥ ६६॥ जगदम्बाने असुरोंकी विशाल सेनाको क्षणभरमें नष्ट कर दिया—ठीक उसी तरह, जैसे तृण और काठके भारी ढेरको आग कुछ ही क्षणोंमें भस्म कर देती है॥ ६७॥

---

* किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद 'रुधिरौघविलुप्ताङ्गाः संग्रामे लोमहर्षणे।' इतना पाठ अधिक है।

स च सिंहो महानादमुत्सृजन्धुतकेसरः।
शरीरेभ्योऽमरारीणामसूनिव विचिन्वति॥ ६८॥
देव्या गणैश्च तैस्तत्र कृतं युद्धं महासुरैः।
यथैषां[1] तुतुषुर्देवाः[2] पुष्पवृष्टिमुचो दिवि॥ ॐ॥ ६९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
महिषासुरसैन्यवधो नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥
उवाच१, श्लोकाः ६८, एवम् ६९,
एवमादितः १७३॥

और वह सिंह भी गर्दनके बालोंको हिला-हिलाकर जोर-जोरसे गर्जना करता हुआ दैत्योंके शरीरोंसे मानो उनके प्राण चुने लेता था॥ ६८॥ वहाँ देवीके गणोंने भी उन महादैत्योंके साथ ऐसा युद्ध किया, जिससे आकाशमें खड़े हुए देवतागण उनपर बहुत संतुष्ट हुए और फूल बरसाने लगे॥ ६९॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके
अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'महिषासुरकी सेनाका वध'
नामक दूसरा अध्याय पूरा हुआ॥ २॥

१. पा०—यथैनां। २. पा०—तुष्टुवुर्देवाः।

तृतीयोऽध्यायः

सेनापतियोंसहित महिषासुरका वध

ध्यानम्

ॐ उद्यद्भानुसहस्रकान्तिमरुणक्षौमां शिरोमालिकां
रक्तालिप्तपयोधरां जपवटीं विद्यामभीतिं वरम्।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्रविलसद्वक्त्रारविन्दश्रियं
देवीं बद्धहिमांशुरत्नमुकुटां वन्देऽरविन्दस्थिताम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

निहन्यमानं तत्सैन्यमवलोक्य महासुरः।
सेनानीश्चिक्षुरः कोपाद्ययौ योद्धुमथाम्बिकाम्॥ २॥
स देवीं शरवर्षेण ववर्ष समरेऽसुरः।

जगदम्बाके श्रीअंगोंकी कान्ति उदयकालके सहस्रों सूर्योंके समान है। वे लाल रंगकी रेशमी साड़ी पहने हुए हैं। उनके गलेमें मुण्डमाला शोभा पा रही है। दोनों स्तनोंपर रक्त चन्दनका लेप लगा है। वे अपने कर-कमलोंमें जपमालिका, विद्या और अभय तथा वर नामक मुद्राएँ धारण किये हुए हैं। तीन नेत्रोंसे सुशोभित मुखारविन्दकी बड़ी शोभा हो रही है। उनके मस्तकपर चन्द्रमाके साथ ही रत्नमय मुकुट बँधा है तथा वे कमलके आसनपर विराजमान हैं। ऐसी देवीको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ दैत्योंकी सेनाको इस प्रकार तहस-नहस होते देख महादैत्य सेनापति चिक्षुर क्रोधमें भरकर अम्बिकादेवीसे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़ा॥ २॥ वह असुर रणभूमिमें देवीके ऊपर इस प्रकार बाणोंकी वर्षा करने लगा, जैसे बादल मेरुगिरिके शिखरपर पानीकी धार

यथा मेरुगिरेः शृङ्गं तोयवर्षेण तोयदः॥ ३ ॥
तस्यच्छित्त्वा ततो देवी लीलयैव शरोत्करान्।
जघान तुरगान् बाणैर्यन्तारं चैव वाजिनाम्॥ ४ ॥
चिच्छेद च धनुः सद्यो ध्वजं चातिसमुच्छ्रितम्।
विव्याध चैव गात्रेषु छिन्नधन्वानमाशुगैः॥ ५ ॥
सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
अभ्यधावत तां देवीं खड्गचर्मधरोऽसुरः॥ ६ ॥
सिंहमाहत्य खड्गेन तीक्ष्णधारेण मूर्धनि।
आजघान भुजे सव्ये देवीमप्यतिवेगवान्॥ ७ ॥
तस्याः खड्गो भुजं प्राप्य पफाल नृपनन्दन।
ततो जग्राह शूलं स कोपादरुणलोचनः॥ ८ ॥
चिक्षेप च ततस्तत्तु भद्रकाल्यां महासुरः।
जाज्वल्यमानं तेजोभी रविबिम्बमिवाम्बरात्॥ ९ ॥

बरसा रहा हो॥ ३॥ तब देवीने अपने बाणोंसे उसके बाणसमूहको अनायास ही काटकर उसके घोड़ों और सारथिको भी मार डाला॥ ४॥ साथ ही उसके धनुष तथा अत्यन्त ऊँची ध्वजाको भी तत्काल काट गिराया। धनुष कट जानेपर उसके अंगोंको अपने बाणोंसे बींध डाला॥ ५॥ धनुष, रथ, घोड़े और सारथिके नष्ट हो जानेपर वह असुर ढाल और तलवार लेकर देवीकी ओर दौड़ा॥ ६॥ उसने तीखी धारवाली तलवारसे सिंहके मस्तकपर चोट करके देवीकी भी बायीं भुजामें बड़े वेगसे प्रहार किया॥ ७॥ राजन्! देवीकी बाँहपर पहुँचते ही वह तलवार टूट गयी, फिर तो क्रोधसे लाल आँखें करके उस राक्षसने शूल हाथमें लिया॥ ८॥ और उसे उस महादैत्यने भगवती भद्रकालीके ऊपर चलाया। वह शूल आकाशसे गिरते हुए सूर्यमण्डलकी भाँति अपने तेजसे प्रज्वलित हो उठा॥ ९॥

दृष्ट्वा तदापतच्छूलं देवी शूलममुञ्चत।
तच्छूलं* शतधा तेन नीतं स च महासुरः॥ १०॥
हते तस्मिन्महावीर्ये महिषस्य चमूपतौ।
आजगाम गजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः॥ ११॥
सोऽपि शक्तिं मुमोचाथ देव्यास्तामम्बिका द्रुतम्।
हुंकाराभिहतां भूमौ पातयामास निष्प्रभाम्॥ १२॥
भग्नां शक्तिं निपतितां दृष्ट्वा क्रोधसमन्वितः।
चिक्षेप चामरः शूलं बाणैस्तदपि साच्छिनत्॥ १३॥
ततः सिंहः समुत्पत्य गजकुम्भान्तरे स्थितः।
बाहुयुद्धेन युयुधे तेनोच्चैस्त्रिदशारिणा॥ १४॥
युद्ध्यमानौ ततस्तौ तु तस्मान्नागान्महीं गतौ।

उस शूलको अपनी ओर आते देख देवीने भी शूलका प्रहार किया। उससे राक्षसके शूलके सैकड़ों टुकड़े हो गये, साथ ही महादैत्य चिक्षुरकी भी धज्जियाँ उड़ गयीं। वह प्राणोंसे हाथ धो बैठा॥ १०॥

महिषासुरके सेनापति उस महापराक्रमी चिक्षुरके मारे जानेपर देवताओंको पीड़ा देनेवाला चामर हाथीपर चढ़कर आया। उसने भी देवीके ऊपर शक्तिका प्रहार किया, किंतु जगदम्बाने उसे अपने हुंकारसे ही आहत एवं निष्प्रभ करके तत्काल पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ११-१२॥ शक्ति टूटकर गिरी हुई देख चामरको बड़ा क्रोध हुआ। अब उसने शूल चलाया, किंतु देवीने उसे भी अपने बाणोंद्वारा काट डाला॥ १३॥ इतनेमें ही देवीका सिंह उछलकर हाथीके मस्तकपर चढ़ बैठा और उस दैत्यके साथ खूब जोर लगाकर बाहुयुद्ध करने लगा॥ १४॥ वे दोनों लड़ते-लड़ते हाथीसे पृथ्वीपर आ गये और

* पा०—तेन तच्छतधा नीतं।

युयुधातेऽतिसंरब्धौ प्रहारैरतिदारुणैः ॥ १५ ॥
ततो वेगात् खमुत्पत्य निपत्य च मृगारिणा।
करप्रहारेण शिरश्चामरस्य पृथक्कृतम् ॥ १६ ॥
उदग्रश्च रणे देव्या शिलावृक्षादिभिर्हतः।
दन्तमुष्टितलैश्चैव करालश्च निपातितः ॥ १७ ॥
देवी क्रुद्धा गदापातैश्चूर्णयामास चोद्धतम्।
वाष्कलं भिन्दिपालेन बाणैस्ताम्रं तथान्धकम् ॥ १८ ॥
उग्रास्यमुग्रवीर्यं च तथैव च महाहनुम्।
त्रिनेत्रा च त्रिशूलेन जघान परमेश्वरी ॥ १९ ॥
बिडालस्यासिना कायात्पातयामास वै शिरः।
दुर्धरं दुर्मुखं चोभौ शरैर्निन्ये यमक्षयम्* ॥ २० ॥

अत्यन्त क्रोधमें भरकर एक-दूसरेपर बड़े भयंकर प्रहार करते हुए लड़ने लगे ॥ १५ ॥ तदनन्तर सिंह बड़े वेगसे आकाशकी ओर उछला और उधरसे गिरते समय उसने पंजोंकी मारसे चामरका सिर धड़से अलग कर दिया ॥ १६ ॥ इसी प्रकार उदग्र भी शिला और वृक्ष आदिकी मार खाकर रणभूमिमें देवीके हाथसे मारा गया तथा कराल भी दाँतों, मुक्कों और थप्पड़ोंकी चोटसे धराशायी हो गया ॥ १७ ॥ क्रोधमें भरी हुई देवीने गदाकी चोटसे उद्धतका कचूमर निकाल डाला। भिन्दिपालसे वाष्कलको तथा बाणोंसे ताम्र और अन्धकको मौतके घाट उतार दिया ॥ १८ ॥ तीन नेत्रोंवाली परमेश्वरीने त्रिशूलसे उग्रास्य, उग्रवीर्य तथा महाहनु नामक दैत्योंको मार डाला ॥ १९ ॥ तलवारकी चोटसे विडालके मस्तकको धड़से काट गिराया। दुर्धर और दुर्मुख—इन दोनोंको भी अपने बाणोंसे यमलोक भेज दिया ॥ २० ॥

* इसके बाद किसी-किसी प्रतिमें—
'कालं च कालदण्डेन कालरात्रिरपातयत्।
उग्रदर्शनमत्युग्रैः खड्गपातैरताडयत् ॥

एवं संक्षीयमाणे तु स्वसैन्ये महिषासुरः।
माहिषेण स्वरूपेण त्रासयामास तान् गणान्॥ २१॥
कांश्चित्तुण्डप्रहारेण खुरक्षेपैस्तथापरान्।
लाङ्गूलताडितांश्चान्याञ्छृङ्गाभ्यां च विदारितान्॥ २२॥
वेगेन कांश्चिदपरान्नादेन भ्रमणेन च।
निःश्वासपवनेनान्यान् पातयामास भूतले॥ २३॥
निपात्य प्रमथानीकमभ्यधावत सोऽसुरः।
सिंहं हन्तुं महादेव्याः कोपं चक्रे ततोऽम्बिका॥ २४॥
सोऽपि कोपान्महावीर्यः खुरक्षुण्णमहीतलः।
शृङ्गाभ्यां पर्वतानुच्चांश्चिक्षेप च ननाद च॥ २५॥
वेगभ्रमणविक्षुण्णा मही तस्य व्यशीर्यत।
लाङ्गूलेनाहतश्चाब्धिः प्लावयामास सर्वतः॥ २६॥

इस प्रकार अपनी सेनाका संहार होता देख महिषासुरने भैंसेका रूप धारण करके देवीके गणोंको त्रास देना आरम्भ किया॥ २१॥ किन्हींको थूथुनसे मारकर, किन्हींके ऊपर खुरोंका प्रहार करके, किन्हीं-किन्हींको पूँछसे चोट पहुँचाकर, कुछको सींगोंसे विदीर्ण करके, कुछ गणोंको वेगसे, किन्हींको सिंहनादसे, कुछको चक्कर देकर और कितनोंको निःश्वास-वायुके झोंकेसे धराशायी कर दिया॥ २२-२३॥ इस प्रकार गणोंकी सेनाको गिराकर वह असुर महादेवीके सिंहको मारनेके लिये झपटा। इससे जगदम्बाको बड़ा क्रोध हुआ॥ २४॥ उधर महापराक्रमी महिषासुर भी क्रोधमें भरकर धरतीको खुरोंसे खोदने लगा तथा अपने सींगोंसे ऊँचे-ऊँचे पर्वतोंको उठाकर फेंकने और गर्जने लगा॥ २५॥ उसके वेगसे चक्कर देनेके कारण पृथ्वी क्षुब्ध होकर फटने लगी। उसकी पूँछसे टकराकर समुद्र सब ओरसे धरतीको डुबोने लगा॥ २६॥

असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सा रणोत्सवे।
गणैः सिंहेन देव्या च जयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः॥'
—ये दो श्लोक अधिक हैं।

धुतशृङ्गविभिन्नाश्च खण्डं* खण्डं ययुर्घनाः।
श्वासानिलास्ताः शतशो निपेतुर्नभसोऽचलाः॥ २७॥
इति क्रोधसमाध्मातमापतन्तं महासुरम्।
दृष्ट्वा सा चण्डिका कोपं तद्वधाय तदाकरोत्॥ २८॥
सा क्षिप्त्वा तस्य वै पाशं तं बबन्ध महासुरम्।
तत्याज माहिषं रूपं सोऽपि बद्धो महामृधे॥ २९॥
ततः सिंहोऽभवत्सद्यो यावत्तस्याम्बिका शिरः।
छिनत्ति तावत्पुरुषः खड्गपाणिरदृश्यत॥ ३०॥
तत एवाशु पुरुषं देवी चिच्छेद सायकैः।
तं खड्गचर्मणा सार्धं ततः सोऽभून्महागजः॥ ३१॥
करेण च महासिंहं तं चकर्ष जगर्ज च।

हिलते हुए सींगोंके आघातसे विदीर्ण होकर बादलोंके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके श्वासकी प्रचण्ड वायुके वेगसे उड़े हुए सैकड़ों पर्वत आकाशसे गिरने लगे॥ २७॥ इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए उस महादैत्यको अपनी ओर आते देख चण्डिकाने उसका वध करनेके लिये महान् क्रोध किया॥ २८॥ उन्होंने पाश फेंककर उस महान् असुरको बाँध लिया। उस महासंग्राममें बँध जानेपर उसने भैंसेका रूप त्याग दिया॥ २९॥ और तत्काल सिंहके रूपमें वह प्रकट हो गया। उस अवस्थामें जगदम्बा ज्यों ही उसका मस्तक काटनेके लिये उद्यत हुईं, त्यों ही वह खड्गधारी पुरुषके रूपमें दिखायी देने लगा॥ ३०॥ तब देवीने तुरंत ही बाणोंकी वर्षा करके ढाल और तलवारके साथ उस पुरुषको भी बींध डाला। इतनेमें ही वह महान् गजराजके रूपमें परिणत हो गया॥ ३१॥ तथा अपनी सूँड़से देवीके विशाल सिंहको खींचने और गर्जने लगा।

* पा०— खण्डखण्डं।

कर्षतस्तु करं देवी खड्गेन निरकृन्तत॥ ३२॥
ततो महासुरो भूयो माहिषं वपुरास्थितः।
तथैव क्षोभयामास त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ३३॥
ततः क्रुद्धा जगन्माता चण्डिका पानमुत्तमम्।
पपौ पुनः पुनश्चैव जहासारुणलोचना॥ ३४॥
ननर्द चासुरः सोऽपि बलवीर्यमदोद्धतः।
विषाणाभ्यां च चिक्षेप चण्डिकां प्रति भूधरान्॥ ३५॥
सा च तान् प्रहितांस्तेन चूर्णयन्ती शरोत्करैः।
उवाच तं मदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम्॥ ३६॥

देव्युवाच॥ ३७॥

गर्ज गर्ज क्षणं मूढ मधु यावत्पिबाम्यहम्।
मया त्वयि हतेऽत्रैव गर्जिष्यन्त्याशु देवताः॥ ३८॥

खींचते समय देवीने तलवारसे उसकी सूँड़ काट डाली॥ ३२॥ तब उस महादैत्यने पुनः भैंसेका शरीर धारण कर लिया और पहलेकी ही भाँति चराचर प्राणियोंसहित तीनों लोकोंको व्याकुल करने लगा॥ ३३॥ तब क्रोधमें भरी हुई जगन्माता चण्डिका बारंबार उत्तम मधुका पान करने और लाल आँखें करके हँसने लगीं॥ ३४॥ उधर वह बल और पराक्रमके मदसे उन्मत्त हुआ राक्षस गर्जने लगा और अपने सींगोंसे चण्डीके ऊपर पर्वतोंको फेंकने लगा॥ ३५॥ उस समय देवी अपने बाणोंके समूहोंसे उसके फेंके हुए पर्वतोंको चूर्ण करती हुई बोलीं। बोलते समय उनका मुख मधुके मदसे लाल हो रहा था और वाणी लड़खड़ा रही थी॥ ३६॥

देवीने कहा—॥ ३७॥ ओ मूढ़! मैं जबतक मधु पीती हूँ, तबतक तू क्षणभरके लिये खूब गर्ज ले। मेरे हाथसे यहीं तेरी मृत्यु हो जानेपर अब शीघ्र ही देवता भी गर्जना करेंगे॥ ३८॥

ऋषिरुवाच॥ ३९॥

एवमुक्त्वा समुत्पत्य साऽऽरूढा तं महासुरम्।
पादेनाक्रम्य कण्ठे च शूलेनैनमताडयत्॥ ४०॥

ततः सोऽपि पदाऽऽक्रान्तस्तया निजमुखात्ततः।
अर्धनिष्क्रान्त एवासीद्[1] देव्या वीर्येण संवृतः॥ ४१॥

अर्धनिष्क्रान्त एवासौ युध्यमानो महासुरः।
तया महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातितः[2]॥ ४२॥

ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत्।
प्रहर्षं च परं जग्मुः सकला देवतागणाः॥ ४३॥

ऋषि कहते हैं—॥ ३९॥ यों कहकर देवी उछलीं और उस महादैत्यके ऊपर चढ़ गयीं। फिर अपने पैरसे उसे दबाकर उन्होंने शूलसे उसके कण्ठमें आघात किया॥ ४०॥ उनके पैरसे दबा होनेपर भी महिषासुर अपने मुखसे [दूसरे रूपमें बाहर होने लगा] अभी आधे शरीरसे ही वह बाहर निकलने पाया था कि देवीने अपने प्रभावसे उसे रोक दिया॥ ४१॥ आधा निकला होनेपर भी वह महादैत्य देवीसे युद्ध करने लगा। तब देवीने बहुत बड़ी तलवारसे उसका मस्तक काट गिराया॥ ४२॥ फिर तो हाहाकार करती हुई दैत्योंकी सारी सेना भाग गयी तथा सम्पूर्ण देवता अत्यन्त प्रसन्न हो गये॥ ४३॥

---

१. पा०—एवाति देव्या। २. किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद—'एवं स महिषो नाम ससैन्यः ससुहृद्गणः। त्रैलोक्यं मोहयित्वा तु तया देव्या विनाशितः॥ त्रैलोक्यस्थैस्तदा भूतैर्महिषे विनिपातिते। जयेत्युक्तं ततः सर्वैः सदेवासुरमानवैः॥' इतना अधिक पाठ है।

तुष्टुवुस्तां सुरा देवीं सह दिव्यैर्महर्षिभिः।
जगुर्गन्धर्वपतयो ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ॐ॥ ४४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

उवाच ३, श्लोकाः ४१, एवम् ४४, एवमादितः २१७॥

देवताओंने दिव्य महर्षियोंके साथ दुर्गादेवीका स्तवन किया। गन्धर्वराज गाने लगे तथा अप्सराएँ नृत्य करने लगीं॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'महिषासुरवध' नामक तीसरा अध्याय पूरा हुआ॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायः

इन्द्रादि देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति

ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम्।
सिंहस्कन्धाधिरूढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः॥

*'ॐ' ऋषिरुवाच** ॥ १ ॥

शक्रादयः सुरगणा निहतेऽतिवीर्ये
तस्मिन्दुरात्मनि सुरारिबले च देव्या।

सिद्धिकी इच्छा रखनेवाले पुरुष जिनकी सेवा करते हैं तथा देवता जिन्हें सब ओरसे घेरे रहते हैं, उन 'जया' नामवाली दुर्गादेवीका ध्यान करे। उनके श्रीअंगोंकी आभा काले मेघके समान श्याम है। वे अपने कटाक्षोंसे शत्रुसमूहको भय प्रदान करती हैं। उनके मस्तकपर आबद्ध चन्द्रमाकी रेखा शोभा पाती है। वे अपने हाथोंमें शंख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण करती हैं। उनके तीन नेत्र हैं। वे सिंहके कंधेपर चढ़ी हुई हैं और अपने तेजसे तीनों लोकोंको परिपूर्ण कर रही हैं।

ऋषि कहते हैं—॥ १ ॥ अत्यन्त पराक्रमी दुरात्मा महिषासुर तथा उसकी दैत्य-सेनाके देवीके हाथसे मारे जानेपर इन्द्र आदि देवता प्रणामके लिये गर्दन

---

* किसी-किसी प्रतिमें 'ऋषिरुवाच' के बाद 'ततः सुरगणाः सर्वे देव्या इन्द्रपुरोगमाः। स्तुतिमारेभिरे कर्तुं निहते महिषासुरे॥' इतना पाठ अधिक है ।

तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसा
वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्‌गमचारुदेहाः ॥ २ ॥
देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥ ३ ॥
यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु ॥ ४ ॥
या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।

तथा कंधे झुकाकर उन भगवती दुर्गाका उत्तम वचनोंद्वारा स्तवन करने लगे। उस समय उनके सुन्दर अंगोंमें अत्यन्त हर्षके कारण रोमांच हो आया था॥ २॥ देवता बोले—'सम्पूर्ण देवताओंकी शक्तिका समुदाय ही जिनका स्वरूप है तथा जिन देवीने अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण जगत्‌को व्याप्त कर रखा है, समस्त देवताओं और महर्षियोंकी पूजनीया उन जगदम्बाको हम भक्ति-पूर्वक नमस्कार करते हैं। वे हमलोगोंका कल्याण करें॥ ३॥ जिनके अनुपम प्रभाव और बलका वर्णन करनेमें भगवान् शेषनाग, ब्रह्माजी तथा महादेवजी भी समर्थ नहीं हैं, वे भगवती चण्डिका सम्पूर्ण जगत्‌का पालन एवं अशुभ भयका नाश करनेका विचार करें॥ ४॥ जो पुण्यात्माओंके घरोंमें स्वयं ही लक्ष्मीरूपसे, पापियोंके यहाँ दरिद्रतारूपसे, शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुषोंके

श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥ ५॥
किं वर्णयाम तव रूपमचिन्त्यमेतत्
किं चातिवीर्यमसुरक्षयकारि भूरि।
किं चाहवेषु चरितानि तवाद्भुतानि
सर्वेषु देव्यसुरदेवगणादिकेषु॥ ६॥
हेतुः समस्तजगतां त्रिगुणापि दोषै-
र्न ज्ञायसे हरिहरादिभिरप्यपारा।
सर्वाश्रयाखिलमिदं जगदंशभूत-
मव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या॥ ७॥
यस्याः समस्तसुरता समुदीरणेन
तृप्तिं प्रयाति सकलेषु मखेषु देवि।

हृदयमें बुद्धिरूपसे, सत्पुरुषोंमें श्रद्धारूपसे तथा कुलीन मनुष्यमें लज्जारूपसे निवास करती हैं, उन आप भगवती दुर्गाको हम नमस्कार करते हैं। देवि! आप सम्पूर्ण विश्वका पालन कीजिये॥ ५॥ देवि! आपके इस अचिन्त्य रूपका, असुरोंका नाश करनेवाले भारी पराक्रमका तथा समस्त देवताओं और दैत्योंके समक्ष युद्धमें प्रकट किये हुए आपके अद्भुत चरित्रोंका हम किस प्रकार वर्णन करें॥ ६॥ आप सम्पूर्ण जगत्की उत्पत्तिमें कारण हैं। आपमें सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण—ये तीनों गुण मौजूद हैं; तो भी दोषोंके साथ आपका संसर्ग नहीं जान पड़ता। भगवान् विष्णु और महादेवजी आदि देवता भी आपका पार नहीं पाते। आप ही सबका आश्रय हैं। यह समस्त जगत् आपका अंशभूत है; क्योंकि आप सबकी आदिभूत अव्याकृता परा प्रकृति हैं॥ ७॥ देवि! सम्पूर्ण यज्ञोंमें जिसके उच्चारणसे सब देवता तृप्ति लाभ करते हैं, वह स्वाहा आप ही हैं। इसके अतिरिक्त आप पितरोंकी भी तृप्तिका

स्वाहासि वै पितृगणस्य च तृप्तिहेतु-
रुच्चार्यसे त्वमत एव जनैः स्वधा च॥ ८ ॥
या मुक्तिहेतुरविचिन्त्यमहाव्रता त्व*-
मभ्यस्यसे सुनियतेन्द्रियतत्त्वसारैः।
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषै-
र्विद्यासि सा भगवती परमा हि देवि॥ ९ ॥
शब्दात्मिका सुविमलर्ग्यजुषां निधान-
मुद्गीथरम्यपदपाठवतां च साम्नाम्।
देवी त्रयी भगवती भवभावनाय
वार्ता च सर्वजगतां परमार्तिहन्त्री॥ १० ॥
मेधासि देवि विदिताखिलशास्त्रसारा
दुर्गासि दुर्गभवसागरनौरसङ्गा।

कारण हैं, अतएव सब लोग आपको स्वधा भी कहते हैं॥ ८॥ देवि! जो मोक्षकी प्राप्तिका साधन है, अचिन्त्य महाव्रतस्वरूपा है, समस्त दोषोंसे रहित, जितेन्द्रिय, तत्त्वको ही सार वस्तु माननेवाले तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले मुनिजन जिसका अभ्यास करते हैं, वह भगवती परा विद्या आप ही हैं॥ ९ ॥ आप शब्दस्वरूपा हैं, अत्यन्त निर्मल ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा उद्‌गीथके मनोहर पदोंके पाठसे युक्त सामवेदका भी आधार आप ही हैं। आप देवी, त्रयी (तीनों वेद) और भगवती (छहों ऐश्वर्योंसे युक्त) हैं। इस विश्वकी उत्पत्ति एवं पालनके लिये आप ही वार्ता (खेती एवं आजीविका)-के रूपमें प्रकट हुई हैं। आप सम्पूर्ण जगत्‌की घोर पीड़ाका नाश करनेवाली हैं॥ १० ॥ देवि! जिससे समस्त शास्त्रोंके सारका ज्ञान होता है, वह मेधाशक्ति आप ही हैं। दुर्गम भवसागरसे पार उतारनेवाली नौकारूप दुर्गादेवी भी आप ही हैं।

* पा०—च अभ्य०।

श्रीः कैटभारिहृदयैककृताधिवासा
गौरी त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा॥ ११ ॥
ईषत्सहासममलं परिपूर्णचन्द्र-
बिम्बानुकारि कनकोत्तमकान्तिकान्तम्।
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्तरुषा तथापि
वक्त्रं विलोक्य सहसा महिषासुरेण॥ १२ ॥
दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल-
मुद्यच्छशाङ्कसदृशच्छवि यन्न सद्यः।
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं
कैर्जीव्यते हि कुपितान्तकदर्शनेन॥ १३ ॥
देवि प्रसीद परमा भवती भवाय
सद्यो विनाशयसि कोपवती कुलानि।
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत-
न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य॥ १४ ॥

आपकी कहीं भी आसक्ति नहीं है। कैटभके शत्रु भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलमें एकमात्र निवास करनेवाली भगवती लक्ष्मी तथा भगवान् चन्द्रशेखरद्वारा सम्मानित गौरीदेवी भी आप ही हैं॥ ११॥ आपका मुख मन्द मुसकानसे सुशोभित, निर्मल, पूर्ण चन्द्रमाके बिम्बका अनुकरण करनेवाला और उत्तम सुवर्णकी मनोहर कान्तिसे कमनीय है; तो भी उसे देखकर महिषासुरको क्रोध हुआ और सहसा उसने उसपर प्रहार कर दिया, यह बड़े आश्चर्यकी बात है॥ १२॥ देवि! वही मुख जब क्रोधसे युक्त होनेपर उदयकालके चन्द्रमाकी भाँति लाल और तनी हुई भौंहोंके कारण विकराल हो उठा, तब उसे देखकर जो महिषासुरके प्राण तुरंत नहीं निकल गये, यह उससे भी बढ़कर आश्चर्यकी बात है; क्योंकि क्रोधमें भरे हुए यमराजको देखकर भला, कौन जीवित रह सकता है?॥ १३॥ देवि! आप प्रसन्न हों। परमात्मस्वरूपा आपके प्रसन्न होनेपर जगत्‌का अभ्युदय होता है और क्रोधमें भर जानेपर आप तत्काल ही कितने कुलोंका सर्वनाश कर डालती हैं, यह बात अभी अनुभवमें आयी है; क्योंकि महिषासुरकी यह विशाल सेना क्षणभरमें आपके कोपसे नष्ट हो गयी है॥ १४॥

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥ १५॥
धर्म्याणि देवि सकलानि सदैव कर्मा-
ण्यत्यादृतः प्रतिदिनं सुकृती करोति।
स्वर्गं प्रयाति च ततो भवतीप्रसादा-
ल्लोकत्रयेऽपि फलदा ननु देवि तेन॥ १६॥
दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥ १७॥

सदा अभ्युदय प्रदान करनेवाली आप जिनपर प्रसन्न रहती हैं, वे ही देशमें सम्मानित हैं, उन्हींको धन और यशकी प्राप्ति होती है, उन्हींका धर्म कभी शिथिल नहीं होता तथा वे ही अपने हृष्ट-पुष्ट स्त्री, पुत्र और भृत्योंके साथ धन्य माने जाते हैं॥ १५॥ देवि! आपकी ही कृपासे पुण्यात्मा पुरुष प्रतिदिन अत्यन्त श्रद्धापूर्वक सदा सब प्रकारके धर्मानुकूल कर्म करता है और उसके प्रभावसे स्वर्गलोकमें जाता है; इसलिये आप तीनों लोकोंमें निश्चय ही मनोवांछित फल देनेवाली हैं॥ १६॥ माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो॥ १७॥

एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते
कुर्वन्तु नाम नरकाय चिराय पापम्।
संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयान्तु
मत्वेति नूनमहितान् विनिहंसि देवि॥ १८॥
दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
सर्वासुरानरिषु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम्।
लोकान् प्रयान्तु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽतिसाध्वी॥ १९॥
खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः
शूलाग्रकान्तिनिवहेन दृशोऽसुराणाम्।
यन्नागता विलयमंशुमदिन्दुखण्ड-
योग्याननं तव विलोकयतां तदेतत्॥ २०॥
दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं

देवि! इन राक्षसोंके मारनेसे संसारको सुख मिले तथा ये राक्षस चिरकालतक नरकमें रहनेके लिये भले ही पाप करते रहे हों, इस समय संग्राममें मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्गलोकमें जायँ—निश्चय ही यही सोचकर आप शत्रुओंका वध करती हैं॥ १८॥ आप शत्रुओंपर शस्त्रोंका प्रहार क्यों करती हैं? समस्त असुरोंको दृष्टिपातमात्रसे ही भस्म क्यों नहीं कर देतीं? इसमें एक रहस्य है। ये शत्रु भी हमारे शस्त्रोंसे पवित्र होकर उत्तम लोकोंमें जायँ—इस प्रकार उनके प्रति भी आपका विचार अत्यन्त उत्तम रहता है॥ १९॥ खड्गके तेज:पुंजकी भयंकर दीप्तिसे तथा आपके त्रिशूलके अग्रभागकी घनीभूत प्रभासे चौंधियाकर जो असुरोंकी आँखें फूट नहीं गयीं, उसमें कारण यही था कि वे मनोहर रश्मियोंसे युक्त चन्द्रमाके समान आनन्द प्रदान करनेवाले आपके इस सुन्दर मुखका दर्शन करते थे॥ २०॥ देवि! आपका शील दुराचारियोंके बुरे बर्तावको

रूपं तथैतदविचिन्त्यमतुल्यमन्यैः।
वीर्यं च हन्तृ हृतदेवपराक्रमाणां
वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम्॥ २१॥
केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य
रूपं च शत्रुभयकार्यतिहारि कुत्र।
चित्ते कृपा समरनिष्ठुरता च दृष्टा
त्वय्येव देवि वरदे भुवनत्रयेऽपि॥ २२॥
त्रैलोक्यमेतदखिलं रिपुनाशनेन
त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा।
नीता दिवं रिपुगणा भयमप्यपास्त-
मस्माकमुन्मदसुरारिभवं नमस्ते॥ २३॥
शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।

दूर करनेवाला है। साथ ही यह रूप ऐसा है, जो कभी चिन्तनमें भी नहीं आ सकता और जिसकी कभी दूसरोंसे तुलना भी नहीं हो सकती; तथा आपका बल और पराक्रम तो उन दैत्योंका भी नाश करनेवाला है, जो कभी देवताओंके पराक्रमको भी नष्ट कर चुके थे। इस प्रकार आपने शत्रुओंपर भी अपनी दया ही प्रकट की है॥ २१॥ वरदायिनी देवि! आपके इस पराक्रमकी किसके साथ तुलना हो सकती है तथा शत्रुओंको भय देनेवाला एवं अत्यन्त मनोहर ऐसा रूप भी आपके सिवा और कहाँ है? हृदयमें कृपा और युद्धमें निष्ठुरता—ये दोनों बातें तीनों लोकोंके भीतर केवल आपमें ही देखी गयी हैं॥ २२॥ मातः! आपने शत्रुओंका नाश करके इस समस्त त्रिलोकीकी रक्षा की है। उन शत्रुओंको भी युद्धभूमिमें मारकर स्वर्गलोकमें पहुँचाया है तथा उन्मत्त दैत्योंसे प्राप्त होनेवाले हमलोगोंके भयको भी दूर कर दिया है, आपको हमारा नमस्कार है॥ २३॥ देवि! आप शूलसे हमारी रक्षा करें। अम्बिके! आप खड्गसे भी हमारी रक्षा

घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥ २४॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि॥ २५॥
सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम्॥ २६॥
खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः॥ २७॥

ऋषिरुवाच॥ २८॥

एवं स्तुता सुरैर्दिव्यैः कुसुमैर्नन्दनोद्भवैः।
अर्चिता जगतां धात्री तथा गन्धानुलेपनैः॥ २९॥
भक्त्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धूपैस्तु* धूपिता।
प्राह प्रसादसुमुखी समस्तान् प्रणतान् सुरान्॥ ३०॥

करें तथा घण्टाकी ध्वनि और धनुषकी टंकारसे भी हमलोगोंकी रक्षा करें॥ २४॥ चण्डिके! पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशामें आप हमारी रक्षा करें तथा ईश्वरि! अपने त्रिशूलको घुमाकर आप उत्तर दिशामें भी हमारी रक्षा करें॥ २५॥ तीनों लोकोंमें आपके जो परम सुन्दर एवं अत्यन्त भयंकर रूप विचरते रहते हैं, उनके द्वारा भी आप हमारी तथा इस भूलोककी रक्षा करें॥ २६॥ अम्बिके! आपके कर-पल्लवोंमें शोभा पानेवाले खड्ग, शूल और गदा आदि जो-जो अस्त्र हों, उन सबके द्वारा आप सब ओरसे हमलोगोंकी रक्षा करें॥ २७॥

ऋषि कहते हैं—॥ २८॥ इस प्रकार जब देवताओंने जगन्माता दुर्गाकी स्तुति की और नन्दन-वनके दिव्य पुष्पों एवं गन्ध-चन्दन आदिके द्वारा उनका पूजन किया, फिर सबने मिलकर जब भक्तिपूर्वक दिव्य धूपोंकी सुगन्ध निवेदन की, तब देवीने प्रसन्नवदन होकर प्रणाम करते हुए सब देवताओंसे कहा— ॥ २९-३०॥

---

* पा०—पैः सुधूपिता।

देव्युवाच॥ ३१॥

व्रियतां त्रिदशाः सर्वे यदस्मत्तोऽभिवाञ्छितम्*॥ ३२॥

देवा ऊचुः॥ ३३॥

भगवत्या कृतं सर्वं न किंचिदवशिष्यते॥ ३४॥

यदयं निहतः शत्रुरस्माकं महिषासुरः।
यदि चापि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरि॥ ३५॥

संस्मृता संस्मृता त्वं नो हिंसेथाः परमापदः।
यश्च मर्त्यः स्तवैरेभिस्त्वां स्तोष्यत्यमलानने॥ ३६॥

तस्य वित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसम्पदाम्।
वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं भवेथाः सर्वदाम्बिके॥ ३७॥

देवी बोलीं—॥ ३१॥ देवताओ! तुम सब लोग मुझसे जिस वस्तुकी अभिलाषा रखते हो, उसे माँगो॥ ३२॥

देवता बोले—॥ ३३॥ भगवतीने हमारी सब इच्छा पूर्ण कर दी, अब कुछ भी बाकी नहीं है॥ ३४॥ क्योंकि हमारा यह शत्रु महिषासुर मारा गया। महेश्वरि! इतनेपर भी यदि आप हमें और वर देना चाहती हैं॥ ३५॥ तो हम जब-जब आपका स्मरण करें, तब-तब आप दर्शन देकर हमलोगोंके महान् संकट दूर कर दिया करें तथा प्रसन्नमुखी अम्बिके! जो मनुष्य इन स्तोत्रोंद्वारा आपकी स्तुति करे, उसे वित्त, समृद्धि और वैभव देनेके साथ ही उसकी धन और स्त्री आदि सम्पत्तिको भी बढ़ानेके लिये आप सदा हमपर प्रसन्न रहें॥ ३६-३७॥

---

* मार्कण्डेयपुराणकी आधुनिक प्रतियोंमें—'ददाम्यहमतिप्रीत्या स्तवैरेभिः सुपूजिता।' इतना पाठ अधिक है । किसी-किसी प्रतिमें—'कर्तव्यमपरं यच्च दुष्करं तन्न विद्महे। इत्याकर्ण्य वचो देव्याः प्रत्यूचुस्ते दिवौकसः॥' इतना और अधिक पाठ है।

ऋषिरुवाच॥ ३८॥

इति प्रसादिता देवैर्जगतोऽर्थे तथाऽऽत्मनः।
तथेत्युक्त्वा भद्रकाली बभूवान्तर्हिता नृप॥ ३९॥

इत्येतत्कथितं भूप सम्भूता सा यथा पुरा।
देवी देवशरीरेभ्यो जगत्त्रयहितैषिणी॥ ४०॥

पुनश्च गौरीदेहात्सा* समुद्भूता यथाभवत्।
वधाय दुष्टदैत्यानां तथा शुम्भनिशुम्भयोः॥ ४१॥

रक्षणाय च लोकानां देवानामुपकारिणी।
तच्छृणुष्व मयाऽऽख्यातं यथावत्कथयामि ते॥ ह्रीं ॐ॥ ४२॥

ऋषि कहते हैं— ॥ ३८॥ राजन्! देवताओंने जब अपने तथा जगत्के कल्याणके लिये भद्रकालीदेवीको इस प्रकार प्रसन्न किया, तब वे 'तथास्तु' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गयीं॥ ३९॥ भूपाल! इस प्रकार पूर्वकालमें तीनों लोकोंका हित चाहनेवाली देवी जिस प्रकार देवताओंके शरीरोंसे प्रकट हुई थीं; वह सब कथा मैंने कह सुनायी॥ ४०॥ अब पुनः देवताओंका उपकार करनेवाली वे देवी दुष्ट दैत्यों तथा शुम्भ-निशुम्भका वध करने एवं सब लोकोंकी रक्षा करनेके लिये गौरीदेवीके शरीरसे जिस प्रकार प्रकट हुई थीं वह सब प्रसंग मेरे मुँहसे सुनो। मैं उसका तुमसे यथावत् वर्णन करता हूँ॥ ४१-४२॥

---

* किसी-किसी प्रतिमें 'गौरीदेहा सा', 'गौरी देहा सा' इत्यादि पाठ भी उपलब्ध होते हैं।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिस्तुतिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

उवाच ५, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३५,

एवम् ४२, एवमादितः २५९॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'शक्रादिस्तुति' नामक चौथा अध्याय पूरा हुआ॥ ४॥

पञ्चमोऽध्यायः

देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति, चण्ड-मुण्डके मुखसे अम्बिकाके रूपकी प्रशंसा सुनकर शुम्भका उनके पास दूत भेजना और दूतका निराश लौटना

विनियोगः

ॐ अस्य श्रीउत्तरचरित्रस्य रुद्र ऋषिः, महासरस्वती देवता, अनुष्टुप् छन्दः, भीमा शक्तिः, भ्रामरी बीजम्, सूर्यस्तत्त्वम्, सामवेदः स्वरूपम्, महासरस्वतीप्रीत्यर्थे उत्तरचरित्रपाठे विनियोगः।

ध्यानम्

ॐ घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥

'ॐ क्लीं' ऋषिरुवाच॥ १॥

पुरा शुम्भनिशुम्भाभ्यामसुराभ्यां शचीपतेः।

ॐ इस उत्तरचरित्रके रुद्र ऋषि हैं, महासरस्वती देवता हैं, अनुष्टुप् छन्द है, भीमा शक्ति है, भ्रामरी बीज है, सूर्य तत्त्व है और सामवेद स्वरूप है। महासरस्वतीकी प्रसन्नताके लिये उत्तरचरित्रके पाठमें इसका विनियोग किया जाता है।

जो अपने करकमलोंमें घण्टा, शूल, हल, शंख, मूसल, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, शरद्‌ऋतुके शोभासम्पन्न चन्द्रमाके समान जिनकी मनोहर कान्ति है, जो तीनों लोकोंकी आधारभूता और शुम्भ आदि दैत्योंका नाश करनेवाली हैं तथा गौरीके शरीरसे जिनका प्राकट्य हुआ है, उन महासरस्वतीदेवीका मैं निरन्तर भजन करता हूँ।

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ पूर्वकालमें शुम्भ और निशुम्भ नामक असुरोंने

त्रैलोक्यं यज्ञभागाश्च हृता मदबलाश्रयात्॥ २॥
तावेव सूर्यतां तद्वदधिकारं तथैन्दवम्।
कौबेरमथ याम्यं च चक्राते वरुणस्य च॥ ३॥
तावेव पवनर्द्धिं च चक्रतुर्वह्निकर्म च*।
ततो देवा विनिर्धूता भ्रष्टराज्याः पराजिताः॥ ४॥
हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यां सर्वे निराकृताः।
महासुराभ्यां तां देवीं संस्मरन्त्यपराजिताम्॥ ५॥
तयास्माकं वरो दत्तो यथाऽऽपत्सु स्मृताखिलाः।
भवतां नाशयिष्यामि तत्क्षणात्परमापदः॥ ६॥
इति कृत्वा मतिं देवा हिमवन्तं नगेश्वरम्।
जग्मुस्तत्र ततो देवीं विष्णुमायां प्रतुष्टुवुः॥ ७॥

देवा ऊचुः॥ ८॥

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।

अपने बलके घमंडमें आकर शचीपति इन्द्रके हाथसे तीनों लोकोंका राज्य और यज्ञभाग छीन लिये॥ २॥ वे ही दोनों सूर्य, चन्द्रमा, कुबेर, यम और वरुणके अधिकारका भी उपयोग करने लगे। वायु और अग्निका कार्य भी वे ही करने लगे। उन दोनोंने सब देवताओंको अपमानित, राज्यभ्रष्ट, पराजित तथा अधिकारहीन करके स्वर्गसे निकाल दिया। उन दोनों महान् असुरोंसे तिरस्कृत देवताओंने अपराजितादेवीका स्मरण किया और सोचा—'जगदम्बाने हम-लोगोंको वर दिया था कि आपत्तिकालमें स्मरण करनेपर मैं तुम्हारी सब आपत्तियोंका तत्काल नाश कर दूँगी'॥ ३—६॥ यह विचारकर देवता गिरिराज हिमालयपर गये और वहाँ भगवती विष्णुमायाकी स्तुति करने लगे॥ ७॥

देवता बोले—॥ ८॥ देवीको नमस्कार है, महादेवी शिवाको सर्वदा

---

* किसी-किसी प्रतिमें इसके बाद 'अन्येषां चाधिकारान् स स्वयमेवाधितिष्ठति' इतना पाठ अधिक है।

नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ ९ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः॥ १० ॥
कल्याण्यै प्रणतां* वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः॥ ११ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः॥ १२ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः॥ १३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै॥१४॥ नमस्तस्यै॥१५॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ १६ ॥

नमस्कार है। प्रकृति एवं भद्राको प्रणाम है। हमलोग नियमपूर्वक जगदम्बाको नमस्कार करते हैं॥ ९॥ रौद्राको नमस्कार है। नित्या, गौरी एवं धात्रीको बारंबार नमस्कार है। ज्योत्स्नामयी, चन्द्ररूपिणी एवं सुखस्वरूपा देवीको सतत प्रणाम है॥ १०॥ शरणागतोंका कल्याण करनेवाली वृद्धि एवं सिद्धिरूपा देवीको हम बारंबार नमस्कार करते हैं। नैर्ऋती (राक्षसोंकी लक्ष्मी), राजाओंकी लक्ष्मी तथा शर्वाणी (शिवपत्नी)-स्वरूपा आप जगदम्बाको बार-बार नमस्कार है॥ ११॥ दुर्गा, दुर्गपारा (दुर्गम संकटसे पार उतारनेवाली), सारा (सबकी सारभूता), सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रादेवीको सर्वदा नमस्कार है॥ १२॥ अत्यन्त सौम्य तथा अत्यन्त रौद्ररूपा देवीको हम नमस्कार करते हैं, उन्हें हमारा बारंबार प्रणाम है। जगत्‌की आधारभूता कृतिदेवीको बारंबार नमस्कार है॥ १३॥ जो देवी सब प्राणियोंमें विष्णुमायाके नामसे कही जाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १४—१६॥

* वृद्ध्यै सिद्ध्यै च प्रणतां देवीं प्रति नमः नतिं कुर्म इत्यन्वयः। यद् वा प्रणमन्तीति प्रणन्तः, तेषां प्रणतामिति षष्ठीबहुवचनान्तं बोध्यम्। इति शान्तनव्यां टीकायां स्पष्टम्, 'प्रणताः' इति पाठान्तरम्।

या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै॥ १७॥ नमस्तस्यै॥ १८॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ १९॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ २०॥ नमस्तस्यै॥ २१॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ २२॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ २३॥ नमस्तस्यै॥ २४॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ २५॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ २६॥ नमस्तस्यै॥ २७॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ २८॥
या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ २९॥ नमस्तस्यै॥ ३०॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ३१॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ३२॥ नमस्तस्यै॥ ३३॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ३४॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ३५॥ नमस्तस्यै॥ ३६॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ३७॥

जो देवी सब प्राणियोंमें चेतना कहलाती हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ १७—१९॥ जो देवी सब प्राणियोंमें बुद्धिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २०—२२॥ जो देवी सब प्राणियोंमें निद्रारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २३—२५॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षुधारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २६—२८॥ जो देवी सब प्राणियोंमें छायारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ २९—३१॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ३२—३४॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तृष्णारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ३५—३७॥

या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ३८॥ नमस्तस्यै॥ ३९॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ४०॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ४१॥ नमस्तस्यै॥ ४२॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ४३॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ४४॥ नमस्तस्यै॥ ४५॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ४६॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ४७॥ नमस्तस्यै॥ ४८॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ४९॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ५०॥ नमस्तस्यै॥ ५१॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ५२॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ५३॥ नमस्तस्यै॥ ५४॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ५५॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ५६॥ नमस्तस्यै॥ ५७॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ५८॥

जो देवी सब प्राणियोंमें क्षान्ति (क्षमा)-रूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ३८—४०॥ जो देवी सब प्राणियोंमें जातिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ४१—४३॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लज्जारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ४४—४६॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ४७—४९॥ जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५०—५२॥ जो देवी सब प्राणियोंमें कान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५३—५५॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लक्ष्मीरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५६—५८॥

या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ५९॥ नमस्तस्यै॥ ६०॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ६१॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ६२॥ नमस्तस्यै॥ ६३॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ६४॥
या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ६५॥ नमस्तस्यै॥ ६६॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ६७॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ६८॥ नमस्तस्यै॥ ६९॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ७०॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ७१॥ नमस्तस्यै॥ ७२॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ७३॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै॥ ७४॥ नमस्तस्यै॥ ७५॥ नमस्तस्यै नमो नमः॥ ७६॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः॥ ७७॥

जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ५९—६१॥ जो देवी सब प्राणियोंमें स्मृतिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ६२—६४॥ जो देवी सब प्राणियोंमें दयारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ६५—६७॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तुष्टिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ६८—७०॥ जो देवी सब प्राणियोंमें मातारूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ७१—७३॥ जो देवी सब प्राणियोंमें भ्रान्तिरूपसे स्थित हैं,उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है॥ ७४—७६॥ जो जीवोंके इन्द्रियवर्गकी अधिष्ठात्री देवी एवं सब प्राणियोंमें सदा व्याप्त रहनेवाली हैं, उन व्याप्तिदेवीको बारंबार नमस्कार है॥ ७७॥

चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद् व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै ॥ ७८ ॥ नमस्तस्यै ॥ ७९ ॥ नमस्तस्यै नमो नमः ॥ ८० ॥
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः ॥ ८१ ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ८२ ॥

ऋषिरुवाच ॥ ८३ ॥

एवं स्तवादियुक्तानां देवानां तत्र पार्वती।
स्नातुमभ्याययौ तोये जाह्नव्या नृपनन्दन ॥ ८४ ॥

जो देवी चैतन्यरूपसे इस सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके स्थित हैं, उनको नमस्कार, उनको नमस्कार, उनको बारंबार नमस्कार है ॥ ७८—८० ॥ पूर्वकालमें अपने अभीष्टकी प्राप्ति होनेसे देवताओंने जिनकी स्तुति की तथा देवराज इन्द्रने बहुत दिनोंतक जिनका सेवन किया, वह कल्याणकी साधनभूता ईश्वरी हमारा कल्याण और मंगल करे तथा सारी आपत्तियोंका नाश कर डाले ॥ ८१ ॥ उद्दण्ड दैत्योंसे सताये हुए हम सभी देवता जिन परमेश्वरीको इस समय नमस्कार करते हैं तथा जो भक्तिसे विनम्र पुरुषोंद्वारा स्मरण की जानेपर तत्काल ही सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश कर देती हैं, वे जगदम्बा हमारा संकट दूर करें ॥ ८२ ॥

ऋषि कहते हैं— ॥ ८३ ॥ राजन्! इस प्रकार जब देवता स्तुति कर रहे थे, उस समय पार्वतीदेवी गंगाजीके जलमें स्नान करनेके लिये वहाँ आयीं ॥ ८४ ॥

साब्रवीत्तान् सुरान् सुभ्रूर्भवद्भिः स्तूयतेऽत्र का।
शरीरकोशतश्चास्याः समुद्भूताब्रवीच्छिवा॥ ८५॥
स्तोत्रं ममैतत् क्रियते शुम्भदैत्यनिराकृतैः।
देवैः समेतैः[१] समरे निशुम्भेन पराजितैः॥ ८६॥
शरीर[२]कोशाद्यत्तस्याः पार्वत्या निःसृताम्बिका।
कौशिकीति[३] समस्तेषु ततो लोकेषु गीयते॥ ८७॥
तस्यां विनिर्गतायां तु कृष्णाभूत्सापि पार्वती।
कालिकेति समाख्याता हिमाचलकृताश्रया॥ ८८॥
ततोऽम्बिकां परं रूपं बिभ्राणां सुमनोहरम्।
ददर्श चण्डो मुण्डश्च भृत्यौ शुम्भनिशुम्भयोः॥ ८९॥
ताभ्यां शुम्भाय चाख्याता अतीव सुमनोहरा।
काप्यास्ते स्त्री महाराज भासयन्ती हिमाचलम्॥ ९०॥

उन सुन्दर भौंहोंवाली भगवतीने देवताओंसे पूछा—'आपलोग यहाँ किसकी स्तुति करते हैं?' तब उन्हींके शरीरकोशसे प्रकट हुई शिवादेवी बोलीं—॥ ८५॥ 'शुम्भ दैत्यसे तिरस्कृत और युद्धमें निशुम्भसे पराजित हो यहाँ एकत्रित हुए ये समस्त देवता यह मेरी ही स्तुति कर रहे हैं'॥ ८६॥ पार्वतीजीके शरीरकोशसे अम्बिकाका प्रादुर्भाव हुआ था, इसलिये वे समस्त लोकोंमें 'कौशिकी' कही जाती हैं॥ ८७॥ कौशिकीके प्रकट होनेके बाद पार्वतीदेवीका शरीर काले रंगका हो गया, अतः वे हिमालयपर रहनेवाली कालिकादेवीके नामसे विख्यात हुईं॥ ८८॥ तदनन्तर शुम्भ-निशुम्भके भृत्य चण्ड-मुण्ड वहाँ आये और उन्होंने परम मनोहर रूप धारण करनेवाली अम्बिकादेवीको देखा॥ ८९॥ फिर वे शुम्भके पास जाकर बोले—'महाराज! एक अत्यन्त मनोहर स्त्री है, जो अपनी दिव्य कान्तिसे हिमालयको प्रकाशित कर रही है॥ ९०॥

१. पा०—समस्तैः। २. पा०—कोषा। ३. पा०—कौषिकी।

नैव तादृक् क्वचिद्रूपं दृष्टं केनचिदुत्तमम्।
ज्ञायतां काप्यसौ देवी गृह्यतां चासुरेश्वर॥ ९१॥
स्त्रीरत्नमतिचार्वङ्गी द्योतयन्ती दिशस्त्विषा।
सा तु तिष्ठति दैत्येन्द्र तां भवान् द्रष्टुमर्हति॥ ९२॥
यानि रत्नानि मणयो गजाश्वादीनि वै प्रभो।
त्रैलोक्ये तु समस्तानि साम्प्रतं भान्ति ते गृहे॥ ९३॥
ऐरावतः समानीतो गजरत्नं पुरन्दरात्।
पारिजाततरुश्चायं तथैवोच्चैःश्रवा हयः॥ ९४॥
विमानं हंससंयुक्तमेतत्तिष्ठति तेऽङ्गणे।
रत्नभूतमिहानीतं यदासीद्वेधसोऽद्भुतम्॥ ९५॥
निधिरेष महापद्मः समानीतो धनेश्वरात्।
किञ्जल्किनीं ददौ चाब्धिर्मालामम्लानपङ्कजाम्॥ ९६॥
छत्रं ते वारुणं गेहे काञ्चनस्रावि तिष्ठति।

वैसा उत्तम रूप कहीं किसीने भी नहीं देखा होगा। असुरेश्वर! पता लगाइये, वह देवी कौन है और उसे ले लीजिये॥ ९१॥ स्त्रियोंमें तो वह रत्न है, उसका प्रत्येक अंग बहुत ही सुन्दर है तथा वह अपने श्रीअंगोंकी प्रभासे सम्पूर्ण दिशाओंमें प्रकाश फैला रही है। दैत्यराज! अभी वह हिमालय-पर ही मौजूद है, आप उसे देख सकते हैं॥ ९२॥ प्रभो! तीनों लोकोंमें मणि, हाथी और घोड़े आदि जितने भी रत्न हैं, वे सब इस समय आपके घरमें शोभा पाते हैं॥ ९३॥ हाथियोंमें रत्नभूत ऐरावत, यह पारिजातका वृक्ष और यह उच्चैःश्रवा घोड़ा—यह सब आपने इन्द्रसे ले लिया है॥ ९४॥ हंसोंसे जुता हुआ यह विमान भी आपके आँगनमें शोभा पाता है। यह रत्नभूत अद्भुत विमान, जो पहले ब्रह्माजीके पास था, अब आपके यहाँ लाया गया है॥ ९५॥ यह महापद्म नामक निधि आप कुबेरसे छीन लाये हैं। समुद्रने भी आपको किंजल्किनी नामकी माला भेंट की है, जो केसरोंसे सुशोभित है और जिसके कमल कभी कुम्हलाते नहीं हैं॥ ९६॥ सुवर्णकी वर्षा करनेवाला

तथायं स्यन्दनवरो यः पुराऽऽसीत्प्रजापतेः॥ ९७ ॥
मृत्योरुत्क्रान्तिदा नाम शक्तिरीश त्वया हृता।
पाशः सलिलराजस्य भ्रातुस्तव परिग्रहे॥ ९८ ॥
निशुम्भस्याब्धिजाताश्च समस्ता रत्नजातयः।
वह्निरपि[1] ददौ तुभ्यमग्निशौचे च वाससी॥ ९९ ॥
एवं दैत्येन्द्र रत्नानि समस्तान्याहृतानि ते।
स्त्रीरत्नमेषा कल्याणी त्वया कस्मान्न गृह्यते॥ १०० ॥

ऋषिरुवाच॥ १०१ ॥

निशम्येति वचः शुम्भः स तदा चण्डमुण्डयोः।
प्रेषयामास सुग्रीवं दूतं देव्या महासुरम्[2]॥ १०२ ॥
इति चेति च वक्तव्या सा गत्वा वचनान्मम।
यथा चाभ्येति सम्प्रीत्या तथा कार्यं त्वया लघु॥ १०३ ॥

वरुणका छत्र भी आपके घरमें शोभा पाता है तथा यह श्रेष्ठ रथ, जो पहले प्रजापतिके अधिकारमें था, अब आपके पास मौजूद है॥ ९७॥ दैत्येश्वर! मृत्युकी उत्क्रान्तिदा नामवाली शक्ति भी आपने छीन ली है तथा वरुणका पाश और समुद्रमें होनेवाले सब प्रकारके रत्न आपके भाई निशुम्भके अधिकारमें हैं। अग्निने भी स्वतः शुद्ध किये हुए दो वस्त्र आपकी सेवामें अर्पित किये हैं॥ ९८–९९॥ दैत्यराज! इस प्रकार सभी रत्न आपने एकत्र कर लिये हैं। फिर जो यह स्त्रियोंमें रत्नरूप कल्याणमयी देवी है, इसे आप क्यों नहीं अपने अधिकारमें कर लेते?'॥ १००॥

ऋषि कहते हैं—॥ १०१॥ चण्ड-मुण्डका यह वचन सुनकर शुम्भने महादैत्य सुग्रीवको दूत बनाकर देवीके पास भेजा और कहा—'तुम मेरी आज्ञासे उसके सामने ये-ये बातें कहना और ऐसा उपाय करना, जिससे प्रसन्न होकर वह शीघ्र ही यहाँ आ जाय'॥ १०२–१०३॥

---

१. पा०—श्चापि। २. पा०—इसके बाद कहीं-कहीं 'शुम्भ उवाच' इतना अधिक पाठ है।

स तत्र गत्वा यत्रास्ते शैलोद्देशेऽतिशोभने।
सा[1] देवी तां ततः प्राह श्लक्ष्णं मधुरया गिरा॥ १०४॥

दूत उवाच॥ १०५॥

देवि दैत्येश्वरः शुम्भस्त्रैलोक्ये परमेश्वरः।
दूतोऽहं प्रेषितस्तेन त्वत्सकाशमिहागतः॥ १०६॥
अव्याहताज्ञः सर्वासु यः सदा देवयोनिषु।
निर्जिताखिलदैत्यारिः स यदाह शृणुष्व तत्॥ १०७॥
मम त्रैलोक्यमखिलं मम देवा वशानुगाः।
यज्ञभागानहं सर्वानुपाश्नामि पृथक् पृथक्॥ १०८॥
त्रैलोक्ये वररत्नानि मम वश्यान्यशेषतः।
तथैव गजरत्नं[2] च हृत्वा[3] देवेन्द्रवाहनम्॥ १०९॥
क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नं ममामरैः।
उच्चैःश्रवससंज्ञं तत्प्रणिपत्य समर्पितम्॥ ११०॥

वह दूत पर्वतके अत्यन्त रमणीय प्रदेशमें, जहाँ देवी मौजूद थीं, गया और मधुर वाणीमें कोमल वचन बोला॥ १०४॥

दूत बोला—॥ १०५॥ देवि! दैत्यराज शुम्भ इस समय तीनों लोकोंके परमेश्वर हैं। मैं उन्हींका भेजा हुआ दूत हूँ और यहाँ तुम्हारे ही पास आया हूँ॥ १०६॥ उनकी आज्ञा सदा सब देवता एक स्वरसे मानते हैं। कोई उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। वे सम्पूर्ण देवताओंको परास्त कर चुके हैं। उन्होंने तुम्हारे लिये जो संदेश दिया है, उसे सुनो— ॥ १०७॥ 'सम्पूर्ण त्रिलोकी मेरे अधिकारमें है। देवता भी मेरी आज्ञाके अधीन चलते हैं। सम्पूर्ण यज्ञोंके भागोंको मैं ही पृथक्-पृथक् भोगता हूँ॥ १०८॥ तीनों लोकोंमें जितने श्रेष्ठ रत्न हैं, वे सब मेरे अधिकारमें हैं। देवराज इन्द्रका वाहन ऐरावत, जो हाथियोंमें रत्नके समान है, मैंने छीन लिया है॥ १०९॥ क्षीरसागरका मन्थन करनेसे जो अश्वरत्न उच्चैःश्रवा प्रकट हुआ था, उसे देवताओंने मेरे पैरोंपर पड़कर समर्पित किया है॥ ११०॥

---

१. पा०—तां च देवीं ततः। २.पा०—गजरत्नानि। ३. पा०—हृतं।

यानि चान्यानि देवेषु गन्धर्वेषूरगेषु च।
रत्नभूतानि भूतानि तानि मय्येव शोभने॥ १११ ॥
स्त्रीरत्नभूतां त्वां देवि लोके मन्यामहे वयम्।
सा त्वमस्मानुपागच्छ यतो रत्नभुजो वयम्॥ ११२ ॥
मां वा ममानुजं वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्।
भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः॥ ११३ ॥
परमैश्वर्यमतुलं प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्।
एतद् बुद्ध्या समालोच्य मत्परिग्रहतां व्रज॥ ११४ ॥

ऋषिरुवाच॥ ११५ ॥

इत्युक्ता सा तदा देवी गम्भीरान्तःस्मिता जगौ।
दुर्गा भगवती भद्रा ययेदं धार्यते जगत्॥ ११६ ॥

देव्युवाच॥ ११७ ॥

सत्यमुक्तं त्वया नात्र मिथ्या किञ्चित्त्वयोदितम्।

सुन्दरी! उनके सिवा और भी जितने रत्नभूत पदार्थ देवताओं, गन्धर्वों और नागोंके पास थे, वे सब मेरे ही पास आ गये हैं॥ १११॥ देवि! हमलोग तुम्हें संसारकी स्त्रियोंमें रत्न मानते हैं, अतः तुम हमारे पास आ जाओ; क्योंकि रत्नोंका उपभोग करनेवाले हम ही हैं॥ ११२॥ चंचल कटाक्षोंवाली सुन्दरी! तुम मेरी या मेरे भाई महापराक्रमी निशुम्भकी सेवामें आ जाओ; क्योंकि तुम रत्नस्वरूपा हो॥ ११३॥ मेरा वरण करनेसे तुम्हें तुलनारहित महान् ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी। अपनी बुद्धिसे यह विचारकर तुम मेरी पत्नी बन जाओ'॥ ११४॥

ऋषि कहते हैं—॥ ११५॥ दूतके यों कहनेपर कल्याणमयी भगवती दुर्गादेवी, जो इस जगत्को धारण करती हैं, मन-ही-मन गम्भीरभावसे मुसकरायीं और इस प्रकार बोलीं—॥ ११६॥

देवीने कहा—॥ ११७॥ दूत! तुमने सत्य कहा है, इसमें तनिक भी मिथ्या

त्रैलोक्याधिपतिः शुम्भो निशुम्भश्चापि तादृशः ॥ ११८ ॥
किं त्वत्र यत्प्रतिज्ञातं मिथ्या तत्क्रियते कथम्।
श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञा या कृता पुरा॥ ११९ ॥
यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्पं व्यपोहति।
यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्ता भविष्यति॥ १२० ॥
तदागच्छतु शुम्भोऽत्र निशुम्भो वा महासुरः।
मां जित्वा किं चिरेणात्र पाणिं गृह्णातु मे लघु॥ १२१ ॥

दूत उवाच॥ १२२॥

अवलिप्तासि मैवं त्वं देवि ब्रूहि ममाग्रतः।
त्रैलोक्ये कः पुमांस्तिष्ठेदग्रे शुम्भनिशुम्भयोः॥ १२३ ॥
अन्येषामपि दैत्यानां सर्वे देवा न वै युधि।
तिष्ठन्ति सम्मुखे देवि किं पुनः स्त्री त्वमेकिका॥ १२४ ॥

नहीं है। शुम्भ तीनों लोकोंका स्वामी है और निशुम्भ भी उसीके समान पराक्रमी है॥ ११८॥ किंतु इस विषयमें मैंने जो प्रतिज्ञा कर ली है, उसे मिथ्या कैसे करूँ? मैंने अपनी अल्पबुद्धिके कारण पहलेसे जो प्रतिज्ञा कर रखी है, उसे सुनो— ॥ ११९ ॥ 'जो मुझे संग्राममें जीत लेगा, जो मेरे अभिमानको चूर्ण कर देगा तथा संसारमें जो मेरे समान बलवान् होगा, वही मेरा स्वामी होगा'॥ १२० ॥ इसलिये शुम्भ अथवा महादैत्य निशुम्भ स्वयं ही यहाँ पधारें और मुझे जीतकर शीघ्र ही मेरा पाणिग्रहण कर लें, इसमें विलम्बकी क्या आवश्यकता है?॥ १२१ ॥

दूत बोला—॥ १२२॥ देवि! तुम घमंडमें भरी हो, मेरे सामने ऐसी बातें न करो। तीनों लोकोंमें कौन ऐसा पुरुष है, जो शुम्भ-निशुम्भके सामने खड़ा हो सके॥ १२३॥ देवि! अन्य दैत्योंके सामने भी सारे देवता युद्धमें नहीं ठहर सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर कैसे ठहर सकती हो॥ १२४॥

इन्द्राद्याः सकला देवास्तस्थुर्येषां न संयुगे।
शुम्भादीनां कथं तेषां स्त्री प्रयास्यसि सम्मुखम्॥ १२५॥
सा त्वं गच्छ मयैवोक्ता पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः।
केशाकर्षणनिर्धूतगौरवा मा गमिष्यसि॥ १२६॥

देव्युवाच॥ १२७॥

एवमेतद् बली शुम्भो निशुम्भश्चातिवीर्यवान्।
किं करोमि प्रतिज्ञा मे यदनालोचिता पुरा॥ १२८॥
स त्वं गच्छ मयोक्तं ते यदेतत्सर्वमादृतः।
तदाचक्ष्वासुरेन्द्राय स च युक्तं करोतु तत्*॥ ॐ॥ १२९॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्या दूतसंवादो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

उवाच ९, त्रिपान्मन्त्राः ६६, श्लोकाः ५४, एवम् १२९, एवमादितः ३८८॥

जिन शुम्भ आदि दैत्योंके सामने इन्द्र आदि सब देवता भी युद्धमें खड़े नहीं हुए, उनके सामने तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी॥ १२५॥ इसलिये तुम मेरे ही कहनेसे शुम्भ-निशुम्भके पास चली चलो। ऐसा करनेसे तुम्हारे गौरवकी रक्षा होगी; अन्यथा जब वे केश पकड़कर घसीटेंगे, तब तुम्हें अपनी प्रतिष्ठा खोकर जाना पड़ेगा॥ १२६॥

देवीने कहा—॥ १२७॥ तुम्हारा कहना ठीक है, शुम्भ बलवान् हैं और निशुम्भ भी बड़े पराक्रमी हैं; किंतु क्या करूँ? मैंने पहले बिना सोचे-समझे प्रतिज्ञा कर ली है॥ १२८॥ अतः अब तुम जाओ; मैंने तुमसे जो कुछ कहा है, वह सब दैत्यराजसे आदरपूर्वक कहना। फिर वे जो उचित जान पड़े, करें॥ १२९॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'देवी-दूत-संवाद' नामक पाँचवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५॥

---

* पा०—यत्।

षष्ठोऽध्यायः

धूम्रलोचन-वध

ध्यानम्

ॐ नागाधीश्वरविष्टरां फणिफणोत्तंसोरुरत्नावली-
भास्वद्देहलतां दिवाकरनिभां नेत्रत्रयोद्भासिताम्।
मालाकुम्भकपालनीरजकरां चन्द्रार्धचूडां परां
सर्वज्ञेश्वरभैरवाङ्कनिलयां पद्मावतीं चिन्तये॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

इत्याकर्ण्य वचो देव्याः स दूतोऽमर्षपूरितः।
समाचष्ट समागम्य दैत्यराजाय विस्तरात्॥ २॥
तस्य दूतस्य तद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट् ततः।
सक्रोधः प्राह दैत्यानामधिपं धूम्रलोचनम्॥ ३॥

मैं सर्वज्ञेश्वर भैरवके अंकमें निवास करनेवाली परमोत्कृष्ट पद्मावतीदेवीका चिन्तन करता हूँ। वे नागराजके आसनपर बैठी हैं, नागोंके फणोंमें सुशोभित होनेवाली मणियोंकी विशाल मालासे उनकी देहलता उद्भासित हो रही है। सूर्यके समान उनका तेज है, तीन नेत्र उनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। वे हाथोंमें माला, कुम्भ, कपाल और कमल लिये हुए हैं तथा उनके मस्तकमें अर्धचन्द्रका मुकुट सुशोभित है।

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ देवीका यह कथन सुनकर दूतको बड़ा अमर्ष हुआ और उसने दैत्यराजके पास जाकर सब समाचार विस्तारपूर्वक कह सुनाया॥ २॥ दूतके उस वचनको सुनकर दैत्यराज कुपित हो उठा और दैत्यसेनापति धूम्रलोचनसे बोला— ॥ ३॥

हे धूम्रलोचनाशु त्वं स्वसैन्यपरिवारितः।
तामानय बलाद् दुष्टां केशाकर्षणविह्वलाम्॥ ४ ॥
तत्परित्राणदः कश्चिद्यदि वोत्तिष्ठतेऽपरः।
स हन्तव्योऽमरो वापि यक्षो गन्धर्व एव वा॥ ५ ॥

ऋषिरुवाच॥ ६॥

तेनाज्ञप्तस्ततः शीघ्रं स दैत्यो धूम्रलोचनः।
वृतः षष्ट्या सहस्राणामसुराणां द्रुतं ययौ॥ ७ ॥
स दृष्ट्वा तां ततो देवीं तुहिनाचलसंस्थिताम्।
जगादोच्चैः प्रयाहीति मूलं शुम्भनिशुम्भयोः॥ ८ ॥
न चेत्प्रीत्याद्य भवती मद्भर्तारमुपैष्यति।
ततो बलान्नयाम्येष केशाकर्षणविह्वलाम्॥ ९ ॥

देव्युवाच॥ १०॥

दैत्येश्वरेण प्रहितो बलवान् बलसंवृतः।
बलान्नयसि मामेवं ततः किं ते करोम्यहम्॥ ११ ॥

'धूम्रलोचन! तुम शीघ्र अपनी सेना साथ लेकर जाओ और उस दुष्टाके केश पकड़कर घसीटते हुए उसे बलपूर्वक यहाँ ले आओ॥ ४॥ उसकी रक्षा करनेके लिये यदि कोई दूसरा खड़ा हो तो वह देवता, यक्ष अथवा गन्धर्व ही क्यों न हो, उसे अवश्य मार डालना'॥ ५॥

ऋषि कहते हैं—॥ ६॥ शुम्भके इस प्रकार आज्ञा देनेपर वह धूम्रलोचन दैत्य साठ हजार असुरोंकी सेनाको साथ लेकर वहाँसे तुरंत चल दिया॥ ७॥ वहाँ पहुँचकर उसने हिमालयपर रहनेवाली देवीको देखा और ललकारकर कहा—'अरी! तू शुम्भ-निशुम्भके पास चल। यदि इस समय प्रसन्नतापूर्वक मेरे स्वामीके समीप नहीं चलेगी तो मैं बलपूर्वक झोंटा पकड़कर घसीटते हुए तुझे ले चलूँगा'॥ ८-९॥

देवी बोलीं—॥ १०॥ तुम्हें दैत्योंके राजाने भेजा है, तुम स्वयं भी बलवान् हो और तुम्हारे साथ विशाल सेना भी है; ऐसी दशामें यदि मुझे बलपूर्वक ले चलोगे तो मैं तुम्हारा क्या कर सकती हूँ?॥ ११॥

ऋषिरुवाच॥ १२॥

इत्युक्तः सोऽभ्यधावत्तामसुरो धूम्रलोचनः।
हुंकारेणैव तं भस्म सा चकाराम्बिका ततः॥ १३॥

अथ क्रुद्धं महासैन्यमसुराणां तथाम्बिका[1]।
ववर्ष सायकैस्तीक्ष्णैस्तथा शक्तिपरश्वधैः॥ १४॥

ततो धुतसटः कोपात्कृत्वा नादं सुभैरवम्।
पपातासुरसेनायां सिंहो देव्याः स्ववाहनः॥ १५॥

कांश्चित् करप्रहारेण दैत्यानास्येन चापरान्।
आक्रम्य[2] चाधरेणान्यान्[3] स जघान[4] महासुरान्॥ १६॥

केषांचित्पाटयामास नखैः कोष्ठानि केसरी[5]।
तथा तलप्रहारेण शिरांसि कृतवान् पृथक्॥ १७॥

ऋषि कहते हैं—॥ १२॥ देवीके यों कहनेपर असुर धूम्रलोचन उनकी ओर दौड़ा, तब अम्बिकाने 'हुं' शब्दके उच्चारणमात्रसे उसे भस्म कर दिया॥ १३॥ फिर तो क्रोधमें भरी हुई दैत्योंकी विशाल सेना और अम्बिकाने एक-दूसरेपर तीखे सायकों, शक्तियों तथा फरसोंकी वर्षा आरम्भ की॥ १४॥ इतनेमें ही देवीका वाहन सिंह क्रोधमें भरकर भयंकर गर्जना करके गर्दनके बालोंको हिलाता हुआ असुरोंकी सेनामें कूद पड़ा॥ १५॥ उसने कुछ दैत्योंको पंजोंकी मारसे, कितनोंको अपने जबड़ोंसे और कितने ही महादैत्योंको पटककर ओठकी दाढ़ोंसे घायल करके मार डाला॥ १६॥ उस सिंहने अपने नखोंसे कितनोंके पेट फाड़ डाले और थप्पड़ मारकर कितनोंके सिर धड़से अलग कर दिये॥ १७॥

१. पा०—तथाम्बिकाम्। २.पा०—आक्रान्त्या। ३. चरणेनान्यान्। ४. यहाँ तीन तरहके पाठान्तर मिलते हैं—संजघान, निजघान, जघान सुमहा०। ५. पा०—केशरी। बंगला प्रतिमें सब जगह 'केसरी' और केसर शब्दमें तालव्य 'श' का प्रयोग है।

विच्छिन्नबाहुशिरसः कृतास्तेन तथापरे।
पपौ च रुधिरं कोष्ठादन्येषां धुतकेसरः॥ १८॥
क्षणेन तद्बलं सर्वं क्षयं नीतं महात्मना।
तेन केसरिणा देव्या वाहनेनातिकोपिना॥ १९॥
श्रुत्वा तमसुरं देव्या निहतं धूम्रलोचनम्।
बलं च क्षयितं कृत्स्नं देवीकेसरिणा ततः॥ २०॥
चुकोप दैत्याधिपतिः शुम्भः प्रस्फुरिताधरः।
आज्ञापयामास च तौ चण्डमुण्डौ महासुरौ॥ २१॥
हे चण्ड हे मुण्ड बलैर्बहुभिः* परिवारितौ।
तत्र गच्छत गत्वा च सा समानीयतां लघु॥ २२॥
केशेष्वाकृष्य बद्ध्वा वा यदि वः संशयो युधि।
तदाशेषायुधैः सर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम्॥ २३॥

कितनोंकी भुजाएँ और मस्तक काट डाले तथा अपनी गर्दनके बाल हिलाते हुए उसने दूसरे दैत्योंके पेट फाड़कर उनका रक्त चूस लिया॥ १८॥ अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए देवीके वाहन उस महाबली सिंहने क्षणभरमें ही असुरोंकी सारी सेनाका संहार कर डाला॥ १९॥

शुम्भने जब सुना कि देवीने धूम्रलोचन असुरको मार डाला तथा उसके सिंहने सारी सेनाका सफाया कर डाला, तब उस दैत्यराजको बड़ा क्रोध हुआ। उसका ओठ काँपने लगा। उसने चण्ड और मुण्ड नामक दो महादैत्योंको आज्ञा दी— ॥ २०-२१॥ 'हे चण्ड! और हे मुण्ड! तुमलोग बहुत बड़ी सेना लेकर वहाँ जाओ, उस देवीके झोंटे पकड़कर अथवा उसे बाँधकर शीघ्र यहाँ ले आओ। यदि इस प्रकार उसको लानेमें संदेह हो तो युद्धमें सब प्रकारके अस्त्र-शस्त्रों तथा समस्त आसुरी सेनाका प्रयोग करके उसकी हत्या कर डालना॥ २२-२३॥

* पा०— लैः।

तस्यां हतायां दुष्टायां सिंहे च विनिपातिते।
शीघ्रमागम्यतां बद्ध्वा गृहीत्वा तामथाम्बिकाम्॥ॐ॥ २४ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
शुम्भनिशुम्भसेनानीधूम्रलोचनवधो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६ ॥
उवाच ४, श्लोकाः २०, एवम् २४,
एवमादितः ४१२॥

उस दुष्टाकी हत्या होने तथा सिंहके भी मारे जानेपर उस अम्बिकाको बाँधकर साथ ले शीघ्र ही लौट आना'॥ २४॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी
कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'धूम्रलोचन-वध'
नामक छठा अध्याय पूरा हुआ॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

चण्ड और मुण्डका वध

ध्यानम्

ॐ ध्यायेयं रत्नपीठे शुककलपठितं शृण्वतीं श्यामलाङ्गीं
न्यस्तैकाङ्घ्रिं सरोजे शशिशकलधरां वल्लकीं वादयन्तीम्।
कह्लाराबद्धमालां नियमितविलसच्चोलिकां रक्तवस्त्रां
मातङ्गीं शङ्खपात्रां मधुरमधुमदां चित्रकोद्भासिभालाम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

आज्ञप्तास्ते ततो दैत्याश्चण्डमुण्डपुरोगमाः।
चतुरङ्गबलोपेता ययुरभ्युद्यतायुधाः॥ २॥
ददृशुस्ते ततो देवीमीषद्धासां व्यवस्थिताम्।
सिंहस्योपरि शैलेन्द्रशृङ्गे महति काञ्चने॥ ३॥

मैं मातंगीदेवीका ध्यान करता हूँ। वे रत्नमय सिंहासनपर बैठकर पढ़ते हुए तोतेका मधुर शब्द सुन रही हैं। उनके शरीरका वर्ण श्याम है। वे अपना एक पैर कमलपर रखे हुए हैं और मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करती हैं तथा कह्लार-पुष्पोंकी माला धारण किये वीणा बजाती हैं। उनके अंगमें कसी हुई चोली शोभा पा रही है। वे लाल रंगकी साड़ी पहने हाथमें शंखमय पात्र लिये हुए हैं। उनके वदनपर मधुका हलका-हलका प्रभाव जान पड़ता है और ललाटमें बेंदी शोभा दे रही है।

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ तदनन्तर शुम्भकी आज्ञा पाकर वे चण्ड-मुण्ड आदि दैत्य चतुरंगिणी सेनाके साथ अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित हो चल दिये॥ २॥ फिर गिरिराज हिमालयके सुवर्णमय ऊँचे शिखरपर पहुँचकर उन्होंने सिंहपर बैठी देवीको देखा। वे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं॥ ३॥

ते दृष्ट्वा तां समादातुमुद्यमं चक्रुरुद्यताः।
आकृष्टचापासिधरास्तथान्ये तत्समीपगाः॥ ४॥
ततः कोपं चकारोच्चैरम्बिका तानरीन् प्रति।
कोपेन चास्या वदनं मषी*वर्णमभूत्तदा॥ ५॥
भ्रुकुटीकुटिलात्तस्या ललाटफलकाद्द्रुतम्।
काली करालवदना विनिष्क्रान्तासिपाशिनी॥ ६॥
विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा।
द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा॥ ७॥
अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा।
निमग्नारक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा॥ ८॥
सा वेगेनाभिपतिता घातयन्ती महासुरान्।
सैन्ये तत्र सुरारीणामभक्षयत तद्बलम्॥ ९॥

उन्हें देखकर दैत्यलोग तत्परतासे पकड़नेका उद्योग करने लगे। किसीने धनुष तान लिया, किसीने तलवार सँभाली और कुछ लोग देवीके पास आकर खड़े हो गये॥ ४॥ तब अम्बिकाने उन शत्रुओंके प्रति बड़ा क्रोध किया। उस समय क्रोधके कारण उनका मुख काला पड़ गया॥ ५॥ ललाटमें भौंहें टेढ़ी हो गयीं और वहाँसे तुरंत विकरालमुखी काली प्रकट हुईं, जो तलवार और पाश लिये हुए थीं॥ ६॥ वे विचित्र खट्वांग धारण किये और चीतेके चर्मकी साड़ी पहने नर-मुण्डोंकी मालासे विभूषित थीं। उनके शरीरका मांस सूख गया था, केवल हड्डियोंका ढाँचा था, जिससे वे अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थीं॥ ७॥ उनका मुख बहुत विशाल था, जीभ लपलपानेके कारण वे और भी डरावनी प्रतीत होती थीं। उनकी आँखें भीतरको धँसी हुई और कुछ लाल थीं, वे अपनी भयंकर गर्जनासे सम्पूर्ण दिशाओंको गुँजा रही थीं॥ ८॥ बड़े-बड़े दैत्योंका वध करती हुई वे कालिकादेवी बड़े वेगसे दैत्योंकी उस सेनापर टूट पड़ीं और उन सबको भक्षण करने लगीं॥ ९॥

* पा०— मसी०।

पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान् ।
समादायैकहस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्॥ १० ॥
तथैव योधं तुरगै रथं सारथिना सह।
निक्षिप्य वक्त्रे दशनैश्चर्वयन्त्य[1]तिभैरवम्॥ ११ ॥
एकं जग्राह केशेषु ग्रीवायामथ चापरम्।
पादेनाक्रम्य चैवान्यमुरसान्यमपोथयत्॥ १२ ॥
तैर्मुक्तानि च शस्त्राणि महास्त्राणि तथासुरैः।
मुखेन जग्राह रुषा दशनैर्मथितान्यपि॥ १३ ॥
बलिनां तद् बलं सर्वमसुराणां दुरात्मनाम्।
ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥ १४ ॥
असिना निहताः केचित्केचित्खट्वाङ्गताडिताः[2]।
जग्मुर्विनाशमसुरा दन्ताग्राभिहतास्तथा॥ १५ ॥

वे पार्श्वरक्षकों, अंकुशधारी महावतों, योद्धाओं और घण्टासहित कितने ही हाथियोंको एक ही हाथसे पकड़कर मुँहमें डाल लेती थीं॥ १० ॥ इसी प्रकार घोड़े, रथ और सारथिके साथ रथी सैनिकोंको मुँहमें डालकर वे उन्हें बड़े भयानक रूपसे चबा डालती थीं॥ ११ ॥ किसीके बाल पकड़ लेतीं, किसीका गला दबा देतीं, किसीको पैरोंसे कुचल डालतीं और किसीको छातीके धक्केसे गिराकर मार डालती थीं॥ १२ ॥ वे असुरोंके छोड़े हुए बड़े-बड़े अस्त्र-शस्त्र मुँहसे पकड़ लेतीं और रोषमें भरकर उनको दाँतोंसे पीस डालती थीं॥ १३ ॥ कालीने बलवान् एवं दुरात्मा दैत्योंकी वह सारी सेना रौंद डाली, खा डाली और कितनोंको मार भगाया॥ १४॥ कोई तलवारके घाट उतारे गये, कोई खट्वांगसे पीटे गये और कितने ही असुर दाँतोंके अग्रभागसे कुचले जाकर मृत्युको प्राप्त हुए॥ १५॥

१. पा०—यत्यति। २. पा०—ता रणे।

क्षणेन तद् बलं सर्वमसुराणां निपातितम्।
दृष्ट्वा चण्डोऽभिदुद्राव तां कालीमतिभीषणाम्॥ १६॥
शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षीं तां महासुरः।
छादयामास चक्रैश्च मुण्डः क्षिप्तैः सहस्त्रशः॥ १७॥
तानि चक्राण्यनेकानि विशमानानि तन्मुखम्।
बभुर्यथार्कबिम्बानि सुबहूनि घनोदरम्॥ १८॥
ततो जहासातिरुषा भीमं भैरवनादिनी।
कालीकरालवक्त्रान्तर्दुर्दर्शदशनोज्ज्वला॥ १९॥
उत्थाय च महासिं हं देवी चण्डमधावत।
गृहीत्वा चास्य केशेषु शिरस्तेनासिनाच्छिनत्*॥ २०॥

इस प्रकार देवीने असुरोंकी उस सारी सेनाको क्षणभरमें मार गिराया। यह देख चण्ड उन अत्यन्त भयानक कालीदेवीकी ओर दौड़ा॥ १६॥ तथा महादैत्य मुण्डने भी अत्यन्त भयंकर बाणोंकी वर्षासे तथा हजारों बार चलाये हुए चक्रोंसे उन भयानक नेत्रोंवाली देवीको आच्छादित कर दिया॥ १७॥ वे अनेकों चक्र देवीके मुखमें समाते हुए ऐसे जान पड़े, मानो सूर्यके बहुतेरे मण्डल बादलोंके उदरमें प्रवेश कर रहे हों॥ १८॥ तब भयंकर गर्जना करनेवाली कालीने अत्यन्त रोषमें भरकर विकट अट्टहास किया। उस समय उनके विकराल वदनके भीतर कठिनतासे देखे जा सकनेवाले दाँतोंकी प्रभासे वे अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देती थीं॥ १९॥ देवीने बहुत बड़ी तलवार हाथमें ले '**हं**' का उच्चारण करके चण्डपर धावा किया और उसके केश पकड़कर उसी तलवारसे उसका मस्तक काट डाला॥ २०॥

* शान्तनवी टीकाकारने यहाँ एक श्लोक अधिक पाठ माना है, जो इस प्रकार है—
'छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रश्चक्रे नादं सुभैरवम्।
तेन नादेन महता त्रासितं भुवनत्रयम्॥'

अथ मुण्डोऽभ्यधावत्तां दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
तमप्यपातयद्भूमौ सा खड्गाभिहतं रुषा॥ २१॥

हतशेषं ततः सैन्यं दृष्ट्वा चण्डं निपातितम्।
मुण्डं च सुमहावीर्यं दिशो भेजे भयातुरम्॥ २२॥

शिरश्चण्डस्य काली च गृहीत्वा मुण्डमेव च।
प्राह प्रचण्डाट्टहासमिश्रमभ्येत्य चण्डिकाम्॥ २३॥

मया तवात्रोपहृतौ चण्डमुण्डौ महापशू।
युद्धयज्ञे स्वयं शुम्भं निशुम्भं च हनिष्यसि॥ २४॥

ऋषिरुवाच॥ २५॥

तावानीतौ ततो दृष्ट्वा चण्डमुण्डौ महासुरौ।
उवाच कालीं कल्याणी ललितं चण्डिका वचः॥ २६॥

चण्डको मारा गया देखकर मुण्ड भी देवीकी ओर दौड़ा। तब देवीने रोषमें भरकर उसे भी तलवारसे घायल करके धरतीपर सुला दिया॥ २१॥ महापराक्रमी चण्ड और मुण्डको मारा गया देख मरनेसे बची हुई बाकी सेना भयसे व्याकुल हो चारों ओर भाग गयी॥ २२॥ तदनन्तर कालीने चण्ड और मुण्डका मस्तक हाथमें ले चण्डिकाके पास जाकर प्रचण्ड अट्टहास करते हुए कहा— ॥ २३॥ 'देवि! मैंने चण्ड और मुण्ड नामक इन दो महापशुओंको तुम्हें भेंट किया है। अब युद्धयज्ञमें तुम शुम्भ और निशुम्भका स्वयं ही वध करना'॥ २४॥

ऋषि कहते हैं—॥ २५॥ वहाँ लाये हुए उन चण्ड-मुण्ड नामक महादैत्योंको देखकर कल्याणमयी चण्डीने कालीसे मधुर वाणीमें कहा— ॥ २६॥

यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि॥ ॐ॥ २७॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
चण्डमुण्डवधो नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥
उवाच २, श्लोकाः २५, एवम् २७,
एवमादितः ४३९॥

'देवि! तुम चण्ड और मुण्डको लेकर मेरे पास आयी हो, इसलिये संसारमें चामुण्डाके नामसे तुम्हारी ख्याति होगी'॥ २७॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके
अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'चण्ड-मुण्ड-वध' नामक
सातवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः

रक्तबीज-वध

ध्यानम्

ॐ अरुणां करुणातरङ्गिताक्षीं
धृतपाशाङ्कुशबाणचापहस्ताम्।
अणिमादिभिरावृतां मयूखै-
रहमित्येव विभावये भवानीम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

चण्डे च निहते दैत्ये मुण्डे च विनिपातिते।
बहुलेषु च सैन्येषु क्षयितेष्वसुरेश्वरः॥ २॥
ततः कोपपराधीनचेताः शुम्भः प्रतापवान्।
उद्योगं सर्वसैन्यानां दैत्यानामादिदेश ह॥ ३॥
अद्य सर्वबलैर्दैत्याः षडशीतिरुदायुधाः।
कम्बूनां चतुरशीतिर्निर्यान्तु स्वबलैर्वृताः॥ ४॥

मैं अणिमा आदि सिद्धिमयी किरणोंसे आवृत भवानीका ध्यान करता हूँ। उनके शरीरका रंग लाल है, नेत्रोंमें करुणा लहरा रही है तथा हाथोंमें पाश, अंकुश, बाण और धनुष शोभा पाते हैं।

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ चण्ड और मुण्ड नामक दैत्योंके मारे जाने तथा बहुत-सी सेनाका संहार हो जानेपर दैत्योंके राजा प्रतापी शुम्भके मनमें बड़ा क्रोध हुआ और उसने दैत्योंकी सम्पूर्ण सेनाको युद्धके लिये कूच करनेकी आज्ञा दी॥ २-३॥ वह बोला—'आज उदायुध नामके छियासी दैत्य-सेनापति अपनी सेनाओंके साथ युद्धके लिये प्रस्थान करें। कम्बु नामवाले दैत्योंके चौरासी सेनानायक अपनी वाहिनीसे घिरे हुए यात्रा करें॥ ४॥

कोटिवीर्याणि पञ्चाशदसुराणां कुलानि वै।
शतं कुलानि धौम्राणां निर्गच्छन्तु ममाज्ञया॥ ५ ॥
कालका दौर्हृदा मौर्याः कालकेयास्तथासुराः।
युद्धाय सज्जा निर्यान्तु आज्ञया त्वरिता मम॥ ६ ॥
इत्याज्ञाप्यासुरपतिः शुम्भो भैरवशासनः।
निर्जगाम महासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः॥ ७ ॥
आयान्तं चण्डिका दृष्ट्वा तत्सैन्यमतिभीषणम्।
ज्यास्वनैः पूरयामास धरणीगगनान्तरम्॥ ८ ॥
ततः[1] सिंहो महानादमतीव कृतवान् नृप।
घण्टास्वनेन तन्नादमम्बिका[2] चोपबृंहयत्॥ ९ ॥
धनुर्ज्यासिंहघण्टानां नादापूरितदिङ्मुखा।
निनादैर्भीषणैः काली जिग्ये विस्तारितानना॥ १० ॥

पचास कोटिवीर्य-कुलके और सौ धौम्र-कुलके असुरसेनापति मेरी आज्ञासे सेनासहित कूच करें॥ ५॥ कालक, दौर्हृद, मौर्य और कालकेय असुर भी युद्धके लिये तैयार हो मेरी आज्ञासे तुरंत प्रस्थान करें'॥ ६॥ भयानक शासन करनेवाला असुरराज शुम्भ इस प्रकार आज्ञा दे सहस्रों बड़ी-बड़ी सेनाओंके साथ युद्धके लिये प्रस्थित हुआ॥ ७॥ उसकी अत्यन्त भयंकर सेना आती देख चण्डिकाने अपने धनुषकी टंकारसे पृथ्वी और आकाशके बीचका भाग गुँजा दिया॥ ८॥ राजन्! तदनन्तर देवीके सिंहने भी बड़े जोर-जोरसे दहाड़ना आरम्भ किया, फिर अम्बिकाने घण्टेके शब्दसे उस ध्वनिको और भी बढ़ा दिया॥ ९॥ धनुषकी टंकार, सिंहकी दहाड़ और घण्टेकी ध्वनिसे सम्पूर्ण दिशाएँ गूँज उठीं। उस भयंकर शब्दसे कालीने अपने विकराल मुखको और भी बढ़ा लिया तथा इस प्रकार वे विजयिनी हुईं॥ १०॥

१. पा०—स च। २. पा०—तान्नादानम्बिका।

तं निनादमुपश्रुत्य दैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम्।
देवी सिंहस्तथा काली सरोषैः परिवारिताः॥ ११॥
एतस्मिन्नन्तरे भूप विनाशाय सुरद्विषाम्।
भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः॥ १२॥
ब्रह्मेशगुहविष्णूनां तथेन्द्रस्य च शक्तयः।
शरीरेभ्यो विनिष्क्रम्य तद्रूपैश्चण्डिकां ययुः॥ १३॥
यस्य देवस्य यद्रूपं यथाभूषणवाहनम्।
तद्वदेव हि तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ॥ १४॥
हंसयुक्तविमानाग्रे साक्षसूत्रकमण्डलुः।
आयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते॥ १५॥
माहेश्वरी वृषारूढा त्रिशूलवरधारिणी।
महाहिवलया प्राप्ता चन्द्ररेखाविभूषणा॥ १६॥

उस तुमुल नादको सुनकर दैत्योंकी सेनाओंने चारों ओरसे आकर चण्डिकादेवी, सिंह तथा कालीदेवीको क्रोधपूर्वक घेर लिया॥ ११॥ राजन्! इसी बीचमें असुरोंके विनाश तथा देवताओंके अभ्युदयके लिये ब्रह्मा, शिव, कार्तिकेय, विष्णु तथा इन्द्र आदि देवोंकी शक्तियाँ, जो अत्यन्त पराक्रम और बलसे सम्पन्न थीं, उनके शरीरोंसे निकलकर उन्हींके रूपमें चण्डिकादेवीके पास गयीं॥ १२-१३॥ जिस देवताका जैसा रूप, जैसी वेश-भूषा और जैसा वाहन है, ठीक वैसे ही साधनोंसे सम्पन्न हो उसकी शक्ति असुरोंसे युद्ध करनेके लिये आयी॥ १४॥ सबसे पहले हंसयुक्त विमानपर बैठी हुई अक्षसूत्र और कमण्डलुसे सुशोभित ब्रह्माजीकी शक्ति उपस्थित हुई, जिसे 'ब्रह्माणी' कहते हैं॥ १५॥ महादेवजीकी शक्ति वृषभपर आरूढ़ हो हाथोंमें श्रेष्ठ त्रिशूल धारण किये महानागका कंकण पहने, मस्तकमें चन्द्ररेखासे विभूषित हो वहाँ आ पहुँची॥ १६॥

कौमारी शक्तिहस्ता च मयूरवरवाहना।
योद्धुमभ्याययौ दैत्यानम्बिका गुहरूपिणी॥ १७॥
तथैव वैष्णवी शक्तिर्गरुडोपरि संस्थिता।
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ॥ १८॥
यज्ञवाराहमतुलं[1] रूपं या बिभ्रतो[2] हरेः।
शक्तिः साप्याययौ तत्र वाराहीं बिभ्रती तनुम्॥ १९॥
नारसिंही नृसिंहस्य बिभ्रती सदृशं वपुः।
प्राप्ता तत्र सटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः॥ २०॥
वज्रहस्ता तथैवैन्द्री गजराजोपरि स्थिता।
प्राप्ता सहस्रनयना यथा शक्रस्तथैव सा॥ २१॥
ततः परिवृतस्ताभिरीशानो देवशक्तिभिः।
हन्यन्तामसुराः शीघ्रं मम प्रीत्याऽऽह चण्डिकाम्॥ २२॥

कार्तिकेयजीकी शक्तिरूपा जगदम्बिका उन्हींका रूप धारण किये श्रेष्ठ मयूरपर आरूढ़ हो हाथमें शक्ति लिये दैत्योंसे युद्ध करनेके लिये आयीं॥ १७॥ इसी प्रकार भगवान् विष्णुकी शक्ति गरुड़पर विराजमान हो शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्गधनुष तथा खड्ग हाथमें लिये वहाँ आयी॥ १८॥ अनुपम यज्ञवाराहका रूप धारण करनेवाले श्रीहरिकी जो शक्ति है, वह भी वाराह-शरीर धारण करके वहाँ उपस्थित हुई॥ १९॥ नारसिंही शक्ति भी नृसिंहके समान शरीर धारण करके वहाँ आयी। उसकी गर्दनके बालोंके झटकेसे आकाशके तारे बिखरे पड़ते थे॥ २०॥ इसी प्रकार इन्द्रकी शक्ति वज्र हाथमें लिये गजराज ऐरावतपर बैठकर आयी। उसके भी सहस्र नेत्र थे। इन्द्रका जैसा रूप है, वैसा ही उसका भी था॥ २१॥

तदनन्तर उन देव-शक्तियोंसे घिरे हुए महादेवजीने चण्डिकासे कहा—'मेरी प्रसन्नताके लिये तुम शीघ्र ही इन असुरोंका संहार करो'॥ २२॥

१. पा०—जज्ञे वाराह०। २. पा०—ती।

ततो देवीशरीरात्तु विनिष्क्रान्तातिभीषणा।
चण्डिकाशक्तिरत्युग्रा शिवाशतनिनादिनी॥ २३॥
सा चाह धूम्रजटिलमीशानमपराजिता।
दूत त्वं गच्छ भगवन् पार्श्वं शुम्भनिशुम्भयोः॥ २४॥
ब्रूहि शुम्भं निशुम्भं च दानवावतिगर्वितौ।
ये चान्ये दानवास्तत्र युद्धाय समुपस्थिताः॥ २५॥
त्रैलोक्यमिन्द्रो लभतां देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ॥ २६॥
बलावलेपादथ चेद्भवन्तो युद्धकाङ्क्षिणः।
तदागच्छत तृप्यन्तु मच्छिवाः पिशितेन वः॥ २७॥
यतो नियुक्तो दौत्येन तया देव्या शिवः स्वयम्।
शिवदूतीति लोकेऽस्मिंस्ततः सा ख्यातिमागता॥ २८॥
तेऽपि श्रुत्वा वचो देव्याः शर्वाख्यातं महासुराः।

तब देवीके शरीरसे अत्यन्त भयानक और परम उग्र चण्डिका-शक्ति प्रकट हुई। जो सैकड़ों गीदड़ियोंकी भाँति आवाज करनेवाली थी॥ २३॥ उस अपराजिता देवीने धूमिल जटावाले महादेवजीसे कहा—भगवन्! आप शुम्भ-निशुम्भके पास दूत बनकर जाइये॥ २४॥ और उन अत्यन्त गर्वीले दानव शुम्भ एवं निशुम्भ दोनोंसे कहिये। साथ ही उनके अतिरिक्त भी जो दानव युद्धके लिये वहाँ उपस्थित हों उनको भी यह संदेश दीजिये— ॥ २५॥ 'दैत्यो! यदि तुम जीवित रहना चाहते हो तो पातालको लौट जाओ। इन्द्रको त्रिलोकीका राज्य मिल जाय और देवता यज्ञभागका उपभोग करें॥ २६॥ यदि बलके घमंडमें आकर तुम युद्धकी अभिलाषा रखते हो तो आओ। मेरी शिवाएँ (योगिनियाँ) तुम्हारे कच्चे मांससे तृप्त हों'॥ २७॥ चूँकि उस देवीने भगवान् शिवको दूतके कार्यमें नियुक्त किया था, इसलिये वह 'शिवदूती' के नामसे संसारमें विख्यात हुई॥ २८॥ वे महादैत्य भी भगवान् शिवके

अमर्षापूरिता जग्मुर्यत्र* कात्यायनी स्थिता॥ २९॥
ततः प्रथममेवाग्रे शरशक्त्यृष्टिवृष्टिभिः।
ववर्षुरुद्धतामर्षास्तां देवीममरारयः॥ ३०॥
सा च तान् प्रहितान् बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान्।
चिच्छेद लीलयाऽऽध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः॥ ३१॥
तस्याग्रतस्तथा काली शूलपातविदारितान्।
खट्वाङ्गपोथितांश्चारीन् कुर्वती व्यचरत्तदा॥ ३२॥
कमण्डलुजलाक्षेपहतवीर्यान् हतौजसः।
ब्रह्माणी चाकरोच्छत्रून् येन येन स्म धावति॥ ३३॥
माहेश्वरी त्रिशूलेन तथा चक्रेण वैष्णवी।
दैत्याञ्जघान कौमारी तथा शक्त्यातिकोपना॥ ३४॥
ऐन्द्रीकुलिशपातेन शतशो दैत्यदानवाः।
पेतुर्विदारिताः पृथ्व्यां रुधिरौघप्रवर्षिणः॥ ३५॥

मुँहसे देवीके वचन सुनकर क्रोधमें भर गये और जहाँ कात्यायनी विराजमान थीं, उस ओर बढ़े॥ २९॥ तदनन्तर वे दैत्य अमर्षमें भरकर पहले ही देवीके ऊपर बाण, शक्ति और ऋष्टि आदि अस्त्रोंकी वृष्टि करने लगे॥ ३०॥ तब देवीने भी खेल-खेलमें ही धनुषकी टंकार की और उससे छोड़े हुए बड़े-बड़े बाणोंद्वारा दैत्योंके चलाये हुए बाण, शूल, शक्ति और फरसोंको काट डाला॥ ३१॥ फिर काली उनके आगे होकर शत्रुओंको शूलके प्रहारसे विदीर्ण करने लगी और खट्वांगसे उनका कचूमर निकालती हुई रणभूमिमें विचरने लगी॥ ३२॥ ब्रह्माणी भी जिस-जिस ओर दौड़ती, उसी-उसी ओर अपने कमण्डलुका जल छिड़ककर शत्रुओंके ओज और पराक्रमको नष्ट कर देती थी॥ ३३॥ माहेश्वरीने त्रिशूलसे तथा वैष्णवीने चक्रसे और अत्यन्त क्रोधमें भरी हुई कुमार कार्तिकेयकी शक्तिने शक्तिसे दैत्योंका संहार आरम्भ किया॥ ३४॥ इन्द्रशक्तिके वज्रप्रहारसे विदीर्ण हो सैकड़ों दैत्य-दानव रक्तकी धारा बहाते हुए पृथ्वीपर सो गये॥ ३५॥

* पा०— जग्मुर्यतः।

तुण्डप्रहारविध्वस्ता दंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः।
वाराहमूर्त्या न्यपतंश्चक्रेण च विदारिताः॥ ३६॥
नखैर्विदारितांश्चान्यान् भक्षयन्ती महासुरान्।
नारसिंही चचाराजौ नादापूर्णदिगम्बरा॥ ३७॥
चण्डाट्टहासैरसुराः शिवदूत्यभिदूषिताः।
पेतुः पृथिव्यां पतितांस्तांश्चखादाथ सा तदा॥ ३८॥
इति मातृगणं क्रुद्धं मर्दयन्तं महासुरान्।
दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः॥ ३९॥
पलायनपरान् दृष्ट्वा दैत्यान् मातृगणार्दितान्।
योद्धुमभ्याययौ क्रुद्धो रक्तबीजो महासुरः॥ ४०॥
रक्तबिन्दुर्यदा भूमौ पतत्यस्य शरीरतः।
समुत्पतति मेदिन्यां* तत्प्रमाणस्तदासुरः॥ ४१॥

वाराही शक्तिने कितनोंको अपनी थूथुनकी मारसे नष्ट किया, दाढ़ोंके अग्रभागसे कितनोंकी छाती छेद डाली तथा कितने ही दैत्य उसके चक्रकी चोटसे विदीर्ण होकर गिर पड़े॥ ३६॥ नारसिंही भी दूसरे-दूसरे महादैत्योंको अपने नखोंसे विदीर्ण करके खाती और सिंहनादसे दिशाओं एवं आकाशको गुँजाती हुई युद्धक्षेत्रमें विचरने लगी॥ ३७॥ कितने ही असुर शिवदूतीके प्रचण्ड अट्टहाससे अत्यन्त भयभीत हो पृथ्वीपर गिर पड़े और गिरनेपर उन्हें शिवदूतीने उस समय अपना ग्रास बना लिया॥ ३८॥

इस प्रकार क्रोधमें भरे हुए मातृगणोंको नाना प्रकारके उपायोंसे बड़े-बड़े असुरोंका मर्दन करते देख दैत्यसैनिक भाग खड़े हुए॥ ३९॥ मातृगणोंसे पीड़ित दैत्योंको युद्धसे भागते देख रक्तबीज नामक महादैत्य क्रोधमें भरकर युद्ध करनेके लिये आया॥ ४०॥ उसके शरीरसे जब रक्तकी बूँद पृथ्वीपर गिरती, तब उसीके समान शक्तिशाली एक दूसरा महादैत्य पृथ्वीपर पैदा हो जाता॥ ४१॥

* पा०—न्यास्त०।

युयुधे स गदापाणिरिन्द्रशक्त्या महासुरः।
ततश्चैन्द्री स्ववज्रेण रक्तबीजमताडयत्॥ ४२॥
कुलिशेनाहतस्याशु बहु* सुस्राव शोणितम्।
समुत्तस्थुस्ततो योधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः॥ ४३॥
यावन्तः पतितास्तस्य शरीराद्रक्तबिन्दवः।
तावन्तः पुरुषा जातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः॥ ४४॥
ते चापि युयुधुस्तत्र पुरुषा रक्तसम्भवाः।
समं मातृभिरत्युग्रशस्त्रपातातिभीषणम्॥ ४५॥
पुनश्च वज्रपातेन क्षतमस्य शिरो यदा।
ववाह रक्तं पुरुषास्ततो जाताः सहस्रशः॥ ४६॥
वैष्णवी समरे चैनं चक्रेणाभिजघान ह।
गदया ताडयामास ऐन्द्री तमसुरेश्वरम्॥ ४७॥

महासुर रक्तबीज हाथमें गदा लेकर इन्द्रशक्तिके साथ युद्ध करने लगा। तब ऐन्द्रीने अपने वज्रसे रक्तबीजको मारा॥ ४२॥ वज्रसे घायल होनेपर उसके शरीरसे बहुत-सा रक्त चूने लगा और उससे उसीके समान रूप तथा पराक्रमवाले योद्धा उत्पन्न होने लगे॥ ४३॥ उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदें गिरीं, उतने ही पुरुष उत्पन्न हो गये। वे सब रक्तबीजके समान ही वीर्यवान्, बलवान् तथा पराक्रमी थे॥ ४४॥ वे रक्तसे उत्पन्न होनेवाले पुरुष भी अत्यन्त भयंकर अस्त्र-शस्त्रोंका प्रहार करते हुए वहाँ मातृगणोंके साथ घोर युद्ध करने लगे॥ ४५॥ पुनः वज्रके प्रहारसे जब उसका मस्तक घायल हुआ, तब रक्त बहने लगा और उससे हजारों पुरुष उत्पन्न हो गये॥ ४६॥ वैष्णवीने युद्धमें रक्तबीजपर चक्रका प्रहार किया तथा ऐन्द्रीने उस दैत्यसेनापतिको गदासे चोट पहुँचायी॥ ४७॥

* पा०— तस्य।

वैष्णवीचक्रभिन्नस्य रुधिरस्त्रावसम्भवैः।
सहस्त्रशो जगद्व्याप्तं तत्प्रमाणैर्महासुरैः॥ ४८॥
शक्त्या जघान कौमारी वाराही च तथासिना।
माहेश्वरी त्रिशूलेन रक्तबीजं महासुरम्॥ ४९॥
स चापि गदया दैत्यः सर्वा एवाहनत् पृथक्।
मातॄः कोपसमाविष्टो रक्तबीजो महासुरः॥ ५०॥
तस्याहतस्य बहुधा शक्तिशूलादिभिर्भुवि।
पपात यो वै रक्तौघस्तेनासञ्छतशोऽसुराः॥ ५१॥
तैश्चासुरासृक्सम्भूतैरसुरैः सकलं जगत्।
व्याप्तमासीत्ततो देवा भयमाजग्मुरुत्तमम्॥ ५२॥
तान् विषण्णान् सुरान् दृष्ट्वा चण्डिका प्राह सत्वरा।
उवाच कालीं चामुण्डे विस्तीर्णं* वदनं कुरु॥ ५३॥

वैष्णवीके चक्रसे घायल होनेपर उसके शरीरसे जो रक्त बहा और उससे जो उसीके बराबर आकारवाले सहस्त्रों महादैत्य प्रकट हुए, उनके द्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया॥ ४८॥ कौमारीने शक्तिसे, वाराहीने खड्गसे और माहेश्वरीने त्रिशूलसे महादैत्य रक्तबीजको घायल किया॥ ४९॥ क्रोधमें भरे हुए उस महादैत्य रक्तबीजने भी गदासे सभी मातृ-शक्तियोंपर पृथक्-पृथक् प्रहार किया॥ ५०॥ शक्ति और शूल आदिसे अनेक बार घायल होनेपर जो उसके शरीरसे रक्तकी धारा पृथ्वीपर गिरी, उससे भी निश्चय ही सैकड़ों असुर उत्पन्न हुए॥ ५१॥ इस प्रकार उस महादैत्यके रक्तसे प्रकट हुए असुरोंद्वारा सम्पूर्ण जगत् व्याप्त हो गया। इससे उन देवताओंको बड़ा भय हुआ॥ ५२॥ देवताओंको उदास देख चण्डिकाने कालीसे शीघ्रतापूर्वक कहा—'चामुण्डे! तुम अपना मुख और भी फैलाओ॥ ५३॥

* पा०— विस्तरं।

मच्छस्त्रपातसम्भूतान् रक्तबिन्दून्महासुरान्।
रक्तबिन्दोः प्रतीच्छ त्वं वक्त्रेणानेन वेगिना[1]॥ ५४॥
भक्षयन्ती चर रणे तदुत्पन्नान्महासुरान्।
एवमेष क्षयं दैत्यः क्षीणरक्तो गमिष्यति॥ ५५॥
भक्ष्यमाणास्त्वया चोग्रा न चोत्पत्स्यन्ति चापरे[2]।
इत्युक्त्वा तां ततो देवी शूलेनाभिजघान तम्॥ ५६॥
मुखेन काली जगृहे रक्तबीजस्य शोणितम्।
ततोऽसावाजघानाथ गदया तत्र चण्डिकाम्॥ ५७॥
न चास्या वेदनां चक्रे गदापातोऽल्पिकामपि।
तस्याहतस्य देहात्तु बहु सुस्राव शोणितम्॥ ५८॥
यतस्ततस्तद्वक्त्रेण चामुण्डा सम्प्रतीच्छति।
मुखे समुद्गता येऽस्या रक्तपातान्महासुराः॥ ५९॥

तथा मेरे शस्त्रपातसे गिरनेवाले रक्तबिन्दुओं और उनसे उत्पन्न होनेवाले महादैत्योंको तुम अपने इस उतावले मुखसे खा जाओ॥ ५४॥ इस प्रकार रक्तसे उत्पन्न होनेवाले महादैत्योंका भक्षण करती हुई तुम रणमें विचरती रहो। ऐसा करनेसे उस दैत्यका सारा रक्त क्षीण हो जानेपर वह स्वयं भी नष्ट हो जायगा॥ ५५॥ उन भयंकर दैत्योंको जब तुम खा जाओगी, तब दूसरे नये दैत्य उत्पन्न नहीं हो सकेंगे।' कालीसे यों कहकर चण्डिकादेवीने शूलसे रक्तबीजको मारा॥ ५६॥ और कालीने अपने मुखमें उसका रक्त ले लिया। तब उसने वहाँ चण्डिकापर गदासे प्रहार किया॥ ५७॥ किंतु उस गदापातने देवीको तनिक भी वेदना नहीं पहुँचायी। रक्तबीजके घायल शरीरसे बहुत-सा रक्त गिरा॥ ५८॥ किंतु ज्यों ही वह गिरा त्यों ही चामुण्डाने उसे अपने मुखमें ले लिया। रक्त गिरनेसे कालीके मुखमें जो महादैत्य उत्पन्न हुए, उन्हें

१. पा०—वेगिता। २. इसके बाद कहीं-कहीं 'ऋषिरुवाच' इतना अधिक पाठ है।

तांश्चखादाथ चामुण्डा पपौ तस्य च शोणितम्।
देवी शूलेन वज्रेण[1] बाणैरसिभिर्ऋष्टिभिः॥ ६०॥
जघान रक्तबीजं तं चामुण्डापीतशोणितम्।
स पपात महीपृष्ठे शस्त्रसङ्घसमाहतः[2]॥ ६१॥
नीरक्तश्च महीपाल रक्तबीजो महासुरः।
ततस्ते हर्षमतुलमवापुस्त्रिदशा नृप॥ ६२॥
तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः॥ ॐ॥ ६३॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
रक्तबीजवधो नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥
उवाच १, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ६१, एवम्
६३, एवमादितः ५०२॥

भी वह चट कर गयी और उसने रक्तबीजका रक्त भी पी लिया। तदनन्तर देवीने रक्तबीजको, जिसका रक्त चामुण्डाने पी लिया था, वज्र, बाण, खड्ग तथा ऋष्टि आदिसे मार डाला। राजन्! इस प्रकार शस्त्रोंके समुदायसे आहत एवं रक्तहीन हुआ महादैत्य रक्तबीज पृथ्वीपर गिर पड़ा। नरेश्वर! इससे देवताओंको अनुपम हर्षकी प्राप्ति हुई॥ ५९—६२॥ और मातृगण उन असुरोंके रक्तपानके मदसे उद्धत-सा होकर नृत्य करने लगा॥ ६३॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके
अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'रक्तबीज-वध' नामक
आठवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ८॥

१. पा०—चक्रेण। २. पा०—शस्त्रसंहतितो हतः।

नवमोऽध्यायः

निशुम्भ-वध

ध्यानम्

ॐ बन्धूककाञ्चननिभं रुचिराक्षमालां
पाशाङ्कुशौ च वरदां निजबाहुदण्डैः।
बिभ्राणमिन्दुशकलाभरणं त्रिनेत्र-
मर्धाम्बिकेशमनिशं वपुराश्रयामि॥

'ॐ' राजोवाच॥ १॥

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन् भवता मम।
देव्याश्चरितमाहात्म्यं रक्तबीजवधाश्रितम्॥ २॥
भूयश्चेच्छाम्यहं श्रोतुं रक्तबीजे निपातिते।
चकार शुम्भो यत्कर्म निशुम्भश्चातिकोपनः॥ ३॥

मैं अर्धनारीश्वरके श्रीविग्रहकी निरन्तर शरण लेता हूँ। उसका वर्ण बन्धूकपुष्प और सुवर्णके समान रक्त-पीतमिश्रित है। वह अपनी भुजाओंमें सुन्दर अक्षमाला, पाश, अंकुश और वरद-मुद्रा धारण करता है; अर्धचन्द्र उसका आभूषण है तथा वह तीन नेत्रोंसे सुशोभित है।

राजाने कहा—॥ १॥ भगवन्! आपने रक्तबीजके वधसे सम्बन्ध रखनेवाला देवी-चरित्रका यह अद्भुत माहात्म्य मुझे बतलाया॥ २॥ अब रक्तबीजके मारे जानेपर अत्यन्त क्रोधमें भरे हुए शुम्भ और निशुम्भने जो कर्म किया, उसे मैं सुनना चाहता हूँ॥ ३॥

ऋषिरुवाच॥ ४॥

चकार कोपमतुलं रक्तबीजे निपातिते।
शुम्भासुरो निशुम्भश्च हतेष्वन्येषु चाहवे॥ ५ ॥
हन्यमानं महासैन्यं विलोक्यामर्षमुद्वहन्।
अभ्यधावन्निशुम्भोऽथ मुख्ययासुरसेनया॥ ६ ॥
तस्याग्रतस्तथा पृष्ठे पार्श्वयोश्च महासुराः।
संदष्टौष्ठपुटाः क्रुद्धा हन्तुं देवीमुपाययुः॥ ७ ॥
आजगाम महावीर्यः शुम्भोऽपि स्वबलैर्वृतः।
निहन्तुं चण्डिकां कोपात्कृत्वा युद्धं तु मातृभिः॥ ८ ॥
ततो युद्धमतीवासीद्देव्या शुम्भनिशुम्भयोः।
शरवर्षमतीवोग्रं मेघयोरिव वर्षतोः॥ ९ ॥
चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यां चण्डिका स्वशरोत्करैः*।
ताडयामास चाङ्गेषु शस्त्रौघैरसुरेश्वरौ॥ १० ॥

ऋषि कहते हैं—॥ ४॥ राजन्! युद्धमें रक्तबीज तथा अन्य दैत्योंके मारे जानेपर शुम्भ और निशुम्भके क्रोधकी सीमा न रही॥ ५॥ अपनी विशाल सेना इस प्रकार मारी जाती देख निशुम्भ अमर्षमें भरकर देवीकी ओर दौड़ा। उसके साथ असुरोंकी प्रधान सेना थी॥ ६॥ उसके आगे, पीछे तथा पार्श्वभागमें बड़े-बड़े असुर थे, जो क्रोधसे ओठ चबाते हुए देवीको मार डालनेके लिये आये॥ ७॥ महापराक्रमी शुम्भ भी अपनी सेनाके साथ मातृगणोंसे युद्ध करके क्रोधवश चण्डिकाको मारनेके लिये आ पहुँचा॥ ८॥ तब देवीके साथ शुम्भ और निशुम्भका घोर संग्राम छिड़ गया। वे दोनों दैत्य मेघोंकी भाँति बाणोंकी भयंकर वृष्टि कर रहे थे॥ ९॥ उन दोनोंके चलाये हुए बाणोंको चण्डिकाने अपने बाणोंके समूहसे तुरंत काट डाला और शस्त्रसमूहोंकी वर्षा करके उन दोनों दैत्यपतियोंके अंगोंमें भी चोट पहुँचायी॥ १०॥

* पा०—ऽऽशु शरोत्करैः।

निशुम्भो निशितं खड्गं चर्म चादाय सुप्रभम्।
अताडयन्मूर्ध्नि सिंहं देव्या वाहनमुत्तमम्॥ ११॥
ताडिते वाहने देवी क्षुरप्रेणासिमुत्तमम्।
निशुम्भस्याशु चिच्छेद चर्म चाप्यष्टचन्द्रकम्॥ १२॥
छिन्ने चर्मणि खड्गे च शक्तिं चिक्षेप सोऽसुरः।
तामप्यस्य द्विधा चक्रे चक्रेणाभिमुखागताम्॥ १३॥
कोपाध्मातो निशुम्भोऽथ शूलं जग्राह दानवः।
आयातं[1] मुष्टिपातेन देवी तच्चाप्यचूर्णयत्॥ १४॥
आविध्याथ[2] गदां सोऽपि चिक्षेप चण्डिकां प्रति।
सापि देव्या त्रिशूलेन भिन्ना भस्मत्वमागता॥ १५॥
ततः परशुहस्तं तमायान्तं दैत्यपुङ्गवम्।
आहत्य देवी बाणौघैरपातयत भूतले॥ १६॥

निशुम्भने तीखी तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर देवीके श्रेष्ठ वाहन सिंहके मस्तकपर प्रहार किया॥ ११॥ अपने वाहनको चोट पहुँचनेपर देवीने क्षुरप्र नामक बाणसे निशुम्भकी श्रेष्ठ तलवार तुरंत ही काट डाली और उसकी ढालको भी, जिसमें आठ चाँद जड़े थे, खण्ड-खण्ड कर दिया॥ १२॥ ढाल और तलवारके कट जानेपर उस असुरने शक्ति चलायी, किंतु सामने आनेपर देवीने चक्रसे उसके भी दो टुकड़े कर दिये॥ १३॥ अब तो निशुम्भ क्रोधसे जल उठा और उस दानवने देवीको मारनेके लिये शूल उठाया; किंतु देवीने समीप आनेपर उसे भी मुक्केसे मारकर चूर्ण कर दिया॥ १४॥ तब उसने गदा घुमाकर चण्डीके ऊपर चलायी, परंतु वह भी देवीके त्रिशूलसे कटकर भस्म हो गयी॥ १५॥ तदनन्तर दैत्यराज निशुम्भको फरसा हाथमें लेकर आते देख देवीने बाणसमूहोंसे घायलकर धरतीपर सुला दिया॥ १६॥

१. पा०—आयान्तं। २. पा०—अथादाय।

तस्मिन्निपतिते भूमौ निशुम्भे भीमविक्रमे।
भ्रातर्यतीव संक्रुद्धः प्रययौ हन्तुमम्बिकाम्॥ १७॥
स रथस्थस्तथात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः।
भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषं बभौ नभः॥ १८॥
तमायान्तं समालोक्य देवी शङ्खमवादयत्।
ज्याशब्दं चापि धनुषश्चकारातीव दुःसहम्॥ १९॥
पूरयामास ककुभो निजघण्टास्वनेन च।
समस्तदैत्यसैन्यानां तेजोवधविधायिना॥ २०॥
ततः सिंहो महानादैस्त्याजितेभमहामदैः।
पूरयामास गगनं गां तथैव* दिशो दश॥ २१॥
ततः काली समुत्पत्य गगनं क्ष्मामताडयत्।
कराभ्यां तन्निनादेन प्राक्स्वनास्ते तिरोहिताः॥ २२॥

उस भयंकर पराक्रमी भाई निशुम्भके धराशायी हो जानेपर शुम्भको बड़ा क्रोध हुआ और अम्बिकाका वध करनेके लिये वह आगे बढ़ा॥ १७॥ रथपर बैठे-बैठे ही उत्तम आयुधोंसे सुशोभित अपनी बड़ी-बड़ी आठ अनुपम भुजाओंसे समूचे आकाशको ढककर वह अद्भुत शोभा पाने लगा॥ १८॥ उसे आते देख देवीने शंख बजाया और धनुषकी प्रत्यंचाका भी अत्यन्त दुस्सह शब्द किया॥ १९॥ साथ ही अपने घण्टेके शब्दसे, जो समस्त दैत्यसैनिकोंका तेज नष्ट करनेवाला था, सम्पूर्ण दिशाओंको व्याप्त कर दिया॥ २०॥ तदनन्तर सिंहने भी अपनी दहाड़से, जिसे सुनकर बड़े-बड़े गजराजोंका महान् मद दूर हो जाता था, आकाश, पृथ्वी और दसों दिशाओंको गुँजा दिया॥ २१॥ फिर कालीने आकाशमें उछलकर अपने दोनों हाथोंसे पृथ्वीपर आघात किया। उससे ऐसा भयंकर शब्द हुआ, जिससे पहलेके सभी शब्द शान्त हो गये॥ २२॥

* पा०— तथोपदिशो।

अट्टाट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह।
तैः शब्दैरसुरास्त्रेसुः शुम्भः कोपं परं ययौ॥ २३॥
दुरात्मंस्तिष्ठ तिष्ठेति व्याजहाराम्बिका यदा।
तदा जयेत्यभिहितं देवैराकाशसंस्थितैः॥ २४॥
शुम्भेनागत्य या शक्तिर्मुक्ता ज्वालातिभीषणा।
आयान्ती वह्निकूटाभा सा निरस्ता महोल्कया॥ २५॥
सिंहनादेन शुम्भस्य व्याप्तं लोकत्रयान्तरम्।
निर्घातनिःस्वनो घोरो जितवानवनीपते॥ २६॥
शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवी शुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान्।
चिच्छेद स्वशरैरुग्रैः शतशोऽथ सहस्रशः॥ २७॥
ततः सा चण्डिका क्रुद्धा शूलेनाभिजघान तम्।
स तदाभिहतो भूमौ मूर्च्छितो निपपात ह॥ २८॥

तत्पश्चात् शिवदूतीने दैत्योंके लिये अमंगलजनक अट्टहास किया, इन शब्दोंको सुनकर समस्त असुर थर्रा उठे; किंतु शुम्भको बड़ा क्रोध हुआ॥ २३॥ उस समय देवीने जब शुम्भको लक्ष्य करके कहा—'ओ दुरात्मन्! खड़ा रह, खड़ा रह', तभी आकाशमें खड़े हुए देवता बोल उठे—'जय हो, जय हो'॥ २४॥ शुम्भने वहाँ आकर ज्वालाओंसे युक्त अत्यन्त भयानक शक्ति चलायी। अग्निमय पर्वतके समान आती हुई उस शक्तिको देवीने बड़े भारी लूकेसे दूर हटा दिया॥ २५॥ उस समय शुम्भके सिंहनादसे तीनों लोक गूँज उठे। राजन्! उसकी प्रतिध्वनिसे वज्रपातके समान भयानक शब्द हुआ, जिसने अन्य सब शब्दोंको जीत लिया॥ २६॥ शुम्भके चलाये हुए बाणोंके देवीने और देवीके चलाये हुए बाणोंके शुम्भने अपने भयंकर बाणोंद्वारा सैकड़ों और हजारों टुकड़े कर दिये॥ २७॥ तब क्रोधमें भरी हुई चण्डिकाने शुम्भको शूलसे मारा। उसके आघातसे मूर्च्छित हो वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ २८॥

ततो निशुम्भः सम्प्राप्य चेतनामात्तकार्मुकः।
आजघान शरैर्देवीं कालीं केसरिणं तथा॥ २९॥
पुनश्च कृत्वा बाहूनामयुतं दनुजेश्वरः।
चक्रायुधेन दितिजश्छादयामास चण्डिकाम्॥ ३०॥
ततो भगवती क्रुद्धा दुर्गा दुर्गार्तिनाशिनी।
चिच्छेद तानि चक्राणि स्वशरैः सायकांश्च तान्॥ ३१॥
ततो निशुम्भो वेगेन गदामादाय चण्डिकाम्।
अभ्यधावत वै हन्तुं दैत्यसेनासमावृतः॥ ३२॥
तस्यापतत एवाशु गदां चिच्छेद चण्डिका।
खड्गेन शितधारेण स च शूलं समाददे॥ ३३॥
शूलहस्तं समायान्तं निशुम्भममरार्दनम्।
हृदि विव्याध शूलेन वेगाविद्धेन चण्डिका॥ ३४॥
भिन्नस्य तस्य शूलेन हृदयान्निःसृतोऽपरः।
महाबलो महावीर्यस्तिष्ठेति पुरुषो वदन्॥ ३५॥

इतनेमें ही निशुम्भको चेतना हुई और उसने धनुष हाथमें लेकर बाणोंद्वारा देवी, काली तथा सिंहको घायल कर डाला॥ २९॥ फिर उस दैत्यराजने दस हजार बाँहें बनाकर चक्रोंके प्रहारसे चण्डिकाको आच्छादित कर दिया॥ ३०॥ तब दुर्गम पीड़ाका नाश करनेवाली भगवती दुर्गाने कुपित होकर अपने बाणोंसे उन चक्रों तथा बाणोंको काट गिराया॥ ३१॥ यह देख निशुम्भ दैत्यसेनाके साथ चण्डिकाका वध करनेके लिये हाथमें गदा ले बड़े वेगसे दौड़ा॥ ३२॥ उसके आते ही चण्डीने तीखी धारवाली तलवारसे उसकी गदाको शीघ्र ही काट डाला। तब उसने शूल हाथमें ले लिया॥ ३३॥ देवताओंको पीड़ा देनेवाले निशुम्भको शूल हाथमें लिये आते देख चण्डिकाने वेगसे चलाये हुए अपने शूलसे उसकी छाती छेद डाली॥ ३४॥ शूलसे विदीर्ण हो जानेपर उसकी छातीसे एक दूसरा महाबली एवं महापराक्रमी पुरुष 'खड़ी रह, खड़ी रह' कहता हुआ निकला॥ ३५॥

तस्य निष्क्रामतो देवी प्रहस्य स्वनवत्ततः।
शिरश्चिच्छेद खड्गेन ततोऽसावपतद्भुवि॥ ३६॥

ततः सिंहश्चखादोग्रं[1] दंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान्।
असुरांस्तांस्तथा काली शिवदूती तथापरान्॥ ३७॥

कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाः केचिन्नेशुर्महासुराः।
ब्रह्माणीमन्त्रपूतेन तोयेनान्ये निराकृताः॥ ३८॥

माहेश्वरीत्रिशूलेन भिन्नाः पेतुस्तथापरे।
वाराहीतुण्डघातेन केचिच्चूर्णीकृता भुवि॥ ३९॥

खण्डं[2] खण्डं च चक्रेण वैष्णव्या दानवाः कृताः।
वज्रेण चैन्द्रीहस्ताग्रविमुक्तेन तथापरे॥ ४०॥

उस निकलते हुए पुरुषकी बात सुनकर देवी ठठाकर हँस पड़ीं और खड्गसे उन्होंने उसका मस्तक काट डाला। फिर तो वह पृथ्वीपर गिर पड़ा॥ ३६॥ तदनन्तर सिंह अपनी दाढ़ोंसे असुरोंकी गर्दन कुचलकर खाने लगा, यह बड़ा भयंकर दृश्य था। उधर काली तथा शिवदूतीने भी अन्यान्य दैत्योंका भक्षण आरम्भ किया॥ ३७॥ कौमारीकी शक्तिसे विदीर्ण होकर कितने ही महादैत्य नष्ट हो गये। ब्रह्माणीके मन्त्रपूत जलसे निस्तेज होकर कितने ही भाग खड़े हुए॥ ३८॥ कितने ही दैत्य माहेश्वरीके त्रिशूलसे छिन्न-भिन्न हो धराशायी हो गये। वाराहीके थूथुनके आघातसे कितनोंका पृथ्वीपर कचूमर निकल गया॥ ३९॥ वैष्णवीने भी अपने चक्रसे दानवोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। ऐन्द्रीके हाथसे छूटे हुए वज्रसे भी कितने ही प्राणोंसे हाथ धो बैठे॥ ४०॥

१. पा०—दोग्रदंष्ट्रा०। २. पा०—खण्डखण्डं।

केचिद्विनेशुरसुराः केचिन्नष्टा महाहवात्।
भक्षिताश्चापरे कालीशिवदूतीमृगाधिपैः॥ ॐ॥ ४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
निशुम्भवधो नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥
उवाच २, श्लोकाः ३९, एवम् ४१,
एवमादितः ५४३॥

कुछ असुर नष्ट हो गये, कुछ उस महायुद्धसे भाग गये तथा कितने ही काली, शिवदूती तथा सिंहके ग्रास बन गये॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके
अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'निशुम्भ-वध' नामक
नवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ९॥

दशमोऽध्यायः

शुम्भ-वध

ध्यानम्

ॐ उत्तप्तहेमरुचिरां रविचन्द्रवह्नि-
नेत्रां धनुश्शरयुताङ्कुशपाशशूलम्।
रम्यैर्भुजैश्च दधतीं शिवशक्तिरूपां
कामेश्वरीं हृदि भजामि धृतेन्दुलेखाम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

निशुम्भं निहतं दृष्ट्वा भ्रातरं प्राणसम्मितम्।
हन्यमानं बलं चैव शुम्भः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः॥ २॥
बलावलेपाद्दुष्टे* त्वं मा दुर्गे गर्वमावह।
अन्यासां बलमाश्रित्य युद्ध्यसे यातिमानिनी॥ ३॥

मैं मस्तकपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाली शिवशक्तिस्वरूपा भगवती कामेश्वरीका हृदयमें चिन्तन करता हूँ। वे तपाये हुए सुवर्णके समान सुन्दर हैं। सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि—ये ही तीन उनके नेत्र हैं तथा वे अपने मनोहर हाथोंमें धनुष-बाण, अंकुश, पाश और शूल धारण किये हुए हैं।

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ राजन्! अपने प्राणोंके समान प्यारे भाई निशुम्भको मारा गया देख तथा सारी सेनाका संहार होता जान शुम्भने कुपित होकर कहा— ॥ २॥ 'दुष्ट दुर्गे! तू बलके अभिमानमें आकर झूठ-मूठका घमंड न दिखा। तू बड़ी मानिनी बनी हुई है, किंतु दूसरी स्त्रियोंके बलका सहारा लेकर लड़ती है'॥ ३॥

---

* पा०—पदु०।

देव्युवाच॥ ४॥

एकैवाहं जगत्यत्र द्वितीया का ममापरा।
पश्यैता दुष्ट मय्येव विशन्त्यो मद्विभूतयः*॥ ५ ॥
ततः समस्तास्ता देव्यो ब्रह्माणीप्रमुखा लयम्।
तस्या देव्यास्तनौ जग्मुरेकैवासीत्तदाम्बिका॥ ६ ॥

देव्युवाच॥ ७॥

अहं विभूत्या बहुभिरिह रूपैर्यदास्थिता।
तत्संहृतं मयैकैव तिष्ठाम्याजौ स्थिरो भव॥ ८ ॥

ऋषिरुवाच॥ ९॥

ततः प्रववृते युद्धं देव्याः शुम्भस्य चोभयोः।
पश्यतां सर्वदेवानामसुराणां च दारुणम्॥ १० ॥
शरवर्षैः शितैः शस्त्रैस्तथास्त्रैश्चैव दारुणैः।
तयोर्युद्धमभूद्भूयः सर्वलोकभयङ्करम्॥ ११ ॥

देवी बोलीं—॥ ४॥ ओ दुष्ट! मैं अकेली ही हूँ। इस संसारमें मेरे सिवा दूसरी कौन है? देख, ये मेरी ही विभूतियाँ हैं, अतः मुझमें ही प्रवेश कर रही हैं॥ ५॥

तदनन्तर ब्रह्माणी आदि समस्त देवियाँ अम्बिकादेवीके शरीरमें लीन हो गयीं। उस समय केवल अम्बिकादेवी ही रह गयीं॥ ६॥

देवी बोलीं—॥ ७॥ मैं अपनी ऐश्वर्यशक्तिसे अनेक रूपोंमें यहाँ उपस्थित हुई थी। उन सब रूपोंको मैंने समेट लिया। अब अकेली ही युद्धमें खड़ी हूँ। तुम भी स्थिर हो जाओ॥ ८॥

ऋषि कहते हैं—॥ ९॥ तदनन्तर देवी और शुम्भ दोनोंमें सब देवताओं तथा दानवोंके देखते-देखते भयंकर युद्ध छिड़ गया॥ १०॥ बाणोंकी वर्षा तथा तीखे शस्त्रों एवं दारुण अस्त्रोंके प्रहारके कारण उन दोनोंका युद्ध सब लोगोंके लिये बड़ा भयानक प्रतीत हुआ॥ ११॥

---

* इसके बाद किसी-किसी प्रतिमें 'ऋषिरुवाच' इतना अधिक पाठ है।

दिव्यान्यस्त्राणि शतशो मुमुचे यान्यथाम्बिका।
बभञ्ज तानि दैत्येन्द्रस्तत्प्रतीघातकर्तृभिः॥ १२॥
मुक्तानि तेन चास्त्राणि दिव्यानि परमेश्वरी।
बभञ्ज लीलयैवोग्रहु[1]ङ्कारोच्चारणादिभिः॥ १३॥
ततः शरशतैर्देवीमाच्छादयत सोऽसुरः।
सापि[2] तत्कुपिता देवी धनुश्चिच्छेद चेषुभिः॥ १४॥
छिन्ने धनुषि दैत्येन्द्रस्तथा शक्तिमथाददे।
चिच्छेद देवी चक्रेण तामप्यस्य करे स्थिताम्॥ १५॥
ततः खड्गमुपादाय शतचन्द्रं च भानुमत्।
अभ्यधावत्तदा[3] देवीं दैत्यानामधिपेश्वरः॥ १६॥
तस्यापतत एवाशु खड्गं चिच्छेद चण्डिका।
धनुर्मुक्तैः शितैर्बाणैश्चर्म चार्ककरामलम्[4]॥ १७॥

उस समय अम्बिकादेवीने जो सैकड़ों दिव्य अस्त्र छोड़े, उन्हें दैत्यराज शुम्भने उनके निवारक अस्त्रोंद्वारा काट डाला॥ १२॥ इसी प्रकार शुम्भने भी जो दिव्य अस्त्र चलाये; उन्हें परमेश्वरीने भयंकर हुंकार शब्दके उच्चारण आदिद्वारा खिलवाड़में ही नष्ट कर डाला॥ १३॥ तब उस असुरने सैकड़ों बाणोंसे देवीको आच्छादित कर दिया। यह देख क्रोधमें भरी हुई उन देवीने भी बाण मारकर उसका धनुष काट डाला॥ १४॥ धनुष कट जानेपर फिर दैत्यराजने शक्ति हाथमें ली, किंतु देवीने चक्रसे उसके हाथकी शक्तिको भी काट गिराया॥ १५॥ तत्पश्चात् दैत्योंके स्वामी शुम्भने सौ चाँदवाली चमकती हुई ढाल और तलवार हाथमें ले उस समय देवीपर धावा किया॥ १६॥ उसके आते ही चण्डिकाने अपने धनुषसे छोड़े हुए तीखे बाणोंद्वारा उसकी सूर्य-किरणोंके समान उज्ज्वल ढाल और तलवारको तुरंत काट दिया॥ १७॥

१. पा०—हू०। २. पा०—सा च। ३. पा०—वत तां हन्तुं दैत्या०। ४. इसके बाद किसी-किसी प्रतिमें—'अश्वांश्च पातयामास रथं सारथिना सह।' इतना अधिक पाठ है।

हताश्वः स तदा दैत्यश्छिन्नधन्वा विसारथिः।
जग्राह मुद्गरं घोरमम्बिकानिधनोद्यतः॥ १८॥
चिच्छेदापततस्तस्य मुद्गरं निशितैः शरैः।
तथापि सोऽभ्यधावत्तां मुष्टिमुद्यम्य वेगवान्॥ १९॥
स मुष्टिं पातयामास हृदये दैत्यपुङ्गवः।
देव्यास्तं चापि सा देवी तलेनोरस्यताडयत्॥ २०॥
तलप्रहाराभिहतो निपपात महीतले।
स दैत्यराजः सहसा पुनरेव तथोत्थितः॥ २१॥
उत्पत्य च प्रगृह्योच्चैर्देवीं गगनमास्थितः।
तत्रापि सा निराधारा युयुधे तेन चण्डिका॥ २२॥
नियुद्धं खे तदा दैत्यश्चण्डिका च परस्परम्।
चक्रतुः प्रथमं सिद्धमुनिविस्मयकारकम्॥ २३॥

फिर उस दैत्यके घोड़े और सारथि मारे गये, धनुष तो पहले ही कट चुका था, अब उसने अम्बिकाको मारनेके लिये उद्यत हो भयंकर मुद्गर हाथमें लिया॥ १८॥ उसे आते देख देवीने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उसका मुद्गर भी काट डाला, तिसपर भी वह असुर मुक्का तानकर बड़े वेगसे देवीकी ओर झपटा॥ १९॥ उस दैत्यराजने देवीकी छातीमें मुक्का मारा, तब उन देवीने भी उसकी छातीमें एक चाँटा जड़ दिया॥ २०॥ देवीका थप्पड़ खाकर दैत्यराज शुम्भ पृथ्वीपर गिर पड़ा, किंतु पुनः सहसा पूर्ववत् उठकर खड़ा हो गया॥ २१॥ फिर वह उछला और देवीको ऊपर ले जाकर आकाशमें खड़ा हो गया; तब चण्डिका आकाशमें भी बिना किसी आधारके ही शुम्भके साथ युद्ध करने लगीं॥ २२॥ उस समय दैत्य और चण्डिका आकाशमें एक-दूसरेसे लड़ने लगे। उनका वह युद्ध पहले सिद्ध और मुनियोंको विस्मयमें डालनेवाला हुआ॥ २३॥

ततो नियुद्धं सुचिरं कृत्वा तेनाम्बिका सह।
उत्पात्य भ्रामयामास चिक्षेप धरणीतले॥ २४॥
स क्षिप्तो धरणीं प्राप्य मुष्टिमुद्यम्य वेगितः *।
अभ्यधावत दुष्टात्मा चण्डिकानिधनेच्छया॥ २५॥
तमायान्तं ततो देवी सर्वदैत्यजनेश्वरम्।
जगत्यां पातयामास भित्त्वा शूलेन वक्षसि॥ २६॥
स गतासुः पपातोर्व्यां देवीशूलाग्रविक्षतः।
चालयन् सकलां पृथ्वीं साब्धिद्वीपां सपर्वताम्॥ २७॥
ततः प्रसन्नमखिलं हते तस्मिन् दुरात्मनि।
जगत्स्वास्थ्यमतीवाप निर्मलं चाभवन्नभः॥ २८॥
उत्पातमेघाः सोल्का ये प्रागासंस्ते शमं ययुः।
सरितो मार्गवाहिन्यस्तथासंस्तत्र पातिते॥ २९॥

फिर अम्बिकाने शुम्भके साथ बहुत देरतक युद्ध करनेके पश्चात् उसे उठाकर घुमाया और पृथ्वीपर पटक दिया॥ २४॥ पटके जानेपर पृथ्वीपर आनेके बाद वह दुष्टात्मा दैत्य पुनः चण्डिकाका वध करनेके लिये उनकी ओर बड़े वेगसे दौड़ा॥ २५॥ तब समस्त दैत्योंके राजा शुम्भको अपनी ओर आते देख देवीने त्रिशूलसे उसकी छाती छेदकर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया॥ २६॥ देवीके शूलकी धारसे घायल होनेपर उसके प्राण-पखेरू उड़ गये और वह समुद्रों, द्वीपों तथा पर्वतोंसहित समूची पृथ्वीको कँपाता हुआ भूमिपर गिर पड़ा॥ २७॥ तदनन्तर उस दुरात्माके मारे जानेपर सम्पूर्ण जगत् प्रसन्न एवं पूर्ण स्वस्थ हो गया तथा आकाश स्वच्छ दिखायी देने लगा॥ २८॥ पहले जो उत्पातसूचक मेघ और उल्कापात होते थे, वे सब शान्त हो गये तथा उस दैत्यके मारे जानेपर नदियाँ भी ठीक मार्गसे बहने लगीं॥ २९॥

* पा०— वेगवान्।

ततो देवगणाः सर्वे हर्षनिर्भरमानसाः।
बभूवुर्निहते तस्मिन् गन्धर्वा ललितं जगुः॥ ३०॥
अवादयंस्तथैवान्ये ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
ववुः पुण्यास्तथा वाताः सुप्रभोऽभूद्दिवाकरः॥ ३१॥
जज्वलुश्चाग्नयः शान्ताः शान्ता दिग्जनितस्वनाः॥ ॐ॥ ३२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये शुम्भवधो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः २७, एवम् ३२, एवमादितः ५७५॥

उस समय शुम्भकी मृत्युके बाद सम्पूर्ण देवताओंका हृदय हर्षसे भर गया और गन्धर्वगण मधुर गीत गाने लगे॥ ३०॥ दूसरे गन्धर्व बाजे बजाने लगे और अप्सराएँ नाचने लगीं। पवित्र वायु बहने लगी। सूर्यकी प्रभा उत्तम हो गयी॥ ३१॥ अग्निशालाकी बुझी हुई आग अपने-आप प्रज्वलित हो उठी तथा सम्पूर्ण दिशाओंके भयंकर शब्द शान्त हो गये॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'शुम्भ-वध' नामक दसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

देवताओंद्वारा देवीकी स्तुति तथा देवीद्वारा देवताओंको वरदान

ध्यानम्

ॐ बालरविद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम्।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

देव्या हते तत्र महासुरेन्द्रे
सेन्द्राः सुरा वह्निपुरोगमास्ताम्।
कात्यायनीं तुष्टुवुरिष्टलाभाद्[1]
विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः[2] ॥ २॥

मैं भुवनेश्वरीदेवीका ध्यान करता हूँ। उनके श्रीअंगोंकी आभा प्रभातकालके सूर्यके समान है और मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है। वे उभरे हुए स्तनों और तीन नेत्रोंसे युक्त हैं। उनके मुखपर मुसकानकी छटा छायी रहती है और हाथोंमें वरद, अंकुश, पाश एवं अभय-मुद्रा शोभा पाते हैं।

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ देवीके द्वारा वहाँ महादैत्यपति शुम्भके मारे जानेपर इन्द्र आदि देवता अग्निको आगे करके उन कात्यायनीदेवीकी स्तुति करने लगे। उस समय अभीष्टकी प्राप्ति होनेसे उनके मुखकमल दमक उठे थे और उनके प्रकाशसे दिशाएँ भी जगमगा उठी थीं॥ २॥

---

१. पा०—लम्भा०। २. पा०—वक्त्रास्तु वि०।

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥ ३॥
आधारभूता जगतस्त्वमेका
महीस्वरूपेण यतः स्थितासि।
अपां स्वरूपस्थितया त्वयैत-
दाप्यायते कृत्स्नमलङ्घ्यवीर्ये॥ ४॥
त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः॥ ५॥
विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।

देवता बोले—शरणागतकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हमपर प्रसन्न होओ। सम्पूर्ण जगत्की माता! प्रसन्न होओ। विश्वेश्वरि! विश्वकी रक्षा करो। देवि! तुम्हीं चराचर जगत्की अधीश्वरी हो॥ ३॥ तुम इस जगत्का एकमात्र आधार हो; क्योंकि पृथ्वीरूपमें तुम्हारी ही स्थिति है। देवि! तुम्हारा पराक्रम अलंघनीय है। तुम्हीं जलरूपमें स्थित होकर सम्पूर्ण जगत्को तृप्त करती हो॥ ४॥ तुम अनन्त बलसम्पन्न वैष्णवी शक्ति हो। इस विश्वकी कारणभूता परा माया हो। देवि! तुमने इस समस्त जगत्को मोहित कर रखा है। तुम्हीं प्रसन्न होनेपर इस पृथ्वीपर मोक्षकी प्राप्ति कराती हो॥ ५॥ देवि! सम्पूर्ण विद्याएँ तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं। जगत्में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब तुम्हारी ही मूर्तियाँ हैं।

त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः ॥ ६ ॥
सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्ति[1]प्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः ॥ ७ ॥
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ८ ॥
कलाकाष्ठादिरूपेण परिणामप्रदायिनि।
विश्वस्योपरतौ शक्ते नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये[2] शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ १० ॥
सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥

जगदम्ब! एकमात्र तुमने ही इस विश्वको व्याप्त कर रखा है। तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? तुम तो स्तवन करनेयोग्य पदार्थोंसे परे एवं परा वाणी हो ॥ ६ ॥ जब तुम सर्वस्वरूपा देवी स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हो, तब इसी रूपमें तुम्हारी स्तुति हो गयी। तुम्हारी स्तुतिके लिये इससे अच्छी उक्तियाँ और क्या हो सकती हैं? ॥ ७ ॥ बुद्धिरूपसे सब लोगोंके हृदयमें विराजमान रहनेवाली तथा स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है ॥ ८ ॥ कला, काष्ठा आदिके रूपसे क्रमशः परिणाम (अवस्था-परिवर्तन)-की ओर ले जानेवाली तथा विश्वका उपसंहार करनेमें समर्थ नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥ ९ ॥ नारायणि! तुम सब प्रकारका मंगल प्रदान करनेवाली मंगलमयी हो। कल्याणदायिनी शिवा हो। सब पुरुषार्थोंको सिद्ध करनेवाली, शरणागतवत्सला, तीन नेत्रोंवाली एवं गौरी हो। तुम्हें नमस्कार है ॥ १० ॥ तुम सृष्टि, पालन और संहारकी शक्तिभूता, सनातनी देवी, गुणोंका आधार तथा सर्वगुणमयी हो। नारायणि! तुम्हें नमस्कार है ॥ ११ ॥

१. पा०—भुक्ति। २. पा०—माङ्गल्ये।

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १२ ॥
हंसयुक्तविमानस्थे ब्रह्माणीरूपधारिणि ।
कौशाम्भःक्षरिके देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १३ ॥
त्रिशूलचन्द्राहिधरे महावृषभवाहिनि ।
माहेश्वरीस्वरूपेण नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १४ ॥
मयूरकुक्कुटवृते महाशक्तिधरेऽनघे ।
कौमारीरूपसंस्थाने नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १५ ॥
शङ्खचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ।
प्रसीद वैष्णवीरूपे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १६ ॥
गृहीतोग्रमहाचक्रे दंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे ।
वराहरूपिणि शिवे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १७ ॥
नृसिंहरूपेणोग्रेण हन्तुं दैत्यान् कृतोद्यमे ।
त्रैलोक्यत्राणसहिते नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १८ ॥

शरणमें आये हुए दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली तथा सबकी पीड़ा दूर करनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ १२॥ नारायणि! तुम ब्रह्माणीका रूप धारण करके हंसोंसे जुते हुए विमानपर बैठती तथा कुशमिश्रित जल छिड़कती रहती हो। तुम्हें नमस्कार है॥ १३॥ माहेश्वरीरूपसे त्रिशूल, चन्द्रमा एवं सर्पको धारण करनेवाली तथा महान् वृषभकी पीठपर बैठनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ १४॥ मोरों और मुर्गोंसे घिरी रहनेवाली तथा महाशक्ति धारण करनेवाली कौमारीरूपधारिणी निष्पापे नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ १५॥ शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुषरूप उत्तम आयुधोंको धारण करनेवाली वैष्णवी शक्तिरूपा नारायणि! तुम प्रसन्न होओ। तुम्हें नमस्कार है॥ १६॥ हाथमें भयानक महाचक्र लिये और दाढ़ोंपर धरतीको उठाये वाराहीरूपधारिणी कल्याणमयी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ १७॥ भयंकर नृसिंहरूपसे दैत्योंके वधके लिये उद्योग करनेवाली तथा त्रिभुवनकी रक्षामें संलग्न रहनेवाली नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ १८॥

किरीटिनि महावज्रे सहस्रनयनोज्ज्वले।
वृत्रप्राणहरे चैन्द्रि नारायणि नमोऽस्तु ते॥ १९॥
शिवदूतीस्वरूपेण हतदैत्यमहाबले।
घोररूपे महारावे नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २०॥
दंष्ट्राकरालवदने शिरोमालाविभूषणे।
चामुण्डे मुण्डमथने नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २१॥
लक्ष्मि लज्जे महाविद्ये श्रद्धे पुष्टिस्वधे[1] ध्रुवे।
महारात्रि[2] महाऽविद्ये[3] नारायणि नमोऽस्तु ते॥ २२॥
मेधे सरस्वति वरे भूति बाभ्रवि तामसि।
नियते त्वं प्रसीदेशे नारायणि नमोऽस्तु ते[4]॥ २३॥

मस्तकपर किरीट और हाथमें महावज्र धारण करनेवाली, सहस्र नेत्रोंके कारण उद्दीप्त दिखायी देनेवाली और वृत्रासुरके प्राणोंका अपहरण करनेवाली इन्द्रशक्तिरूपा नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है॥ १९॥ शिवदूतीरूपसे दैत्योंकी महती सेनाका संहार करनेवाली, भयंकर रूप धारण तथा विकट गर्जना करनेवाली नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २०॥ दाढ़ोंके कारण विकराल मुखवाली मुण्डमालासे विभूषित मुण्डमर्दिनी चामुण्डारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २१॥ लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, ध्रुवा, महारात्रि तथा महा-अविद्यारूपा नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २२॥ मेधा, सरस्वती, वरा (श्रेष्ठा), भूति (ऐश्वर्यरूपा), बाभ्रवी (भूरे रंगकी अथवा पार्वती), तामसी (महाकाली), नियता (संयमपरायणा) तथा ईशा (सबकी अधीश्वरी)-रूपिणी नारायणि! तुम्हें नमस्कार है॥ २३॥

१. पा०—पुष्टे। २. पा०—रात्रे। ३. पा०—महामाये।
४. शान्तनवी टीकाकारने यहाँ एक श्लोक अधिक पाठ माना है, जो इस प्रकार है—
सर्वतःपाणिपादान्ते सर्वतोऽक्षिशिरोमुखे।
सर्वतःश्रवणघ्राणे नारायणि नमोऽस्तु ते॥

सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥ २४॥

एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥ २५॥

ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते॥ २६॥

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव॥ २७॥

असुरासृग्वसापङ्कचर्चितस्ते करोज्ज्वलः।
शुभाय खड्गो भवतु चण्डिके त्वां नता वयम्॥ २८॥

सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी तथा सब प्रकारकी शक्तियोंसे सम्पन्न दिव्यरूपा दुर्गे देवि! सब भयोंसे हमारी रक्षा करो; तुम्हें नमस्कार है॥ २४॥ कात्यायनि! यह तीन लोचनोंसे विभूषित तुम्हारा सौम्य मुख सब प्रकारके भयोंसे हमारी रक्षा करे। तुम्हें नमस्कार है॥ २५॥ भद्रकाली! ज्वालाओंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला, अत्यन्त भयंकर और समस्त असुरोंका संहार करनेवाला तुम्हारा त्रिशूल भयसे हमें बचाये। तुम्हें नमस्कार है॥ २६॥ देवि! जो अपनी ध्वनिसे सम्पूर्ण जगत्को व्याप्त करके दैत्योंके तेज नष्ट किये देता है, वह तुम्हारा घण्टा हमलोगोंकी पापोंसे उसी प्रकार रक्षा करे, जैसे माता अपने पुत्रोंकी बुरे कर्मोंसे रक्षा करती है॥ २७॥ चण्डिके! तुम्हारे हाथोंमें सुशोभित खड्ग, जो असुरोंके रक्त और चर्बीसे चर्चित है, हमारा मंगल करे। हम तुम्हें नमस्कार करते हैं॥ २८॥

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा* तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥ २९॥
एतत्कृतं यत्कदनं त्वयाद्य
धर्मद्विषां देवि महासुराणाम्।
रूपैरनेकैर्बहुधाऽऽत्ममूर्तिं
कृत्वाम्बिके तत्प्रकरोति कान्या॥ ३०॥
विद्यासु शास्त्रेषु विवेकदीपे-
ष्वाद्येषु वाक्येषु च का त्वदन्या।
ममत्वगर्तेऽतिमहान्धकारे
विभ्रामयत्येतदतीव विश्वम्॥ ३१॥

देवि! तुम प्रसन्न होनेपर सब रोगोंको नष्ट कर देती हो और कुपित होनेपर मनोवांछित सभी कामनाओंका नाश कर देती हो। जो लोग तुम्हारी शरणमें जा चुके हैं, उनपर विपत्ति तो आती ही नहीं। तुम्हारी शरणमें गये हुए मनुष्य दूसरोंको शरण देनेवाले हो जाते हैं॥ २९॥ देवि! अम्बिके!! तुमने अपने स्वरूपको अनेक भागोंमें विभक्त करके नाना प्रकारके रूपोंसे जो इस समय इन धर्मद्रोही महादैत्योंका संहार किया है, वह सब दूसरी कौन कर सकती थी?॥ ३०॥ विद्याओंमें, ज्ञानको प्रकाशित करनेवाले शास्त्रोंमें तथा आदिवाक्यों (वेदों)-में तुम्हारे सिवा और किसका वर्णन है? तथा तुमको छोड़कर दूसरी कौन ऐसी शक्ति है, जो इस विश्वको अज्ञानमय घोर अन्धकारसे परिपूर्ण ममतारूपी गढ़ेमें निरन्तर भटका रही हो॥ ३१॥

* पा०—ददासि कामान्।

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्॥ ३२॥

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥ ३३॥

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं* नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥ ३४॥

जहाँ राक्षस, जहाँ भयंकर विषवाले सर्प, जहाँ शत्रु, जहाँ लुटेरोंकी सेना और जहाँ दावानल हो, वहाँ तथा समुद्रके बीचमें भी साथ रहकर तुम विश्वकी रक्षा करती हो॥ ३२॥ विश्वेश्वरि! तुम विश्वका पालन करती हो। विश्वरूपा हो, इसलिये सम्पूर्ण विश्वको धारण करती हो। तुम भगवान् विश्वनाथकी भी वन्दनीया हो। जो लोग भक्तिपूर्वक तुम्हारे सामने मस्तक झुकाते हैं, वे सम्पूर्ण विश्वको आश्रय देनेवाले होते हैं॥ ३३॥ देवि! प्रसन्न होओ। जैसे इस समय असुरोंका वध करके तुमने शीघ्र ही हमारी रक्षा की है, उसी प्रकार सदा हमें शत्रुओंके भयसे बचाओ। सम्पूर्ण जगत्का पाप नष्ट कर दो और उत्पात एवं पापोंके फलस्वरूप प्राप्त होनेवाले महामारी आदि बड़े-बड़े उपद्रवोंको शीघ्र दूर करो॥ ३४॥

* पा०—च शमं।

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥ ३५॥

देव्युवाच॥ ३६॥

वरदाहं सुरगणा वरं यन्मनसेच्छथ।
तं वृणुध्वं प्रयच्छामि जगतामुपकारकम्॥ ३७॥

देवा ऊचुः॥ ३८॥

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥ ३९॥

देव्युवाच॥ ४०॥

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते अष्टाविंशतिमे युगे।
शुम्भो निशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येते महासुरौ॥ ४१॥
नन्दगोपगृहे* जाता यशोदागर्भसम्भवा।
ततस्तौ नाशयिष्यामि विन्ध्याचलनिवासिनी॥ ४२॥

विश्वकी पीड़ा दूर करनेवाली देवि! हम तुम्हारे चरणोंपर पड़े हुए हैं, हमपर प्रसन्न होओ। त्रिलोकनिवासियोंकी पूजनीया परमेश्वरि! सब लोगोंको वरदान दो॥ ३५॥

देवी बोलीं—॥ ३६॥ देवताओ! मैं वर देनेको तैयार हूँ। तुम्हारे मनमें जिसकी इच्छा हो, वह वर माँग लो। संसारके लिये उस उपकारक वरको मैं अवश्य दूँगी॥ ३७॥

देवता बोले—॥ ३८॥ सर्वेश्वरि! तुम इसी प्रकार तीनों लोकोंकी समस्त बाधाओंको शान्त करो और हमारे शत्रुओंका नाश करती रहो॥ ३९॥

देवी बोलीं—॥ ४०॥ देवताओ! वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें शुम्भ और निशुम्भ नामके दो अन्य महादैत्य उत्पन्न होंगे॥ ४१॥ तब मैं नन्दगोपके घरमें उनकी पत्नी यशोदाके गर्भसे अवतीर्ण हो विन्ध्याचलमें जाकर रहूँगी और उक्त दोनों असुरोंका नाश करूँगी॥ ४२॥

* पा०—कुले।

पुनरप्यतिरौद्रेण रूपेण पृथिवीतले।
अवतीर्य हनिष्यामि वैप्रचित्तांस्तु दानवान्॥ ४३॥

भक्षयन्त्याश्च तानुग्रान् वैप्रचित्तान्महासुरान्।
रक्ता दन्ता भविष्यन्ति दाडिमीकुसुमोपमाः॥ ४४॥

ततो मां देवताः स्वर्गे मर्त्यलोके च मानवाः।
स्तुवन्तो व्याहरिष्यन्ति सततं रक्तदन्तिकाम्॥ ४५॥

भूयश्च शतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनम्भसि।
मुनिभिः संस्तुता भूमौ सम्भविष्याम्ययोनिजा॥ ४६॥

ततः शतेन नेत्राणां निरीक्षिष्यामि यन्मुनीन्।
कीर्तयिष्यन्ति मनुजाः शताक्षीमिति मां ततः॥ ४७॥

ततोऽहमखिलं लोकमात्मदेहसमुद्भवैः।
भरिष्यामि सुराः शाकैरावृष्टेः प्राणधारकैः॥ ४८॥

फिर अत्यन्त भयंकर रूपसे पृथ्वीपर अवतार ले मैं वैप्रचित्त नामवाले दानवोंका वध करूँगी॥ ४३॥ उन भयंकर महादैत्योंको भक्षण करते समय मेरे दाँत अनारके फूलकी भाँति लाल हो जायँगे॥ ४४॥ तब स्वर्गमें देवता और मर्त्यलोकमें मनुष्य सदा मेरी स्तुति करते हुए मुझे 'रक्तदन्तिका' कहेंगे॥ ४५॥ फिर जब पृथ्वीपर सौ वर्षोंके लिये वर्षा रुक जायगी और पानीका अभाव हो जायगा, उस समय मुनियोंके स्तवन करनेपर मैं पृथ्वीपर अयोनिजारूपमें प्रकट होऊँगी॥ ४६॥ और सौ नेत्रोंसे मुनियोंको देखूँगी। अतः मनुष्य 'शताक्षी' इस नामसे मेरा कीर्तन करेंगे॥ ४७॥ देवताओ! उस समय मैं अपने शरीरसे उत्पन्न हुए शाकोंद्वारा समस्त संसारका भरण-पोषण करूँगी। जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक वे शाक ही सबके प्राणोंकी रक्षा करेंगे॥ ४८॥

शाकम्भरीति विख्यातिं तदा यास्याम्यहं भुवि।
तत्रैव च वधिष्यामि दुर्गमाख्यं महासुरम्॥ ४९॥

दुर्गा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले॥ ५०॥

रक्षांसि* भक्षयिष्यामि मुनीनां त्राणकारणात्।
तदा मां मुनयः सर्वे स्तोष्यन्त्यानम्रमूर्तयः॥ ५१॥

भीमा देवीति विख्यातं तन्मे नाम भविष्यति।
यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति॥ ५२॥

तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम्।
त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम्॥ ५३॥

ऐसा करनेके कारण पृथ्वीपर 'शाकम्भरी' के नामसे मेरी ख्याति होगी। उसी अवतारमें मैं दुर्गम नामक महादैत्यका वध भी करूँगी॥ ४९॥ इससे मेरा नाम 'दुर्गादेवी' के रूपसे प्रसिद्ध होगा। फिर मैं जब भीमरूप धारण करके मुनियोंकी रक्षाके लिये हिमालयपर रहनेवाले राक्षसोंका भक्षण करूँगी, उस समय सब मुनि भक्तिसे नतमस्तक होकर मेरी स्तुति करेंगे॥ ५०-५१॥ तब मेरा नाम 'भीमादेवी' के रूपमें विख्यात होगा। जब अरुण नामक दैत्य तीनों लोकोंमें भारी उपद्रव मचायेगा॥ ५२॥ तब मैं तीनों लोकोंका हित करनेके लिये छः पैरोंवाले असंख्य भ्रमरोंका रूप धारण करके उस महादैत्यका वध करूँगी॥ ५३॥

---

* पा०—क्षययिष्यामि (क्षपयिष्यामि इति वा)।

भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः।
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति॥ ५४॥
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥ ॐ॥ ५५॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
देव्याः स्तुतिर्नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥
उवाच ४, अर्धश्लोकः १, श्लोकाः ५०,
एवम् ५५, एवमादितः ६३०॥

उस समय सब लोग 'भ्रामरी' के नामसे चारों ओर मेरी स्तुति करेंगे। इस प्रकार जब-जब संसारमें दानवी बाधा उपस्थित होगी, तब-तब अवतार लेकर मैं शत्रुओंका संहार करूँगी॥ ५४-५५॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके
अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'देवीस्तुति' नामक
ग्यारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ११॥

द्वादशोऽध्यायः

देवी-चरित्रोंके पाठका माहात्म्य

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे॥

'ॐ' देव्युवाच॥ १॥

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः।
तस्याहं सकलां बाधां नाशयिष्याम्यसंशयम्*॥ २॥

मैं तीन नेत्रोंवाली दुर्गादेवीका ध्यान करता हूँ, उनके श्रीअंगोंकी प्रभा बिजलीके समान है। वे सिंहके कंधेपर बैठी हुई भयंकर प्रतीत होती हैं। हाथोंमें तलवार और ढाल लिये अनेक कन्याएँ उनकी सेवामें खड़ी हैं। वे अपने हाथोंमें चक्र, गदा, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, पाश और तर्जनी मुद्रा धारण किये हुए हैं। उनका स्वरूप अग्निमय है तथा वे माथेपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करती हैं।

देवी बोलीं—॥ १॥ देवताओ! जो एकाग्रचित्त होकर प्रतिदिन इन स्तुतियोंसे मेरा स्तवन करेगा, उसकी सारी बाधा मैं निश्चय ही दूर कर दूँगी॥ २॥

---

* पा०—शम०।

मधुकैटभनाशं च महिषासुरघातनम्।
कीर्तयिष्यन्ति ये तद्वद् वधं शुम्भनिशुम्भयोः॥ ३॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां चैकचेतसः।
श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम्॥ ४॥
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद् दुष्कृतोत्था न चापदः।
भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम्॥ ५॥
शत्रुतो न भयं तस्य दस्युतो वा न राजतः।
न शस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्सम्भविष्यति॥ ६॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः।
श्रोतव्यं च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं हि तत्॥ ७॥
उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान्।
तथा त्रिविधमुत्पातं माहात्म्यं शमयेन्मम॥ ८॥

जो मधुकैटभका नाश, महिषासुरका वध तथा शुम्भ-निशुम्भके संहारके प्रसंगका पाठ करेंगे॥ ३॥ तथा अष्टमी, चतुर्दशी और नवमीको भी जो एकाग्रचित्त हो भक्तिपूर्वक मेरे उत्तम माहात्म्यका श्रवण करेंगे॥ ४॥ उन्हें कोई पाप नहीं छू सकेगा। उनपर पापजनित आपत्तियाँ भी नहीं आयेंगी। उनके घरमें कभी दरिद्रता नहीं होगी तथा उनको कभी प्रेमीजनोंके विछोहका कष्ट भी नहीं भोगना पड़ेगा॥ ५॥ इतना ही नहीं, उन्हें शत्रुसे, लुटेरोंसे, राजासे, शस्त्रसे, अग्निसे तथा जलकी राशिसे भी कभी भय नहीं होगा॥ ६॥ इसलिये सबको एकाग्रचित्त होकर भक्तिपूर्वक मेरे इस माहात्म्यको सदा पढ़ना और सुनना चाहिये। यह परम कल्याणकारक है॥ ७॥ मेरा माहात्म्य महामारीजनित समस्त उपद्रवों तथा आध्यात्मिक आदि तीनों प्रकारके उत्पातोंको शान्त करनेवाला है॥ ८॥

यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ्‌नित्यमायतने मम।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सांनिध्यं तत्र मे स्थितम्॥ ९ ॥
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे।
सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च॥ १० ॥
जानताऽजानता वापि बलिपूजां तथा कृताम्।
प्रतीच्छिष्याम्यहं[1] प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम्॥ ११ ॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः॥ १२ ॥
सर्वाबाधो[2]विनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥ १३ ॥
श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः।
पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान्॥ १४ ॥

मेरे जिस मन्दिरमें प्रतिदिन विधिपूर्वक मेरे इस माहात्म्यका पाठ किया जाता है, उस स्थानको मैं कभी नहीं छोड़ती। वहाँ सदा ही मेरा सन्निधान बना रहता है॥ ९ ॥ बलिदान, पूजा, होम तथा महोत्सवके अवसरोंपर मेरे इस चरित्रका पूरा-पूरा पाठ और श्रवण करना चाहिये॥ १० ॥ ऐसा करनेपर मनुष्य विधिको जानकर या बिना जाने भी मेरे लिये जो बलि, पूजा या होम आदि करेगा, उसे मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ ग्रहण करूँगी॥ ११ ॥ शरत्कालमें जो वार्षिक महापूजा की जाती है, उस अवसरपर जो मेरे इस माहात्म्यको भक्तिपूर्वक सुनेगा, वह मनुष्य मेरे प्रसादसे सब बाधाओंसे मुक्त तथा धन, धान्य एवं पुत्रसे सम्पन्न होगा—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है॥ १२-१३ ॥ मेरे इस माहात्म्य, मेरे प्रादुर्भावकी सुन्दर कथाएँ तथा युद्धमें किये हुए मेरे पराक्रम सुननेसे मनुष्य निर्भय हो जाता है॥ १४॥

---

१. पा०—प्रतीक्षिष्यामि। २. पा०—सर्वबाधा।

रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते।
नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम्॥ १५॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने।
ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम॥ १६॥
उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः।
दुःस्वप्नं च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते॥ १७॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम्।
संघातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम्॥ १८॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम्।
रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम्॥ १९॥
सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम्।
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः॥ २०॥

मेरे माहात्म्यका श्रवण करनेवाले पुरुषोंके शत्रु नष्ट हो जाते हैं, उन्हें कल्याणकी प्राप्ति होती तथा उनका कुल आनन्दित रहता है॥ १५॥ सर्वत्र शान्ति-कर्ममें, बुरे स्वप्न दिखायी देनेपर तथा ग्रहजनित भयंकर पीड़ा उपस्थित होनेपर मेरा माहात्म्य श्रवण करना चाहिये॥ १६॥ इससे सब विघ्न तथा भयंकर ग्रह-पीड़ाएँ शान्त हो जाती हैं और मनुष्योंद्वारा देखा हुआ दुःस्वप्न शुभ स्वप्नमें परिवर्तित हो जाता है॥ १७॥ बालग्रहोंसे आक्रान्त हुए बालकोंके लिये यह माहात्म्य शान्तिकारक है तथा मनुष्योंके संगठनमें फूट होनेपर यह अच्छी प्रकार मित्रता करानेवाला होता है॥ १८॥ यह माहात्म्य समस्त दुराचारियोंके बलका नाश करानेवाला है। इसके पाठमात्रसे राक्षसों, भूतों और पिशाचोंका नाश हो जाता है॥ १९॥ मेरा यह सब माहात्म्य मेरे सामीप्यकी प्राप्ति करानेवाला है। पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, दीप, गन्ध आदि उत्तम सामग्रियोंद्वारा पूजन करनेसे,

विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम्।
अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या॥ २१ ॥
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन् सकृत्सुचरिते श्रुते।
श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति॥ २२ ॥
रक्षां करोति भूतेभ्यो जन्मनां कीर्तनं मम।
युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिबर्हणम्॥ २३ ॥
तस्मिञ्छ्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते।
युष्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः॥ २४ ॥
ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु प्रयच्छन्ति शुभां मतिम्।
अरण्ये प्रान्तरे वापि दावाग्निपरिवारितः॥ २५ ॥
दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वापि शत्रुभिः।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः॥ २६ ॥
राज्ञा क्रुद्धेन चाज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा।

ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे, होम करनेसे, प्रतिदिन अभिषेक करनेसे, नाना प्रकारके अन्य भोगोंका अर्पण करनेसे तथा दान देने आदिसे एक वर्षतक जो मेरी आराधना की जाती है और उससे मुझे जितनी प्रसन्नता होती है, उतनी प्रसन्नता मेरे इस उत्तम चरित्रका एक बार श्रवण करनेमात्रसे हो जाती है। यह माहात्म्य श्रवण करनेपर पापोंको हर लेता और आरोग्य प्रदान करता है॥ २०— २२ ॥ मेरे प्रादुर्भावका कीर्तन समस्त भूतोंसे रक्षा करता है तथा मेरा युद्धविषयक चरित्र दुष्ट दैत्योंका संहार करनेवाला है॥ २३ ॥ इसके श्रवण करनेपर मनुष्योंको शत्रुका भय नहीं रहता। देवताओ! तुमने और ब्रह्मर्षियोंने जो मेरी स्तुतियाँ की हैं॥ २४ ॥ तथा ब्रह्माजीने जो स्तुतियाँ की हैं, वे सभी कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। वनमें, सूने मार्गमें अथवा दावानलसे घिर जानेपर॥ २५ ॥ निर्जन स्थानमें, लुटेरोंके दावमें पड़ जानेपर या शत्रुओंसे पकड़े जानेपर अथवा जंगलमें सिंह, व्याघ्र या जंगली हाथियोंके पीछा करनेपर॥ २६ ॥ कुपित राजाके आदेशसे वध या बन्धनके स्थानमें ले जाये जानेपर

आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे॥ २७॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु संग्रामे भृशदारुणे।
सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा॥ २८॥
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत संकटात्।
मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा॥ २९॥
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम॥ ३०॥

ऋषिरुवाच॥ ३१॥

इत्युक्त्वा सा भगवती चण्डिका चण्डविक्रमा॥ ३२॥
पश्यतामेव* देवानां तत्रैवान्तरधीयत।
तेऽपि देवा निरातङ्काः स्वाधिकारान् यथा पुरा॥ ३३॥
यज्ञभागभुजः सर्वे चक्रुर्विनिहतारयः।
दैत्याश्च देव्या निहते शुम्भे देवरिपौ युधि॥ ३४॥

अथवा महासागरमें नावपर बैठनेके बाद भारी तूफानसे नावके डगमग होनेपर॥ २७॥ और अत्यन्त भयंकर युद्धमें शस्त्रोंका प्रहार होनेपर अथवा वेदनासे पीड़ित होनेपर, किं बहुना, सभी भयानक बाधाओंके उपस्थित होनेपर॥ २८॥ जो मेरे इस चरित्रका स्मरण करता है, वह मनुष्य संकटसे मुक्त हो जाता है। मेरे प्रभावसे सिंह आदि हिंसक जन्तु नष्ट हो जाते हैं तथा लुटेरे और शत्रु भी मेरे चरित्रका स्मरण करनेवाले पुरुषसे दूर भागते हैं॥ २९-३०॥

ऋषि कहते हैं—॥ ३१॥ यों कहकर प्रचण्ड पराक्रमवाली भगवती चण्डिका सब देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्धान हो गयीं। फिर समस्त देवता भी शत्रुओंके मारे जानेसे निर्भय हो पहलेकी ही भाँति यज्ञभागका उपभोग करते हुए अपने-अपने अधिकारका पालन करने लगे। संसारका विध्वंस करनेवाले महाभयंकर अतुल-पराक्रमी देवशत्रु शुम्भ तथा महाबली

* पा०—तां सर्वदेवा०।

जगद्विध्वंसिनि तस्मिन् महोग्रेऽतुलविक्रमे।
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाः पातालमाययुः ॥ ३५ ॥
एवं भगवती देवी सा नित्यापि पुनः पुनः।
सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् ॥ ३६ ॥
तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते।
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति ॥ ३७ ॥
व्याप्तं तयैतत्सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर।
महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया ॥ ३८ ॥
सैव काले महामारी सैव सृष्टिर्भवत्यजा।
स्थितिं करोति भूतानां सैव काले सनातनी ॥ ३९ ॥
भवकाले नृणां सैव लक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा गृहे।
सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥ ४० ॥

निशुम्भके युद्धमें देवीद्वारा मारे जानेपर शेष दैत्य पातालको चले आये॥ ३२—३५ ॥ राजन्! इस प्रकार भगवती अम्बिकादेवी नित्य होती हुई भी पुनः-पुनः प्रकट होकर जगत्की रक्षा करती हैं॥ ३६ ॥ वे ही इस विश्वको मोहित करतीं, वे ही जगत्को जन्म देतीं तथा वे ही प्रार्थना करनेपर संतुष्ट हो विज्ञान एवं समृद्धि प्रदान करती हैं॥ ३७॥ राजन्! महाप्रलयके समय महामारीका स्वरूप धारण करनेवाली वे महाकाली ही इस समस्त ब्रह्माण्डमें व्याप्त हैं॥ ३८ ॥ वे ही समय-समयपर महामारी होती और वे ही स्वयं अजन्मा होती हुई भी सृष्टिके रूपमें प्रकट होती हैं। वे सनातनी देवी ही समयानुसार सम्पूर्ण भूतोंकी रक्षा करती हैं॥ ३९ ॥ मनुष्योंके अभ्युदयके समय वे ही घरमें लक्ष्मीके रूपमें स्थित हो उन्नति प्रदान करती हैं और वे ही अभावके समय दरिद्रता बनकर विनाशका कारण होती हैं॥ ४० ॥

स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा।
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे गतिं* शुभाम्॥ ॐ॥ ४१॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये
फलस्तुतिर्नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥
उवाच २, अर्धश्लोकौ २, श्लोकाः ३७,
एवम् ४१, एवमादितः ६७१॥

पुष्प, धूप और गन्ध आदिसे पूजन करके उनकी स्तुति करनेपर वे धन, पुत्र, धार्मिक बुद्धि तथा उत्तम गति प्रदान करती हैं॥ ४१॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके
अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'फलस्तुति' नामक
बारहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १२॥

---

* पा०—तथा।

त्रयोदशोऽध्यायः

सुरथ और वैश्यको देवीका वरदान

ध्यानम्

ॐ बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम्।
पाशाङ्कुशवराभीतीर्धारयन्तीं शिवां भजे॥

'ॐ' ऋषिरुवाच॥ १॥

**एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम्।
एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत्॥ २॥
विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया।
तया त्वमेष वैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः॥ ३॥
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्ति चापरे।
तामुपैहि महाराज शरणं परमेश्वरीम्॥ ४॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा॥ ५॥**

जो उदयकालके सूर्यमण्डलकी-सी कान्ति धारण करनेवाली हैं, जिनके चार भुजाएँ और तीन नेत्र हैं तथा जो अपने हाथोंमें पाश, अंकुश, वर एवं अभयकी मुद्रा धारण किये रहती हैं, उन शिवादेवीका मैं ध्यान करता हूँ।

ऋषि कहते हैं—॥ १॥ राजन्! इस प्रकार मैंने तुमसे देवीके उत्तम माहात्म्यका वर्णन किया। जो इस जगत्को धारण करती हैं, उन देवीका ऐसा ही प्रभाव है॥ २॥ वे ही विद्या (ज्ञान) उत्पन्न करती हैं। भगवान् विष्णुकी मायास्वरूपा उन भगवतीके द्वारा ही तुम, ये वैश्य तथा अन्यान्य विवेकी जन मोहित होते हैं, मोहित हुए हैं तथा आगे भी मोहित होंगे। महाराज! तुम उन्हीं परमेश्वरीकी शरणमें जाओ॥ ३-४॥ आराधना करनेपर वे ही मनुष्योंको भोग, स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करती हैं॥ ५॥

मार्कण्डेय उवाच॥ ६ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा सुरथः स नराधिपः॥ ७ ॥
प्रणिपत्य महाभागं तमृषिं शंसितव्रतम्।
निर्विण्णोऽतिममत्वेन राज्यापहरणेन च॥ ८ ॥
जगाम सद्यस्तपसे स च वैश्यो महामुने।
संदर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसंस्थितः॥ ९ ॥
स च वैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्तं परं जपन्।
तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्तिं महीमयीम्॥ १० ॥
अर्हणां चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः।
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ॥ ११ ॥
ददतुस्तौ बलिं चैव निजगात्रासृगुक्षितम्।
एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः॥ १२ ॥
परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका॥ १३ ॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥ ६ ॥ क्रौष्टुकिजी! मेधामुनिके ये वचन सुनकर राजा सुरथने उत्तम व्रतका पालन करनेवाले उन महाभाग महर्षिको प्रणाम किया। वे अत्यन्त ममता और राज्यापहरणसे बहुत खिन्न हो चुके थे॥ ७-८ ॥ महामुने! इसलिये विरक्त होकर वे राजा तथा वैश्य तत्काल तपस्याको चले गये और वे जगदम्बाके दर्शनके लिये नदीके तटपर रहकर तपस्या करने लगे॥ ९ ॥ वे वैश्य उत्तम देवीसूक्तका जप करते हुए तपस्यामें प्रवृत्त हुए। वे दोनों नदीके तटपर देवीकी मिट्टीकी मूर्ति बनाकर पुष्प, धूप और हवन आदिके द्वारा उनकी आराधना करने लगे। उन्होंने पहले तो आहारको धीरे-धीरे कम किया; फिर बिलकुल निराहार रहकर देवीमें ही मन लगाये एकाग्रतापूर्वक उनका चिन्तन आरम्भ किया॥ १०-११ ॥ वे दोनों अपने शरीरके रक्तसे प्रोक्षित बलि देते हुए लगातार तीन वर्षतक संयमपूर्वक आराधना करते रहे॥ १२ ॥ इसपर प्रसन्न होकर जगत्को धारण करनेवाली चण्डिकादेवीने प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा॥ १३ ॥

देव्युवाच॥ १४॥

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन।
मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि तत्॥ १५॥

मार्कण्डेय उवाच॥ १६॥

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि।
अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्॥ १७॥
सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम्॥ १८॥

देव्युवाच॥ १९॥

स्वल्पैरहोभिर्नृपते स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान्॥ २०॥
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति॥ २१॥
मृतश्च भूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः॥ २२॥
सावर्णिको नाम* मनुर्भवान् भुवि भविष्यति॥ २३॥

देवी बोलीं—॥ १४॥ राजन्! तथा अपने कुलको आनन्दित करनेवाले वैश्य! तुमलोग जिस वस्तुकी अभिलाषा रखते हो, वह मुझसे माँगो। मैं संतुष्ट हूँ, अतः तुम्हें वह सब कुछ दूँगी॥ १५॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥ १६॥ तब राजाने दूसरे जन्ममें नष्ट न होनेवाला राज्य माँगा तथा इस जन्ममें भी शत्रुओंकी सेनाको बलपूर्वक नष्ट करके पुनः अपना राज्य प्राप्त कर लेनेका वरदान माँगा॥ १७॥ वैश्यका चित्त संसारकी ओरसे खिन्न एवं विरक्त हो चुका था और वे बड़े बुद्धिमान् थे; अतः उस समय उन्होंने तो ममता और अहंतारूप आसक्तिका नाश करनेवाला ज्ञान माँगा॥ १८॥

देवी बोलीं—॥ १९॥ राजन्! तुम थोड़े ही दिनोंमें शत्रुओंको मारकर अपना राज्य प्राप्त कर लोगे। अब वहाँ तुम्हारा राज्य स्थिर रहेगा॥ २०-२१॥ फिर मृत्युके पश्चात् तुम भगवान् विवस्वान् (सूर्य)-के अंशसे जन्म लेकर इस पृथ्वीपर सावर्णिक मनुके नामसे विख्यात होओगे॥ २२-२३॥

वैश्यवर्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः॥ २४॥
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति॥ २५॥

मार्कण्डेय उवाच॥ २६॥

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाभिलषितं वरम्॥ २७॥
बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता।
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः॥ २८॥
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः॥ २९॥
एवं देव्या वरं लब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः।
सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः॥ क्लीं ॐ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये सुरथ-वैश्ययोर्वरप्रदानं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

उवाच ६, अर्धश्लोकाः ११, श्लोकाः १२, एवम् २९, एवमादितः ७००॥ समस्ता उवाचमन्त्राः ५७, अर्धश्लोकाः ४२, श्लोकाः ५३५, अवदानानि॥ ६६॥

वैश्यवर्य! तुमने भी जिस वरको मुझसे प्राप्त करनेकी इच्छा की है, उसे देती हूँ। तुम्हें मोक्षके लिये ज्ञान प्राप्त होगा॥ २४-२५॥

मार्कण्डेयजी कहते हैं—॥ २६॥ इस प्रकार उन दोनोंको मनोवांछित वरदान देकर तथा उनके द्वारा भक्तिपूर्वक अपनी स्तुति सुनकर देवी अम्बिका तत्काल अन्तर्धान हो गयीं। इस तरह देवीसे वरदान पाकर क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ सुरथ सूर्यसे जन्म ले सावर्णि नामक मनु होंगे॥ २७—२९॥

इस प्रकार श्रीमार्कण्डेयपुराणमें सावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके अन्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'सुरथ और वैश्यको वरदान' नामक तेरहवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ १३॥

---

* पा०—मनुर्नाम।

उपसंहारः

इस प्रकार सप्तशतीका पाठ पूरा होनेपर पहले नवार्णजप करके फिर देवीसूक्तके पाठका विधान है; अतः यहाँ भी नवार्ण–विधि उद्‌धृत की जाती है। सब कार्य पहलेकी ही भाँति होंगे।

विनियोगः

श्रीगणपतिर्जयति। ॐ अस्य श्रीनवार्णमन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुरुद्रा ऋषयः, गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांसि, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवताः, ऐं बीजम्, ह्रीं शक्तिः, क्लीं कीलकम्, श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीप्रीत्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादिन्यासः

ब्रह्मविष्णुरुद्रऋषिभ्यो नमः, शिरसि। गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्छन्दोभ्यो नमः, मुखे। महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वतीदेवताभ्यो नमः, हृदि। ऐं बीजाय नमः, गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः, पादयोः। क्लीं कीलकाय नमः, नाभौ।

'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'—इति मूलेन करौ संशोध्य—

करन्यासः

ॐ ऐं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ क्लीं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ चामुण्डायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ विच्चे कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ ऐं हृदयाय नमः। ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा। ॐ क्लीं शिखायै वषट्। ॐ चामुण्डायै कवचाय हुम्। ॐ विच्चे नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे अस्त्राय फट्।

अक्षरन्यासः

ॐ ऐं नमः, शिखायाम्। ॐ ह्रीं नमः, दक्षिणनेत्रे। ॐ क्लीं नमः, वामनेत्रे। ॐ चां नमः, दक्षिणकर्णे। ॐ मुं नमः, वामकर्णे। ॐ डां नमः, दक्षिणनासापुटे। ॐ यैं नमः, वामनासापुटे। ॐ विं नमः, मुखे। ॐ च्चें नमः, गुह्ये।

'एवं विन्यस्याष्टवारं मूलेन व्यापकं कुर्यात्'

दिङ्न्यासः

ॐ ऐं प्राच्यै नमः। ॐ ऐं आग्नेय्यै नमः। ॐ ह्रीं दक्षिणायै नमः। ॐ ह्रीं

नैर्ऋत्यै नमः। ॐ क्लीं प्रतीच्यै नमः। ॐ क्लीं वायव्यै नमः। ॐ चामुण्डायै उदीच्यै नमः। ॐ चामुण्डायै ऐशान्यै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ऊर्ध्वायै नमः। ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे भूम्यै नमः।

ध्यानम्

खड्गं चक्रगदेषुचापपरिघाञ्छूलं भुशुण्डीं शिरः
शङ्खं संदधतीं करैस्त्रिनयनां सर्वाङ्गभूषावृताम्।
नीलाश्मद्युतिमास्यपाददशकां सेवे महाकालिकां
यामस्तौत्स्वपिते हरौ कमलजो हन्तुं मधुं कैटभम्॥ १ ॥
अक्षस्त्रक्परशुं गदेषुकुलिशं पद्मं धनुष्कुण्डिकां
दण्डं शक्तिमसिं च चर्म जलजं घण्टां सुराभाजनम्।
शूलं पाशसुदर्शने च दधतीं हस्तैः प्रसन्नाननां
सेवे सैरिभमर्दिनीमिह महालक्ष्मीं सरोजस्थिताम्॥ २ ॥
घण्टाशूलहलानि शङ्खमुसले चक्रं धनुः सायकं
हस्ताब्जैर्दधतीं घनान्तविलसच्छीतांशुतुल्यप्रभाम्।
गौरीदेहसमुद्भवां त्रिजगतामाधारभूतां महा-
पूर्वामत्र सरस्वतीमनुभजे शुम्भादिदैत्यार्दिनीम्॥ ३ ॥*

इस प्रकार न्यास और ध्यान करके मानसिक उपचारसे देवीकी पूजा करे। फिर १०८ या १००८ बार नवार्णमन्त्रका जप करना चाहिये। जप आरम्भ करनेके पहले **'ऐं ह्रीं अक्षमालिकायै नमः'** इस मन्त्रसे मालाकी पूजा करके इस प्रकार प्रार्थना करे—

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव॥
ॐ अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये॥

ॐ अक्षमालाधिपतये सुसिद्धिं देहि देहि सर्वमन्त्रार्थसाधिनि साधय साधय सर्वसिद्धिं परिकल्पय परिकल्पय मे स्वाहा।

इस प्रकार प्रार्थना करके जप आरम्भ करे । जप पूरा करके उसे भगवतीको

* विनियोग न्यास-वाक्य तथा ध्यानसम्बन्धी श्लोकोंके अर्थ पहले दिये जा चुके हैं।

समर्पित करते हुए कहे—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि॥

तत्पश्चात् फिर नीचे लिखे अनुसार न्यास करे—

करन्यासः

ॐ ह्रीं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ चं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ डिं मध्यमाभ्यां नमः । ॐ कां अनामिकाभ्यां नमः। ॐ यैं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ ह्रीं चण्डिकायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यासः

ॐ खड्गिनी शूलिनी घोरा गदिनी चक्रिणी तथा।
शङ्खिनी चापिनी बाणभुशुण्डीपरिघायुधा[1]॥ हृदयाय नमः।
ॐ शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥ शिरसे स्वाहा।
ॐ प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च चण्डिके रक्ष दक्षिणे।
भ्रामणेनात्मशूलस्य उत्तरस्यां तथेश्वरि॥ शिखायै वषट्।
ॐ सौम्यानि यानि रूपाणि त्रैलोक्ये विचरन्ति ते।
यानि चात्यर्थघोराणि तै रक्षास्मांस्तथा भुवम् ॥ कवचाय हुम्।
ॐ खड्गशूलगदादीनि यानि चास्त्राणि तेऽम्बिके।
करपल्लवसङ्गीनि तैरस्मान् रक्ष सर्वतः[2]॥ नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते[3]॥ अस्त्राय फट्।

ध्यानम्

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे[4]॥

---

१. इसका अर्थ पृष्ठ ७१ में है। २. इन चार श्लोकोंका अर्थ पृष्ठ १०४-१०५ में है। ३. इसका अर्थ पृष्ठ १६४ में है। ४. इसका अर्थ १७१ में है।

ऋग्वेदोक्तं देवीसूक्तम्

ॐ अहमित्यष्टर्चस्य सूक्तस्य वागाम्भृणी ऋषिः, सच्चित्सुखात्मकः सर्वगतः परमात्मा देवता, द्वितीयाया ऋचो जगती, शिष्टानां त्रिष्टुप् छन्दः, देवीमाहात्म्यपाठे विनियोगः।[१]

ध्यानम्

ॐ सिंहस्था शशिशेखरा मरकतप्रख्यैश्चतुर्भिर्भुजैः
शङ्खं चक्रधनुःशरांश्च दधती नेत्रैस्त्रिभिः शोभिता।
आमुक्ताङ्गदहारकङ्कणरणत्काञ्चीरणन्नूपुरा
दुर्गा दुर्गतिहारिणी भवतु नो रत्नोल्लसत्कुण्डला॥[२]

देवीसूक्तम्[३]

ॐ अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा॥ १॥

जो सिंहकी पीठपर विराजमान हैं, जिनके मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट है, जो मरकतमणिके समान कान्तिवाली अपनी चार भुजाओंमें शंख, चक्र, धनुष और बाण धारण करती हैं, तीन नेत्रोंसे सुशोभित होती हैं, जिनके भिन्न-भिन्न अंग बाँधे हुए बाजूबंद, हार, कंकण, खनखनाती हुई करधनी और रुनझुन करते हुए नूपुरोंसे विभूषित हैं तथा जिनके कानोंमें रत्नजटित कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं, वे भगवती दुर्गा हमारी दुर्गति दूर करनेवाली हों।

[महर्षि अम्भृणकी कन्याका नाम वाक् था। वह बड़ी ब्रह्मज्ञानिनी थी। उसने देवीके साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थी। उसीके ये उद्‌गार हैं—] मैं सच्चिदानन्दमयी सर्वात्मा देवी रुद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वेदेवगणोंके रूपमें विचरती हूँ। मैं ही मित्र और वरुण दोनोंको, इन्द्र और अग्निको तथा दोनों अश्विनीकुमारोंको धारण करती हूँ॥ १॥

---

१. इससे विनियोग करके निम्नांकित रूपका ध्यान करे ।

२. ध्यानके पश्चात् नीचे लिखे अनुसार वेदोक्त देवीसूक्तका पाठ करे ।

३. ये देवीसूक्तके आठ मन्त्र ऋग्वेदके अन्तर्गत मं० १० अ० १० सू० १२५ की आठ ऋचाएँ हैं।

अहं सोममाहनसं बिभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते॥ २॥
अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्य्यावेशयन्तीम्॥ ३॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः
प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि
श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि॥ ४॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं
देवेभिरुत मानुषेभिः।

मैं ही शत्रुओंके नाशक आकाशचारी देवता सोमको, त्वष्टा प्रजापतिको तथा पूषा और भगको भी धारण करती हूँ। जो हविष्यसे सम्पन्न हो देवताओंको उत्तम हविष्यकी प्राप्ति कराता है तथा उन्हें सोमरसके द्वारा तृप्त करता है, उस यजमानके लिये मैं ही उत्तम यज्ञका फल और धन प्रदान करती हूँ॥ २॥ मैं सम्पूर्ण जगत्की अधीश्वरी, अपने उपासकोंको धनकी प्राप्ति करानेवाली, साक्षात्कार करनेयोग्य परब्रह्मको अपनेसे अभिन्न रूपमें जाननेवाली तथा पूजनीय देवताओंमें प्रधान हूँ। मैं प्रपंचरूपसे अनेक भावोंमें स्थित हूँ। सम्पूर्ण भूतोंमें मेरा प्रवेश है। अनेक स्थानोंमें रहनेवाले देवता जहाँ-कहीं जो कुछ भी करते हैं, वह सब मेरे लिये करते हैं॥ ३॥ जो अन्न खाता है, वह मेरी शक्तिसे ही खाता है [क्योंकि मैं ही भोक्तृ—शक्ति हूँ]; इसी प्रकार जो देखता है, जो साँस लेता है तथा जो कही हुई बात सुनता है, वह मेरी ही सहायतासे उक्त सब कर्म करनेमें समर्थ होता है। जो मुझे इस रूपमें नहीं जानते, वे न जाननेके कारण ही दीन-दशाको प्राप्त होते जाते हैं। हे बहुश्रुत! मैं तुम्हें श्रद्धासे प्राप्त होनेवाले ब्रह्मतत्त्वका उपदेश करती हूँ, सुनो— ॥ ४॥ मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्योंद्वारा सेवित इस दुर्लभ तत्त्वका वर्णन करती हूँ। मैं जिस-जिस पुरुषकी रक्षा करना चाहती हूँ, उस-

यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि
तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्॥ ५ ॥
अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश॥ ६ ॥
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम
योनिरप्स्वन्तः समुद्रे।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वो-
तामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि॥ ७ ॥
अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना संबभूव॥ ८ ॥*

उसको सबकी अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देती हूँ। उसीको सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, परोक्षज्ञानसम्पन्न ऋषि तथा उत्तम मेधाशक्तिसे युक्त बनाती हूँ॥ ५॥ मैं ही ब्रह्मद्वेषी हिंसक असुरोंका वध करनेके लिये रुद्रके धनुषको चढ़ाती हूँ। मैं ही शरणागतजनोंकी रक्षाके लिये शत्रुओंसे युद्ध करती हूँ तथा अन्तर्यामीरूपसे पृथ्वी और आकाशके भीतर व्याप्त रहती हूँ॥ ६॥ मैं ही इस जगत्‌के पितारूप आकाशको सर्वाधिष्ठानस्वरूप परमात्माके ऊपर उत्पन्न करती हूँ। समुद्र (सम्पूर्ण भूतोंके उत्पत्तिस्थान परमात्मा)-में तथा जल (बुद्धिकी व्यापक वृत्तियों)-में मेरे कारण (कारणस्वरूप चैतन्य ब्रह्म)-की स्थिति है; अतएव मैं समस्त भुवनमें व्याप्त रहती हूँ तथा उस स्वर्गलोकका भी अपने शरीरसे स्पर्श करती हूँ॥ ७॥ मैं कारणरूपसे जब समस्त विश्वकी रचना आरम्भ करती हूँ, तब दूसरोंकी प्रेरणाके बिना स्वयं ही वायुकी भाँति चलती हूँ, स्वेच्छासे ही कर्ममें प्रवृत्त होती हूँ। मैं पृथ्वी और आकाश दोनोंसे परे हूँ। अपनी महिमासे ही मैं ऐसी हुई हूँ॥ ८॥

---

* इसके बाद तन्त्रोक्त देवीसूक्त दिया गया है, उसका भी पाठ करना चाहिये।

अथ तन्त्रोक्तं देवीसूक्तम्*

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम्॥ १ ॥
रौद्रायै नमो नित्यायै गौर्यै धात्र्यै नमो नमः।
ज्योत्स्नायै चेन्दुरूपिण्यै सुखायै सततं नमः॥ २ ॥
कल्याण्यै प्रणतां वृद्ध्यै सिद्ध्यै कुर्मो नमो नमः।
नैर्ऋत्यै भूभृतां लक्ष्म्यै शर्वाण्यै ते नमो नमः॥ ३ ॥
दुर्गायै दुर्गपारायै सारायै सर्वकारिण्यै।
ख्यात्यै तथैव कृष्णायै धूम्रायै सततं नमः॥ ४ ॥
अतिसौम्यातिरौद्रायै नतास्तस्यै नमो नमः।
नमो जगत्प्रतिष्ठायै देव्यै कृत्यै नमो नमः॥ ५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ६ ॥
या देवी सर्वभूतेषु चेतनेत्यभिधीयते।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ७ ॥
या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ८ ॥
या देवी सर्वभूतेषु निद्रारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ९ ॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १० ॥

* देवीसूक्तका अर्थ पाँचवें अध्याय (पृष्ठ ११०—११५)-में दिया गया है।

या देवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ ११॥
या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १२॥
या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १३॥
या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १४॥
या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १५॥
या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १६॥
या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १७॥
या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १८॥
या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ १९॥
या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २०॥
या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २१॥
या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २२॥

या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २३ ॥
या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २४ ॥
या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २५ ॥
या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २६ ॥
इन्द्रियाणामधिष्ठात्री भूतानां चाखिलेषु या।
भूतेषु सततं तस्यै व्याप्तिदेव्यै नमो नमः॥ २७ ॥
चितिरूपेण या कृत्स्नमेतद्व्याप्य स्थिता जगत्।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥ २८ ॥
स्तुता सुरैः पूर्वमभीष्टसंश्रया-
त्तथा सुरेन्द्रेण दिनेषु सेविता।
करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः॥ २९ ॥
या साम्प्रतं चोद्धतदैत्यतापितै-
रस्माभिरीशा च सुरैर्नमस्यते।
या च स्मृता तत्क्षणमेव हन्ति नः
सर्वापदो भक्तिविनम्रमूर्तिभिः॥ ३०॥*

* इसके बाद 'प्राधानिक' आदि तीनों रहस्योंका पाठ करे।

अथ प्राधानिकं रहस्यम्

ॐ अस्य श्रीसप्तशतीरहस्यत्रयस्य नारायण ऋषिरनुष्टुप्छन्दः, महाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यो देवता यथोक्तफलावाप्त्यर्थं जपे विनियोगः।

राजोवाच

भगवन्नवतारा मे चण्डिकायास्त्वयोदिताः।
एतेषां प्रकृतिं ब्रह्मन् प्रधानं वक्तुमर्हसि॥ १॥
आराध्यं यन्मया देव्याः स्वरूपं येन च द्विज।
विधिना ब्रूहि सकलं यथावत्प्रणतस्य मे॥ २॥

ऋषिरुवाच

इदं रहस्यं परममनाख्येयं प्रचक्षते।
भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं नराधिप॥ ३॥
सर्वस्याद्या महालक्ष्मीस्त्रिगुणा परमेश्वरी।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा सा व्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता॥ ४॥

ॐ सप्तशतीके इन तीनों रहस्योंके नारायण ऋषि, अनुष्टुप् छन्द तथा महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती देवता हैं। शास्त्रोक्त फलकी प्राप्तिके लिये जपमें इनका विनियोग होता है।

राजा बोले—भगवन्! आपने चण्डिकाके अवतारोंकी कथा मुझसे कही। ब्रह्मन्! अब इन अवतारोंकी प्रधान प्रकृतिका निरूपण कीजिये॥ १॥ द्विजश्रेष्ठ! मैं आपके चरणोंमें पड़ा हूँ। मुझे देवीके जिस स्वरूपकी और जिस विधिसे आराधना करनी है, वह सब यथार्थरूपसे बतलाइये॥ २॥

ऋषि कहते हैं—राजन्! यह रहस्य परम गोपनीय है। इसे किसीसे कहने-योग्य नहीं बतलाया गया है; किंतु तुम मेरे भक्त हो, इसलिये तुमसे न कहने-योग्य मेरे पास कुछ भी नहीं है॥ ३॥ त्रिगुणमयी परमेश्वरी महालक्ष्मी ही सबका आदि कारण हैं। वे ही दृश्य और अदृश्यरूपसे सम्पूर्ण विश्वको व्याप्त करके स्थित हैं॥ ४॥

मातुलुङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती।
नागं लिङ्गं च योनिं च बिभ्रती नृप मूर्धनि॥ ५ ॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा।
शून्यं तदखिलं स्वेन पूरयामास तेजसा॥ ६ ॥
शून्यं तदखिलं लोकं विलोक्य परमेश्वरी।
बभार परमं रूपं तमसा केवलेन हि॥ ७ ॥
सा भिन्नाञ्जनसंकाशा दंष्ट्राङ्कितवरानना।
विशाललोचना नारी बभूव तनुमध्यमा॥ ८ ॥
खड्गपात्रशिरःखेटैरलङ्कृतचतुर्भुजा।
कबन्धहारं शिरसा बिभ्राणा हि शिरःस्रजम्॥ ९ ॥
सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसी प्रमदोत्तमा।
नाम कर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमो नमः॥ १० ॥
तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम्।

राजन्! वे अपनी चार भुजाओंमें मातुलुंग (बिजौरेका फल), गदा, खेट (ढाल) एवं पानपात्र और मस्तकपर नाग, लिंग तथा योनि—इन वस्तुओंको धारण करती हैं॥ ५॥ तपाये हुए सुवर्णके समान उनकी कान्ति है, तपाये हुए सुवर्णके ही उनके भूषण हैं। उन्होंने अपने तेजसे इस शून्य जगत्को परिपूर्ण किया है॥ ६॥ परमेश्वरी महालक्ष्मीने इस सम्पूर्ण जगत्को शून्य देखकर केवल तमोगुणरूप उपाधिके द्वारा एक अन्य उत्कृष्ट रूप धारण किया॥ ७॥ वह रूप एक नारीके रूपमें प्रकट हुआ, जिसके शरीरकी कान्ति निखरे हुए काजलकी भाँति काले रंगकी थी, उसका श्रेष्ठ मुख दाढ़ोंसे सुशोभित था। नेत्र बड़े-बड़े और कमर पतली थी॥ ८॥ उसकी चार भुजाएँ ढाल, तलवार, प्याले और कटे हुए मस्तकसे सुशोभित थीं। वह वक्षःस्थलपर कबन्ध (धड़)-की तथा मस्तकपर मुण्डोंकी माला धारण किये हुए थी॥ ९॥ इस प्रकार प्रकट हुई स्त्रियोंमें श्रेष्ठ तामसीदेवीने महालक्ष्मीसे कहा—'माताजी! आपको नमस्कार है। मुझे मेरा नाम और कर्म बताइये'॥ १०॥ तब महालक्ष्मीने स्त्रियोंमें श्रेष्ठ उस

ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते॥ ११॥
महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा।
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया॥ १२॥
इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः।
एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम्॥ १३॥
तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं नृप।
सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ॥ १४॥
अक्षमालाङ्कुशधरा वीणापुस्तकधारिणी।
सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ॥ १५॥
महाविद्या महावाणी भारती वाक् सरस्वती।
आर्या ब्राह्मी कामधेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी॥ १६॥
अथोवाच महालक्ष्मीर्महाकालीं सरस्वतीम्।
युवां जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपतः॥ १७॥

तामसीदेवीसे कहा—'मैं तुम्हें नाम प्रदान करती हूँ और तुम्हारे जो-जो कर्म हैं, उनको भी बतलाती हूँ,॥ ११॥ महामाया, महाकाली, महामारी, क्षुधा, तृषा, निद्रा, तृष्णा, एकवीरा, कालरात्रि तथा दुरत्यया— ॥ १२॥ ये तुम्हारे नाम हैं, जो कर्मोंके द्वारा लोकमें चरितार्थ होंगे। इन नामोंके द्वारा तुम्हारे कर्मोंको जानकर जो उनका पाठ करता है, वह सुख भोगता है'॥ १३॥ राजन्! महाकालीसे यों कहकर महालक्ष्मीने अत्यन्त शुद्ध सत्त्वगुणके द्वारा दूसरा रूप धारण किया, जो चन्द्रमाके समान गौरवर्ण था॥ १४॥ वह श्रेष्ठ नारी अपने हाथोंमें अक्षमाला, अंकुश, वीणा तथा पुस्तक धारण किये हुए थी। महालक्ष्मीने उसे भी नाम प्रदान किये॥ १५॥ महाविद्या, महावाणी, भारती, वाक्, सरस्वती, आर्या, ब्राह्मी, कामधेनु, वेदगर्भा और धीश्वरी (बुद्धिकी स्वामिनी)—ये तुम्हारे नाम होंगे॥ १६॥ तदनन्तर महालक्ष्मीने महाकाली और महासरस्वतीसे कहा—'देवियो! तुम दोनों अपने-अपने गुणोंके योग्य स्त्री-पुरुषके जोड़े उत्पन्न करो'॥ १७॥

इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम्।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ॥ १८॥

ब्रह्मन् विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम्।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता च तां स्त्रियम्॥ १९॥

महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह।
एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते॥ २०॥

नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम्।
जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम्॥ २१॥

स रुद्रः शंकरः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषाक्षरा स्वरा॥ २२॥

सरस्वती स्त्रियं गौरीं कृष्णं च पुरुषं नृप।
जनयामास नामानि तयोरपि वदामि ते॥ २३॥

उन दोनोंसे यों कहकर महालक्ष्मीने पहले स्वयं ही स्त्री-पुरुषका एक जोड़ा उत्पन्न किया। वे दोनों हिरण्यगर्भ (निर्मल ज्ञानसे सम्पन्न) सुन्दर तथा कमलके आसनपर विराजमान थे। उनमेंसे एक स्त्री थी और दूसरा पुरुष॥ १८॥ तत्पश्चात् माता महालक्ष्मीने पुरुषको ब्रह्मन्! विधे! विरिंच! तथा धातः! इस प्रकार सम्बोधित किया और स्त्रीको श्री! पद्मा! कमला! लक्ष्मी! इत्यादि नामोंसे पुकारा॥ १९॥ इसके बाद महाकाली और महासरस्वतीने भी एक-एक जोड़ा उत्पन्न किया। इनके भी रूप और नाम मैं तुम्हें बतलाता हूँ॥ २०॥ महाकालीने कण्ठमें नील चिह्नसे युक्त, लाल भुजा, श्वेत शरीर और मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण करनेवाले पुरुषको तथा गोरे रंगकी स्त्रीको जन्म दिया॥ २१॥ वह पुरुष रुद्र, शंकर, स्थाणु, कपर्दी और त्रिलोचनके नामसे प्रसिद्ध हुआ तथा स्त्रीके त्रयी, विद्या, कामधेनु, भाषा, अक्षरा और स्वरा— ये नाम हुए॥ २२॥ राजन्! महासरस्वतीने गोरे रंगकी स्त्री और श्याम रंगके पुरुषको प्रकट किया। उन दोनोंके नाम भी मैं तुम्हें बतलाता हूँ॥ २३॥

विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः।
उमा गौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगा शिवा॥ २४॥

एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे।
चक्षुष्मन्तो नु पश्यन्ति नेतरेऽतद्विदो जनाः॥ २५॥

ब्रह्मणे प्रददौ पत्नीं महालक्ष्मीर्नृप त्रयीम्।
रुद्राय गौरीं वरदां वासुदेवाय च श्रियम्॥ २६॥

स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत्।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद् गौर्या सह वीर्यवान्॥ २७॥

अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्नृप।
महाभूतात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ २८॥

पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः।
संजहार जगत्सर्वं सह गौर्या महेश्वरः॥ २९॥

उनमें पुरुषके नाम विष्णु, कृष्ण, हृषीकेश, वासुदेव और जनार्दन हुए तथा स्त्री उमा, गौरी, सती, चण्डी, सुन्दरी, सुभगा और शिवा—इन नामोंसे प्रसिद्ध हुई॥ २४॥ इस प्रकार तीनों युवतियाँ ही तत्काल पुरुषरूपको प्राप्त हुईं। इस बातको ज्ञाननेत्रवाले लोग ही समझ सकते हैं। दूसरे अज्ञानीजन इस रहस्यको नहीं जान सकते॥ २५॥ राजन्! महालक्ष्मीने त्रयीविद्यारूपा सरस्वतीको ब्रह्माके लिये पत्नीरूपमें समर्पित किया, रुद्रको वरदायिनी गौरी तथा भगवान् वासुदेवको लक्ष्मी दे दी॥ २६॥ इस प्रकार सरस्वतीके साथ संयुक्त होकर ब्रह्माजीने ब्रह्माण्डको उत्पन्न किया और परम पराक्रमी भगवान् रुद्रने गौरीके साथ मिलकर उसका भेदन किया॥ २७॥ राजन्! उस ब्रह्माण्डमें प्रधान (महत्तत्त्व) आदि कार्यसमूह—पंचमहाभूतात्मक समस्त स्थावर-जंगमरूप जगत्की उत्पत्ति हुई॥ २८॥ फिर लक्ष्मीके साथ भगवान् विष्णुने उस जगत्का पालन-पोषण किया और प्रलयकालमें गौरीके साथ महेश्वरने उस सम्पूर्ण जगत्का संहार किया॥ २९॥

महालक्ष्मीर्महाराज सर्वसत्त्वमयीश्वरी।
निराकारा च साकारा सैव नानाभिधानभृत्॥ ३०॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्ना नान्येन केनचित्॥ ॐ॥ ३१॥

इति प्राधानिकं रहस्यं सम्पूर्णम्।*

महाराज! महालक्ष्मी ही सर्वसत्त्वमयी तथा सब सत्त्वोंकी अधीश्वरी हैं। वे ही निराकार और साकाररूपमें रहकर नाना प्रकारके नाम धारण करती हैं॥ ३०॥ सगुणवाचक सत्य, ज्ञान, चित्, महामाया आदि नामान्तरोंसे इन महालक्ष्मीका निरूपण करना चाहिये। केवल एक नाम (महालक्ष्मीमात्र)-से अथवा अन्य प्रत्यक्ष आदि प्रमाणसे उनका वर्णन नहीं हो सकता॥ ३१॥

---

* प्रथम रहस्यमें पराशक्ति महालक्ष्मीके स्वरूपका प्रतिपादन किया गया है; महालक्ष्मी ही देवीकी समस्त विकृतियों (अवतारों)-की प्रधान प्रकृति हैं, अतएव इस प्रकरणको प्राकृतिक या प्राधानिक रहस्य कहते हैं। इसके अनुसार महालक्ष्मी ही सब प्रपंच तथा सम्पूर्ण अवतारोंका आदि कारण हैं। तीनों गुणोंकी साम्यावस्थारूपा प्रकृति भी उनसे भिन्न नहीं है। स्थूल-सूक्ष्म, दृश्य-अदृश्य अथवा व्यक्त-अव्यक्त—सब उन्हींके स्वरूप हैं। वे सर्वत्र व्यापक हैं। अस्ति, भाति, प्रिय, नाम और रूप—सब वे ही हैं। वे सच्चिदानन्दमयी परमेश्वरी सूक्ष्मरूपसे सर्वत्र व्याप्त होती हुई भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये परम दिव्य चिन्मय सगुणरूपसे भी सदा विराजमान रहती हैं। उनके उस श्रीविग्रहकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति है। वे अपने चार हाथोंमें मातुलुंग (बिजौरा), गदा, खेट (ढाल) और पानपात्र धारण करती हैं तथा मस्तकपर नाग, लिंग और योनि धारण किये रहती हैं। भुवनेश्वरी-संहिताके अनुसार मातुलुंग कर्मराशिका, गदा क्रियाशक्तिका, खेट ज्ञानशक्तिका और पानपात्र तुरीय वृत्ति (अपने सच्चिदानन्दमय स्वरूपमें स्थिति)-का सूचक है। इसी प्रकार नागसे कालका, योनिसे प्रकृतिका और लिंगसे पुरुषका ग्रहण होता है। तात्पर्य यह कि प्रकृति, पुरुष और काल—तीनोंका अधिष्ठान परमेश्वरी महालक्ष्मी ही हैं। उक्त चतुर्भुजा महालक्ष्मीके किस हाथमें कौन-से आयुध हैं, इसमें भी मतभेद है।

अथ वैकृतिकं रहस्यम्

ऋषिरुवाच

ॐ त्रिगुणा तामसी देवी सात्त्विकी या त्रिधोदिता।
सा शर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीर्यते॥ १॥
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाम्बुजासनः॥ २॥

ऋषि कहते हैं—राजन्! पहले जिन सत्त्वप्रधाना त्रिगुणमयी महालक्ष्मीके तामसी आदि भेदसे तीन स्वरूप बतलाये गये, वे ही शर्वा, चण्डिका, दुर्गा, भद्रा और भगवती आदि अनेक नामोंसे कही जाती हैं॥ १॥ तमोगुणमयी महाकाली भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा कही गयी हैं। मधु और कैटभका नाश करनेके लिये ब्रह्माजीने जिनकी स्तुति की थी, उन्हींका नाम महाकाली है॥ २॥

रेणुका-माहात्म्यमें बताया गया है, दाहिनी ओरके नीचेके हाथमें पानपात्र और ऊपरके हाथमें गदा है। बायीं ओरके ऊपरके हाथमें खेट तथा नीचेके हाथमें श्रीफल है, परंतु वैकृतिक रहस्यमें 'दक्षिणाधःकरक्रमात्' कहकर जो क्रम दिखाया गया है, उसके अनुसार दाहिनी ओरके निचले हाथमें मातुलुंग, ऊपरवाले हाथमें गदा, बायीं ओरके ऊपरवाले हाथमें खेट तथा नीचेवाले हाथमें पानपात्र है। चतुर्भुजा महालक्ष्मीने क्रमशः तमोगुण और सत्त्वगुणरूप उपाधिके द्वारा अपने दो रूप और प्रकट किये, जिनकी क्रमशः महाकाली और महासरस्वतीके नामसे प्रसिद्धि हुई। ये दोनों सप्तशतीके प्रथम चरित्र और उत्तर चरित्रमें वर्णित महाकाली और महासरस्वतीसे भिन्न हैं; क्योंकि ये दोनों ही चतुर्भुजा हैं और उक्त चरित्रोंमें वर्णित महाकालीके दस तथा महासरस्वतीके आठ भुजाएँ हैं। चतुर्भुजा महाकालीके हाथोंमें खड्ग, पानपात्र, मस्तक और ढाल हैं; इनका क्रम भी पूर्ववत् ही है। चतुर्भुजा सरस्वतीके हाथोंमें अक्षमाला, अंकुश, वीणा और पुस्तक शोभा पाते हैं। इनका भी पहले-जैसा ही क्रम है। फिर इन तीनों देवियोंने स्त्री-पुरुषका एक-एक जोड़ा उत्पन्न किया। महाकालीसे शंकर और सरस्वती, महालक्ष्मीसे ब्रह्मा और लक्ष्मी तथा महासरस्वतीसे विष्णु और गौरीका प्रादुर्भाव हुआ। इनमें लक्ष्मी विष्णुको, गौरी शंकरको तथा सरस्वती ब्रह्माजीको प्राप्त हुईं। पत्नीसहित ब्रह्माने सृष्टि, विष्णुने पालन और रुद्रने संहारका कार्य सँभाला।

दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा।
विशालया राजमाना त्रिंशल्लोचनमालया॥ ३॥

स्फुरद्दशनदंष्ट्रा सा भीमरूपापि भूमिप।
रूपसौभाग्यकान्तीनां सा प्रतिष्ठा महाश्रियः॥ ४॥

खड्गबाणगदाशूलचक्रशङ्खभुशुण्डिभृत्।
परिघं कार्मुकं शीर्षं निश्च्योतद्रुधिरं दधौ॥ ५॥

उनके दस मुख, दस भुजाएँ और दस पैर हैं। वे काजलके समान काले रंगकी हैं तथा तीस नेत्रोंकी विशाल पंक्तिसे सुशोभित होती हैं॥ ३॥ भूपाल! उनके दाँत और दाढ़ें चमकती रहती हैं। यद्यपि उनका रूप भयंकर है, तथापि वे रूप, सौभाग्य, कान्ति एवं महती सम्पदाकी अधिष्ठान (प्राप्तिस्थान) हैं॥ ४॥ वे अपने हाथोंमें खड्ग, बाण, गदा, शूल, चक्र, शंख, भुशुण्डि, परिघ, धनुष तथा जिससे रक्त चूता रहता है, ऐसा कटा हुआ मस्तक धारण करती हैं॥ ५॥

इन अवतारोंका क्रम इस प्रकार है—

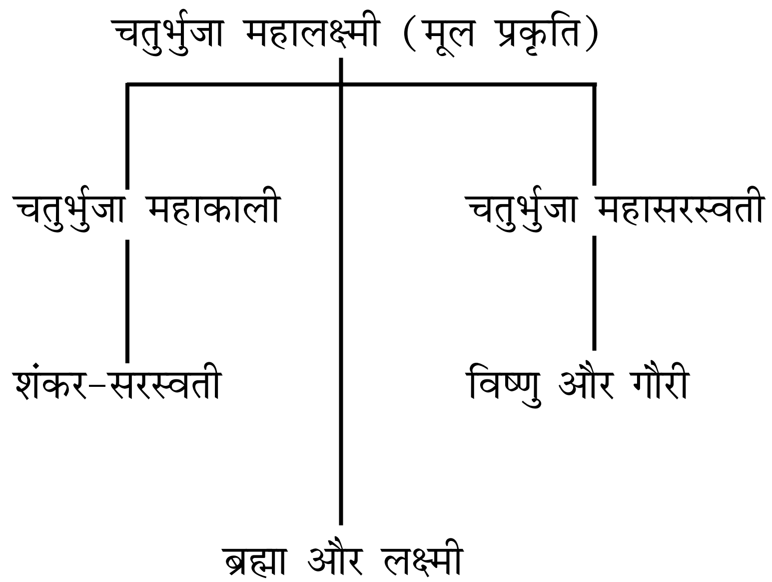

एषा सा वैष्णवी माया महाकाली दुरत्यया।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम्॥ ६ ॥

सर्वदेवशरीरेभ्यो याऽऽविर्भूतामितप्रभा।
त्रिगुणा सा महालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी॥ ७ ॥

श्वेतानना नीलभुजा सुश्वेतस्तनमण्डला।
रक्तमध्या रक्तपादा नीलजङ्घोरुरुन्मदा॥ ८ ॥

सुचित्रजघना चित्रमाल्याम्बरविभूषणा।
चित्रानुलेपना कान्तिरूपसौभाग्यशालिनी॥ ९ ॥

अष्टादशभुजा पूज्या सा सहस्रभुजा सती।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात्॥ १० ॥

अक्षमाला च कमलं बाणोऽसिः कुलिशं गदा।
चक्रं त्रिशूलं परशुः शङ्खो घण्टा च पाशकः॥ ११ ॥

ये महाकाली भगवान् विष्णुकी दुस्तर माया हैं। आराधना करनेपर ये चराचर जगत्को अपने उपासकके अधीन कर देती हैं॥ ६॥ सम्पूर्ण देवताओंके अंगोंसे जिनका प्रादुर्भाव हुआ था, वे अनन्त कान्तिसे युक्त साक्षात् महालक्ष्मी हैं। उन्हें ही त्रिगुणमयी प्रकृति कहते हैं तथा वे ही महिषासुरका मर्दन करनेवाली हैं॥ ७॥ उनका मुख गोरा, भुजाएँ श्याम, स्तनमण्डल अत्यन्त श्वेत, कटिभाग और चरण लाल तथा जंघा और पिंडली नीले रंगकी हैं। अजेय होनेके कारण उनको अपने शौर्यका अभिमान है॥ ८॥ कटिके आगेका भाग बहुरंगे वस्त्रसे आच्छादित होनेके कारण अत्यन्त सुन्दर एवं विचित्र दिखायी देता है। उनकी माला, वस्त्र, आभूषण तथा अंगराग सभी विचित्र हैं। वे कान्ति, रूप और सौभाग्यसे सुशोभित हैं॥ ९॥ यद्यपि उनकी हजारों भुजाएँ हैं, तथापि उन्हें अठारह भुजाओंसे युक्त मानकर उनकी पूजा करनी चाहिये। अब उनके दाहिनी ओरके निचले हाथोंसे लेकर बायीं ओरके निचले हाथोंतकमें क्रमशः जो अस्त्र हैं, उनका वर्णन किया जाता है॥ १०॥ अक्षमाला, कमल, बाण, खड्ग, वज्र, गदा,

शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं पानपात्रं कमण्डलुः।
अलङ्कृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम्॥ १२॥
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमां नृप।
पूजयेत्सर्वलोकानां स देवानां प्रभुर्भवेत्॥ १३॥
गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया।
साक्षात्सरस्वती प्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हिणी॥ १४॥
दधौ चाष्टभुजा बाणमुसले शूलचक्रभृत्।
शङ्खं घण्टां लाङ्गलं च कार्मुकं वसुधाधिप॥ १५॥
एषा सम्पूजिता भक्त्या सर्वज्ञत्वं प्रयच्छति।
निशुम्भमथिनी देवी शुम्भासुरनिबर्हिणी॥ १६॥
इत्युक्तानि स्वरूपाणि मूर्तीनां तव पार्थिव।
उपासनं जगन्मातुः पृथगासां निशामय॥ १७॥

चक्र, त्रिशूल, परशु, शंख, घण्टा, पाश, शक्ति, दण्ड, चर्म (ढाल), धनुष, पानपात्र और कमण्डलु—इन आयुधोंसे उनकी भुजाएँ विभूषित हैं। वे कमलके आसनपर विराजमान हैं, सर्वदेवमयी हैं तथा सबकी ईश्वरी हैं। राजन्! जो इन महालक्ष्मीदेवीका पूजन करता है, वह सब लोकों तथा देवताओंका भी स्वामी होता है॥ ११—१३॥

जो एकमात्र सत्त्वगुणके आश्रित हो पार्वतीजीके शरीरसे प्रकट हुई थीं तथा जिन्होंने शुम्भ नामक दैत्यका संहार किया था, वे साक्षात् सरस्वती कही गयी हैं॥ १४॥ पृथ्वीपते! उनके आठ भुजाएँ हैं तथा वे अपने हाथोंमें क्रमशः बाण, मुसल, शूल, चक्र, शंख, घण्टा, हल एवं धनुष धारण करती हैं॥ १५॥ ये सरस्वतीदेवी, जो निशुम्भका मर्दन तथा शुम्भासुरका संहार करनेवाली हैं, भक्तिपूर्वक पूजित होनेपर सर्वज्ञता प्रदान करती हैं॥ १६॥

राजन्! इस प्रकार तुमसे महाकाली आदि तीनों मूर्तियोंके स्वरूप बतलाये, अब जगन्माता महालक्ष्मीकी तथा इन महाकाली आदि तीनों मूर्तियोंकी पृथक्-पृथक् उपासना श्रवण करो॥ १७॥

महालक्ष्मीर्यदा पूज्या महाकाली सरस्वती।
दक्षिणोत्तरयोः पूज्ये पृष्ठतो मिथुनत्रयम्॥ १८ ॥
विरञ्चिः स्वरया मध्ये रुद्रो गौर्या च दक्षिणे।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम्॥ १९ ॥
अष्टादशभुजा मध्ये वामे चास्या दशानना।
दक्षिणेऽष्टभुजा लक्ष्मीर्महतीति समर्चयेत्॥ २० ॥
अष्टादशभुजा चैषा यदा पूज्या नराधिप।
दशानना चाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा॥ २१ ॥
कालमृत्यू च सम्पूज्यौ सर्वारिष्टप्रशान्तये।
यदा चाष्टभुजा पूज्या शुम्भासुरनिबर्हिणी॥ २२ ॥

जब महालक्ष्मीकी पूजा करनी हो, तब उन्हें मध्यमें स्थापित करके उनके दक्षिण और वामभागमें क्रमशः महाकाली और महासरस्वतीका पूजन करना चाहिये और पृष्ठभागमें तीनों युगल देवताओंकी पूजा करनी चाहिये॥ १८॥ महालक्ष्मीके ठीक पीछे मध्यभागमें सरस्वतीके साथ ब्रह्माका पूजन करे। उनके दक्षिणभागमें गौरीके साथ रुद्रकी पूजा करे तथा वामभागमें लक्ष्मीसहित विष्णुका पूजन करे। महालक्ष्मी आदि तीनों देवियोंके सामने निम्नांकित तीन देवियोंकी भी पूजा करनी चाहिये॥ १९॥ मध्यस्थ महालक्ष्मीके आगे मध्यभागमें अठारह भुजाओंवाली महालक्ष्मीका पूजन करे। उनके वामभागमें दस मुखोंवाली महाकालीका तथा दक्षिणभागमें आठ भुजाओंवाली महासरस्वतीका पूजन करे॥ २०॥ राजन्! जब केवल अठारह भुजाओंवाली महालक्ष्मीका अथवा दशमुखी कालीका या अष्टभुजा सरस्वतीका पूजन करना हो, तब सब अरिष्टोंकी शान्तिके लिये इनके दक्षिणभागमें कालकी और वामभागमें मृत्युकी भी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। जब शुम्भासुरका संहार करनेवाली अष्टभुजादेवीकी पूजा करनी हो, तब उनके साथ उनकी नौ शक्तियोंका और दक्षिणभागमें रुद्र एवं वामभागमें गणेशजीका भी पूजन करना चाहिये (ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री, शिवदूती तथा चामुण्डा—ये नौ शक्तियाँ हैं)।

नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तदा रुद्रविनायकौ।
नमो देव्या इति स्तोत्रैर्महालक्ष्मीं समर्चयेत्॥ २३॥

अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः।
अष्टादशभुजा चैषा पूज्या महिषमर्दिनी॥ २४॥

महालक्ष्मीर्महाकाली सैव प्रोक्ता सरस्वती।
ईश्वरी पुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी॥ २५॥

महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः।
पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्॥ २६॥

अर्घ्यादिभिरलङ्कारैर्गन्धपुष्पैस्तथाक्षतैः।
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्नानाभक्ष्यसमन्वितैः॥ २७॥

रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरया नृप।
(बलिमांसादिपूजेयं विप्रवर्ज्या मयेरिता॥

'नमो देव्यै……' इस स्तोत्रसे महालक्ष्मीकी पूजा करनी चाहिये॥ २१—२३॥ तथा उनके तीन अवतारोंकी पूजाके समय उनके चरित्रोंमें जो स्तोत्र और मन्त्र आये हैं, उन्हींका उपयोग करना चाहिये। अठारह भुजाओंवाली महिषासुर-मर्दिनी महालक्ष्मी ही विशेषरूपसे पूजनीय हैं; क्योंकि वे ही महालक्ष्मी, महाकाली तथा महासरस्वती कहलाती हैं। वे ही पुण्य-पापोंकी अधीश्वरी तथा सम्पूर्ण लोकोंकी महेश्वरी हैं॥ २४-२५॥ जिसने महिषासुरका अन्त करनेवाली महालक्ष्मीकी भक्तिपूर्वक आराधना की है, वही संसारका स्वामी है। अतः जगत्‌को धारण करनेवाली भक्तवत्सला भगवती चण्डिकाकी अवश्य पूजा करनी चाहिये॥ २६॥

अर्घ्य आदिसे, आभूषणोंसे, गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त नैवेद्योंसे, रक्तसिंचित बलिसे, मांससे तथा मदिरासे

तेषां किल सुरामांसैर्नोक्ता पूजा नृप क्वचित्।)
प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना॥ २८॥

सकर्पूरैश्च ताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः।
वामभागेऽग्रतो देव्याश्छिन्नशीर्षं महासुरम्॥ २९॥

पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया।
दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम्॥ ३०॥

वाहनं पूजयेद्देव्या धृतं येन चराचरम्।
कुर्याच्च स्तवनं धीमांस्तस्या एकाग्रमानसः॥ ३१॥

भी देवीका पूजन होता है।* (राजन्! बलि और मांस आदिसे की जानेवाली पूजा ब्राह्मणोंको छोड़कर बतायी गयी है। उनके लिये मांस और मदिरासे कहीं भी पूजाका विधान नहीं है।) प्रणाम, आचमनके योग्य जल, सुगन्धित चन्दन, कपूर तथा ताम्बूल आदि सामग्रियोंको भक्तिभावसे निवेदन करके देवीकी पूजा करनी चाहिये। देवीके सामने बायें भागमें कटे मस्तकवाले महादैत्य महिषासुरका पूजन करना चाहिये, जिसने भगवतीके साथ सायुज्य प्राप्त कर लिया। इसी प्रकार देवीके सामने दक्षिण भागमें उनके वाहन सिंहका पूजन करना चाहिये, जो सम्पूर्ण धर्मका प्रतीक एवं षड्विध ऐश्वर्यसे युक्त है। उसीने इस चराचर जगत्को धारण कर रखा है।

तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष एकाग्रचित्त हो देवीकी स्तुति करे। फिर हाथ जोड़कर तीनों पूर्वोक्त चरित्रोंद्वारा भगवतीका स्तवन करे। यदि कोई एक ही चरित्रसे स्तुति करना चाहे तो केवल मध्यम चरित्रके पाठसे कर ले; किंतु प्रथम और उत्तर चरित्रोंमेंसे एकका पाठ न करे। आधे चरित्रका भी पाठ करना मना है। जो आधे चरित्रका पाठ करता है, उसका पाठ सफल नहीं होता। पाठ-समाप्तिके बाद साधक प्रदक्षिणा और

---

* जो लोग मांस और मदिराका व्यवहार करते हैं, उन्हीं लोगोंके लिये मांस-मदिराद्वारा पूजनका विधान है। शेष लोगोंको मांस-मदिरा आदिके द्वारा पूजा नहीं करनी चाहिये।

ततः कृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः।
एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह॥ ३२॥

चरितार्धं तु न जपेज्जपञ्छिद्रमवाप्नुयात्।
प्रदक्षिणानमस्कारान् कृत्वा मूर्ध्नि कृताञ्जलिः॥ ३३॥

क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः।
प्रतिश्लोकं च जुहुयात्पायसं तिलसर्पिषा॥ ३४॥

जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वा चण्डिकायै शुभं हविः।
भूयो नामपदैर्देवीं पूजयेत्सुसमाहितः॥ ३५॥

प्रयतः प्राञ्जलिः प्रह्वः प्रणम्यारोप्य चात्मनि।
सुचिरं भावयेदीशां चण्डिकां तन्मयो भवेत्॥ ३६॥

एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम्।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात्॥ ३७॥

नमस्कारकर तथा आलस्य छोड़कर जगदम्बाके उद्देश्यसे मस्तकपर हाथ जोड़े और उनसे बारंबार त्रुटियों या अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे। सप्तशतीका प्रत्येक श्लोक मन्त्ररूप है, उससे तिल और घृत मिली हुई खीरकी आहुति दे॥ २७—३४॥ अथवा सप्तशतीमें जो स्तोत्र आये हैं, उन्हींके मन्त्रोंसे चण्डिकाके लिये पवित्र हविष्यका हवन करे। होमके पश्चात् एकाग्रचित्त हो महालक्ष्मीदेवीके नाम-मन्त्रोंको उच्चारण करते हुए पुनः उनकी पूजा करे॥ ३५॥ तत्पश्चात् मन और इन्द्रियोंको वशमें रखते हुए हाथ जोड़ विनीतभावसे देवीको प्रणाम करे और अन्तःकरणमें स्थापित करके उन सर्वेश्वरी चण्डिकादेवीका देरतक चिन्तन करे। चिन्तन करते-करते उन्हींमें तन्मय हो जाय॥ ३६॥ इस प्रकार जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिपूर्वक परमेश्वरीका पूजन करता है, वह मनोवांछित भोगोंको भोगकर अन्तमें देवीका सायुज्य प्राप्त करता है॥ ३७॥

योन पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम्।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्परमेश्वरी॥ ३८॥

तस्मात्पूजय भूपाल सर्वलोकमहेश्वरीम्।
यथोक्तेन विधानेन चण्डिकां सुखमाप्स्यसि॥ ३९॥

इति वैकृतिकं रहस्यं सम्पूर्णम्।

जो भक्तवत्सला चण्डीका प्रतिदिन पूजन नहीं करता, भगवती परमेश्वरी उसके पुण्योंको जलाकर भस्म कर देती हैं॥ ३८॥ इसलिये राजन्! तुम सर्वलोकमहेश्वरी चण्डिकाका शास्त्रोक्त विधिसे पूजन करो। उससे तुम्हें सुख मिलेगा*॥ ३९॥

---

* पूर्वोक्त प्राकृतिक या प्राधानिक रहस्यमें कारणात्मक प्रकृतिभूता महालक्ष्मीके स्वरूप तथा अवतारोंका वर्णन किया गया। इस प्रकरणमें विशेषरूपसे प्रकृतिसहित विकृतियोंके ध्यान, पूजन, पूजनोपचार तथा पूजनकी महिमाका वर्णन हुआ है; अतः इसे वैकृतिक रहस्य कहते हैं। इसमें पहले सप्तशतीके तीन चरित्रोंमें वर्णित महाकाली, महालक्ष्मी तथा महासरस्वतीके ध्यानका वर्णन है; यहाँ महाकाली दशभुजा, महालक्ष्मी अष्टादशभुजा तथा महासरस्वती अष्टभुजा हैं। इनके आयुधोंका क्रम पहले बताये अनुसार दाहिने भागके निचले हाथसे लेकर क्रमशः ऊपरवाले हाथोंमें, फिर वामभागके ऊपरवाले हाथसे लेकर नीचेवाले हाथतक समझना चाहिये। जैसे महाकालीके दस हाथोंमें पाँच दाहिने और पाँच बायें हैं। दाहिनेवाले हाथोंमें क्रमशः नीचेसे ऊपरतक खड्ग, बाण, गदा, शूल और चक्र हैं; तथा बायें हाथोंमें ऊपरसे नीचेतक क्रमशः शंख, भुशुण्डि, परिघ, धनुष और मस्तक हैं। इसी तरह अष्टादशभुजा महालक्ष्मीके नौ दाहिने हाथोंमें नीचेकी ओरसे क्रमशः अक्षमाला, कमल, बाण, खड्ग, वज्र, गदा, चक्र, त्रिशूल और परशु हैं तथा

बायें हाथोंमें ऊपरसे नीचेतक शंख, घण्टा, पाश, शक्ति, दण्ड, ढाल, धनुष, पानपात्र और कमण्डलु हैं। अष्टभुजा महासरस्वतीके भी चार दाहिने हाथोंमें पूर्वोक्त क्रमसे बाण, मुसल, शूल और चक्र हैं तथा बायें हाथोंमें शंख, घण्टा, हल और धनुष हैं। इन तीनोंके ध्यानके विषयमें कही हुई अन्य सारी बातें स्पष्ट हैं। तत्पश्चात् इन सबकी उपासनाका क्रम यों बतलाया गया है—बीचमें चतुर्भुजा महालक्ष्मीको स्थापित करके उनके दक्षिण भागमें चतुर्भुजा महाकाली तथा वामभागमें चतुर्भुजा महासरस्वतीकी स्थापना करे। महाकालीके पृष्ठभागमें रुद्र-गौरी, महालक्ष्मीके पृष्ठभागमें ब्रह्मा-सरस्वती तथा महासरस्वतीके पृष्ठभागमें विष्णु-लक्ष्मीकी पूजा करे। फिर चतुर्भुजा महालक्ष्मीके सामने मध्यभागमें अष्टादशभुजाको स्थापित करे। इनका मुख चतुर्भुजा महालक्ष्मीकी ओर होगा। अष्टादशभुजाके दक्षिणभागमें अष्टभुजा महासरस्वती और वामभागमें दशानना महाकाली रहेंगी। यदि केवल अष्टादशभुजा या दशानना अथवा अष्टभुजाका पूजन करना हो तो इनमेंसे किसी एक अभीष्ट देवीको स्थापित करके उनके दक्षिणभागमें काल और वामभागमें मृत्युकी स्थापना करनी चाहिये। अष्टभुजाकी पूजामें कुछ विशेषता है। यदि केवल अष्टभुजाकी पूजा करनी हो तो उनके साथ उनकी ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, नारसिंही, ऐन्द्री, शिवदूती और चामुण्डा—इन नौ शक्तियोंकी भी पूजा करनी चाहिये। साथ ही दाहिने भागमें रुद्र और वामभागमें विनायकका पूजन भी आवश्यक है। काल और मृत्युकी पूजा भी, जो पहले बतायी गयी है,होनी चाहिये। कुछ लोग शैलपुत्री आदि नवदुर्गाओंको नौ शक्तियोंमें ग्रहण करते हैं, किन्तु यह ठीक नहीं है; क्योंकि उन्हें अष्टभुजाकी शक्तिरूपसे कहीं नहीं बताया गया है। ये ब्राह्मी आदि शक्तियाँ ही महासरस्वतीके अंगसे प्रकट हुई थीं; अतः ये ही उनकी नौ शक्तियाँ हैं। अष्टादशभुजादेवीके सामने दक्षिणभागमें सिंह और वामभागमें महिषकी पूजा करे। कुछ लोगोंका कथन है कि जब अष्टादशभुजादेवीकी पूजा करनी हो, तब उनके दक्षिणभागमें दशानना और वामभागमें अष्टभुजाकी भी पूजा करे। जब केवल दशाननाकी पूजा करनी हो, तब उनके साथ दक्षिणभागमें कालकी और वामभागमें मृत्युकी पूजा करे तथा जब केवल अष्टभुजाकी पूजा करनी हो, तब उनके साथ पूर्वोक्त नौ शक्तियों और रुद्र-विनायककी भी पूजा करनी चाहिये। यह क्रम-विभाग देखनेमें सुन्दर होनेपर भी मूलपाठके प्रतिकूल है। कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि अष्टादशभुजा आदिमेंसे जिसकी प्रधानतासे पूजा करनी हो, उसे मध्यमें स्थापित करके दाहिने और वामभागमें शेष दो देवियोंकी स्थापना करे और मध्यमें स्थित देवीके दक्षिण-वाम-पार्श्वोंमें रुद्र-विनायकको स्थापित करके सबका पूजन करे। यह बात भी मूलसे सिद्ध नहीं होती। कोई-कोई अष्टभुजाके पूजनमें विकल्प मानते हैं। उनका कहना है कि अष्टभुजाके साथ या तो काल एवं मृत्युकी ही पूजा करे

अथ मूर्तिरहस्यम् *

ऋषिरुवाच

ॐ नन्दा भगवती नाम या भविष्यति नन्दजा।
स्तुता सा पूजिता भक्त्या वशीकुर्याज्जगत्त्रयम्॥ १॥

ऋषि कहते हैं—राजन्! नन्दा नामकी देवी जो नन्दसे उत्पन्न होनेवाली हैं, उनकी यदि भक्तिपूर्वक स्तुति और पूजा की जाय तो वे तीनों लोकोंको उपासकके अधीन कर देती हैं॥ १॥

अथवा नौ शक्तियोंसहित रुद्र-विनायककी ही पूजा करे; सबका एक साथ नहीं, किंतु ऐसी धारणाके लिये भी कोई प्रबल प्रमाण नहीं है। नीचे कोष्ठकोंसे समष्टि-उपासना और व्यष्टि-उपासनाका क्रम स्पष्ट किया जाता है—

(समष्टि-उपासना)

रुद्र-गौरी	**ब्रह्मा-सरस्वती**	**विष्णु-लक्ष्मी**
चतुर्भुजा महाकाली	**चतुर्भुजा महालक्ष्मी**	**चतुर्भुजा महासरस्वती**
दशानना दशभुजा	**अष्टादशभुजा**	**अष्टभुजा**

(व्यष्टि-उपासना)

अष्टादशभुजा-पूजा **दशानना-पूजा** **अष्टभुजा-पूजा**

काल	**अष्टादशभुजा देवी**	**मृत्यु**	**काल**	**दशानना देवी**	**मृत्यु**	**काल रुद्र**	**अष्टभुजा देवी**	**मृत्यु विनायक**
	सिंह, महिष						**नौ शक्तियाँ**	

* देवीकी अंगभूता छः देवियाँ हैं—नन्दा, रक्तदन्तिका, शाकम्भरी, दुर्गा, भीमा और भ्रामरी। ये देवियोंकी साक्षात् मूर्तियाँ हैं, इनके स्वरूपका प्रतिपादन होनेसे इस प्रकरणको मूर्तिरहस्य कहते हैं।

कनकोत्तमकान्तिः सा सुकान्तिकनकाम्बरा।
देवी कनकवर्णाभा कनकोत्तमभूषणा॥ २॥

कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलङ्कृतचतुर्भुजा।
इन्दिरा कमला लक्ष्मीः सा श्री रुक्माम्बुजासना॥ ३॥

या रक्तदन्तिका नाम देवी प्रोक्ता मयानघ।
तस्याः स्वरूपं वक्ष्यामि शृणु सर्वभयापहम्॥ ४॥

रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा।
रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा॥ ५॥

रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशना रक्तदन्तिका।
पतिं नारीवानुरक्ता देवी भक्तं भजेज्जनम्॥ ६॥

उनके श्रीअंगोंकी कान्ति कनकके समान उत्तम है। वे सुनहरे रंगके सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं। उनकी आभा सुवर्णके तुल्य है तथा वे सुवर्णके ही उत्तम आभूषण धारण करती हैं॥ २॥ उनकी चार भुजाएँ कमल, अंकुश, पाश और शंखसे सुशोभित हैं। वे इन्दिरा, कमला, लक्ष्मी, श्री तथा रुक्माम्बुजासना (सुवर्णमय कमलके आसनपर विराजमान) आदि नामोंसे पुकारी जाती हैं॥ ३॥ निष्पाप नरेश! पहले मैंने रक्तदन्तिका नामसे जिन देवीका परिचय दिया है, अब उनके स्वरूपका वर्णन करूँगा; सुनो। वह सब प्रकारके भयोंको दूर करनेवाली हैं॥ ४॥ वे लाल रंगके वस्त्र धारण करती हैं। उनके शरीरका रंग भी लाल ही है और अंगोंके समस्त आभूषण भी लाल रंगके हैं। उनके अस्त्र-शस्त्र, नेत्र, सिरके बाल, तीखे नख और दाँत सभी रक्तवर्णके हैं; इसलिये वे रक्तदन्तिका कहलाती और अत्यन्त भयानक दिखायी देती हैं। जैसे स्त्री पतिके प्रति अनुराग रखती है, उसी प्रकार देवी अपने भक्तपर (माताकी भाँति) स्नेह रखते हुए उसकी सेवा करती हैं॥ ५-६॥

वसुधेव विशाला सा सुमेरुयुगलस्तनी।
दीर्घौ लम्बावतिस्थूलौ तावतीव मनोहरौ॥ ७ ॥
कर्कशावतिकान्तौ तौ सर्वानन्दपयोनिधी।
भक्तान् सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ॥ ८ ॥
खड्गं पात्रं च मुसलं लाङ्गलं च बिभर्ति सा।
आख्याता रक्तचामुण्डा देवी योगेश्वरीति च॥ ९ ॥
अनया व्याप्तमखिलं जगत्स्थावरजङ्गमम्।
इमां यः पूजयेद्भक्त्या स व्याप्नोति चराचरम्॥ १० ॥
(भुक्त्वा भोगान् यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात्।)
अधीते य इमं नित्यं रक्तदन्त्या वपुःस्तवम्।
तं सा परिचरेद्देवी पतिं प्रियमिवाङ्गना॥ ११ ॥
शाकम्भरी नीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना।
गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी ॥ १२ ॥

देवी रक्तदन्तिकाका आकार वसुधाकी भाँति विशाल है। उनके दोनों स्तन सुमेरु पर्वतके समान हैं। वे लंबे, चौड़े, अत्यन्त स्थूल एवं बहुत ही मनोहर हैं। कठोर होते हुए भी अत्यन्त कमनीय हैं तथा पूर्ण आनन्दके समुद्र हैं। सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले ये दोनों स्तन देवी अपने भक्तोंको पिलाती हैं॥ ७-८ ॥ वे अपनी चार भुजाओंमें खड्ग, पानपात्र, मुसल और हल धारण करती हैं। ये ही रक्तचामुण्डा और योगेश्वरीदेवी कहलाती हैं॥ ९ ॥ इनके द्वारा सम्पूर्ण चराचर जगत् व्याप्त है। जो इन रक्तदन्तिकादेवीका भक्तिपूर्वक पूजन करता है, वह भी चराचर जगत्में व्याप्त होता है॥ १० ॥ (वह यथेष्ट भोगोंको भोगकर अन्तमें देवीके साथ सायुज्य प्राप्त कर लेता है।) जो प्रतिदिन रक्तदन्तिकादेवीके शरीरका यह स्तवन करता है, उसकी वे देवी प्रेमपूर्वक संरक्षणरूप सेवा करती हैं—ठीक उसी तरह, जैसे पतिव्रता नारी अपने प्रियतम पतिकी परिचर्या करती है॥ ११ ॥

शाकम्भरीदेवीके शरीरकी कान्ति नीले रंगकी है। उनके नेत्र नीलकमलके समान हैं, नाभि नीची है तथा त्रिवलीसे विभूषित उदर (मध्यभाग) सूक्ष्म है॥ १२ ॥

सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी ।
मुष्टिं शिलीमुखापूर्णं कमलं कमलालया ॥ १३ ॥

पुष्पपल्लवमूलादिफलाढ्यं शाकसञ्चयम् ।
काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृणमृत्युभयापहम् ॥ १४ ॥

कार्मुकं च स्फुरत्कान्ति बिभ्रती परमेश्वरी ।
शाकम्भरी शताक्षी सा सैव दुर्गा प्रकीर्तिता ॥ १५ ॥

विशोका दुष्टदमनी शमनी दुरितापदाम् ।
उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ॥ १६ ॥

शाकम्भरीं स्तुवन् ध्यायञ्जपन् सम्पूजयन्नमन् ।
अक्षय्यमश्नुते शीघ्रमन्नपानामृतं फलम् ॥ १७ ॥

भीमापि नीलवर्णा सा दंष्ट्रादशनभासुरा ।
विशाललोचना नारी वृत्तपीनपयोधरा ॥ १८ ॥

उनके दोनों स्तन अत्यन्त कठोर, सब ओरसे बराबर, ऊँचे, गोल, स्थूल तथा परस्पर सटे हुए हैं। वे परमेश्वरी कमलमें निवास करनेवाली हैं और हाथोंमें बाणोंसे भरी मुष्टि, कमल, शाकसमूह तथा प्रकाशमान धनुष धारण करती हैं। वह शाकसमूह अनन्त मनोवांछित रसोंसे युक्त तथा क्षुधा, तृषा और मृत्युके भयको नष्ट करनेवाला तथा फूल, पल्लव, मूल आदि एवं फलोंसे सम्पन्न है। वे ही शाकम्भरी, शताक्षी तथा दुर्गा कही गयी हैं॥ १३—१५॥ वे शोकसे रहित, दुष्टोंका दमन करनेवाली तथा पाप और विपत्तिको शान्त करनेवाली हैं। उमा, गौरी, सती, चण्डी, कालिका और पार्वती भी वे ही हैं॥ १६॥ जो मनुष्य शाकम्भरीदेवीकी स्तुति, ध्यान, जप, पूजा और वन्दन करता है, वह शीघ्र ही अन्न, पान एवं अमृतरूप अक्षय फलका भागी होता है॥ १७॥

भीमादेवीका वर्ण भी नील ही है। उनकी दाढ़ें और दाँत चमकते रहते हैं। उनके नेत्र बड़े-बड़े हैं, स्वरूप स्त्रीका है, स्तन गोल-गोल और स्थूल हैं। वे

चन्द्रहासं च डमरुं शिरः पात्रं च बिभ्रती।
एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ता कामदा स्तुता॥ १९॥
तेजोमण्डलदुर्धर्षा भ्रामरी चित्रकान्तिभृत्।
चित्रानुलेपना देवी चित्राभरणभूषिता॥ २०॥
चित्रभ्रमरपाणिः सा महामारीति गीयते।
इत्येता मूर्तयो देव्या याः ख्याता वसुधाधिप॥ २१॥
जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः।
इदं रहस्यं परमं न वाच्यं कस्यचित्त्वया॥ २२॥
व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामभीष्टफलदायकम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन देवीं जप निरन्तरम्॥ २३॥
सप्तजन्मार्जितैर्घोरैर्ब्रह्महत्यासमैरपि।
पाठमात्रेण मन्त्राणां मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥ २४॥

अपने हाथोंमें चन्द्रहास नामक खड्ग, डमरू, मस्तक और पानपात्र धारण करती हैं। वे ही एकवीरा, कालरात्रि तथा कामदा कहलाती और इन नामोंसे प्रशंसित होती हैं॥ १८-१९॥

भ्रामरीदेवीकी कान्ति विचित्र (अनेक रंगकी) है। वे अपने तेजोमण्डलके कारण दुर्धर्ष दिखायी देती हैं। उनका अंगराग भी अनेक रंगका है तथा वे चित्र-विचित्र आभूषणोंसे विभूषित हैं॥ २०॥ चित्रभ्रमरपाणि और महामारी आदि नामोंसे उनकी महिमाका गान किया जाता है। राजन्! इस प्रकार जगन्माता चण्डिकादेवीकी ये मूर्तियाँ बतलायी गयी हैं॥ २१॥ जो कीर्तन करनेपर कामधेनुके समान सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करती हैं। यह परम गोपनीय रहस्य है। इसे तुम्हें दूसरे किसीको नहीं बतलाना चाहिये॥ २२॥ दिव्य मूर्तियोंका यह आख्यान मनोवांछित फल देनेवाला है, इसलिये पूर्ण प्रयत्न करके तुम निरन्तर देवीके जप (आराधन)-में लगे रहो॥ २३॥ सप्तशतीके मन्त्रोंके पाठमात्रसे मनुष्य सात जन्मोंमें उपार्जित ब्रह्महत्यासदृश घोर पातकों एवं समस्त कल्मषोंसे मुक्त हो जाता है॥ २४॥

देव्या ध्यानं मया ख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं महत्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदम्॥ २५ ॥
(एतस्यास्त्वं प्रसादेन सर्वमान्यो भविष्यसि।
सर्वरूपमयी देवी सर्वं देवीमयं जगत्।
अतोऽहं विश्वरूपां तां नमामि परमेश्वरीम्।)

*इति मूर्तिरहस्यं सम्पूर्णम्।**

इसलिये मैंने पूर्ण प्रयत्न करके देवीके गोपनीयसे भी अत्यन्त गोपनीय ध्यानका वर्णन किया है, जो सब प्रकारके मनोवांछित फलोंको देनेवाला है॥ २५॥ (उनके प्रसादसे तुम सर्वमान्य हो जाओगे। देवी सर्वरूपमयी हैं तथा सम्पूर्ण जगत् देवीमय है। अतः मैं उन विश्वरूपा परमेश्वरीको नमस्कार करता हूँ।)

---

* तदनन्तर प्रारम्भमें बतलायी हुई रीतिसे शापोद्धार करनेके पश्चात् देवीसे अपने अपराधोंके लिये क्षमा-प्रार्थना करे।

क्षमा-प्रार्थना

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि॥ १॥

आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम्।
पूजां चैव न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि॥ २॥

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वरि।
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे॥ ३॥

अपराधशतं कृत्वा जगदम्बेति चोच्चरेत्।
यां गतिं समवाप्नोति न तां ब्रह्मादयः सुराः॥ ४॥

सापराधोऽस्मि शरणं प्राप्तस्त्वां जगदम्बिके।
इदानीमनुकम्प्योऽहं यथेच्छसि तथा कुरु॥ ५॥

परमेश्वरि! मेरे द्वारा रात-दिन सहस्रों अपराध होते रहते हैं। 'यह मेरा दास है'—यों समझकर मेरे उन अपराधोंको तुम कृपापूर्वक क्षमा करो॥ १॥ परमेश्वरि! मैं आवाहन नहीं जानता, विसर्जन करना नहीं जानता तथा पूजा करनेका ढंग भी नहीं जानता। क्षमा करो॥ २॥ देवि! सुरेश्वरि! मैंने जो मन्त्रहीन, क्रियाहीन और भक्तिहीन पूजन किया है, वह सब आपकी कृपासे पूर्ण हो॥ ३॥ सैकड़ों अपराध करके भी जो तुम्हारी शरणमें जा 'जगदम्ब' कहकर पुकारता है, उसे वह गति प्राप्त होती है, जो ब्रह्मादि देवताओंके लिये भी सुलभ नहीं है॥ ४॥ जगदम्बिके! मैं अपराधी हूँ, किंतु तुम्हारी शरणमें आया हूँ। इस समय दयाका पात्र हूँ। तुम जैसा चाहो, वैसा करो॥ ५॥

अज्ञानाद्विस्मृतेर्भ्रान्त्या यन्न्यूनमधिकं कृतम्।
तत्सर्वं क्षम्यतां देवि प्रसीद परमेश्वरि॥ ६॥

कामेश्वरि जगन्मातः सच्चिदानन्दविग्रहे।
गृहाणार्चामिमां प्रीत्या प्रसीद परमेश्वरि॥ ७॥

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादात्सुरेश्वरि॥ ८॥

श्रीदुर्गार्पणमस्तु।

देवि! परमेश्वरि! अज्ञानसे, भूलसे अथवा बुद्धि भ्रान्त होनेके कारण मैंने जो न्यूनता या अधिकता कर दी हो, वह सब क्षमा करो और प्रसन्न होओ॥ ६॥ सच्चिदानन्दस्वरूपा परमेश्वरि! जगन्माता कामेश्वरि! तुम प्रेमपूर्वक मेरी यह पूजा स्वीकार करो और मुझपर प्रसन्न रहो॥ ७॥ देवि! सुरेश्वरि! तुम गोपनीयसे भी गोपनीय वस्तुकी रक्षा करनेवाली हो। मेरे निवेदन किये हुए इस जपको ग्रहण करो। तुम्हारी कृपासे मुझे सिद्धि प्राप्त हो॥ ८॥

श्रीदुर्गामानस-पूजा

उद्यच्चन्दनकुङ्कुमारुणपयोधाराभिराप्लावितां
नानानर्घ्यमणिप्रवालघटितां दत्तां गृहाणाम्बिके।
आमृष्टां सुरसुन्दरीभिरभितो हस्ताम्बुजैर्भक्तितो
मातः सुन्दरि भक्तकल्पलतिके श्रीपादुकामादरात्॥ १ ॥

देवेन्द्रादिभिरर्चितं सुरगणैरादाय सिंहासनं
चञ्चत्काञ्चनसंचयाभिरचितं चारुप्रभाभास्वरम्।
एतच्चम्पककेतकीपरिमलं तैलं महानिर्मलं
गन्धोद्वर्तनमादरेण तरुणीदत्तं गृहाणाम्बिके॥ २ ॥

पश्चाद्देवि गृहाण शम्भुगृहिणि श्रीसुन्दरि प्रायशो
गन्धद्रव्यसमूहनिर्भरतरं धात्रीफलं निर्मलम्।

माता त्रिपुरसुन्दरि! तुम भक्तजनोंकी मनोवांछा पूर्ण करनेवाली कल्पलता हो। माँ! यह पादुका आदरपूर्वक तुम्हारे श्रीचरणोंमें समर्पित है, इसे ग्रहण करो। यह उत्तम चन्दन और कुंकुमसे मिली हुई लाल जलकी धारासे धोयी गयी है। भाँति-भाँतिकी बहुमूल्य मणियों तथा मूँगोंसे इसका निर्माण हुआ है और बहुत-सी देवांगनाओंने अपने कर-कमलोंद्वारा भक्तिपूर्वक इसे सब ओरसे धो-पोंछकर स्वच्छ बना दिया है॥ १ ॥

माँ! देवताओंने तुम्हारे बैठनेके लिये यह दिव्य सिंहासन लाकर रख दिया है, इसपर विराजो। यह वह सिंहासन है, जिसकी देवराज इन्द्र आदि भी पूजा करते हैं। अपनी कान्तिसे दमकते हुए राशि-राशि सुवर्णसे इसका निर्माण किया गया है। यह अपनी मनोहर प्रभासे सदा प्रकाशमान रहता है। इसके सिवा, यह चम्पा और केतकीकी सुगन्धसे पूर्ण अत्यन्त निर्मल तेल और सुगन्धयुक्त उबटन है, जिसे दिव्य युवतियाँ आदरपूर्वक तुम्हारी सेवामें प्रस्तुत कर रही हैं, कृपया इसे स्वीकार करो॥ २ ॥

देवि! इसके पश्चात् यह विशुद्ध आँवलेका फल ग्रहण करो। शिवप्रिये!

तत्केशान् परिशोध्य कङ्कतिकया मन्दाकिनीस्त्रोतसि
स्नात्वा प्रोज्ज्वलगन्धकं भवतु हे श्रीसुन्दरि त्वन्मुदे॥ ३॥

सुराधिपतिकामिनीकरसरोजनालीधृतां
सचन्दनसकुङ्कुमागुरुभरेण विभ्राजिताम्।
महापरिमलोज्ज्वलां सरसशुद्धकस्तूरिकां
गृहाण वरदायिनि त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे॥ ४॥

गन्धर्वामरकिन्नरप्रियतमासंतानहस्ताम्बुज-
प्रस्तारैर्ध्रियमाणमुत्तमतरं काश्मीरजापिञ्जरम्।
मातर्भास्वरभानुमण्डललसत्कान्तिप्रदानोज्ज्वलं
चैतन्निर्मलमातनोतु वसनं श्रीसुन्दरि त्वन्मुदम्॥ ५॥

त्रिपुरसुन्दरि! इस आँवलेमें प्रायः जितने भी सुगन्धित पदार्थ हैं, वे सभी डाले गये हैं; इससे यह परम सुगन्धित हो गया है। अतः इसको लगाकर बालोंको कंघीसे झाड़ लो और गंगाजीकी पवित्र धारामें नहाओ। तदनन्तर यह दिव्य गन्ध सेवामें प्रस्तुत है, यह तुम्हारे आनन्दकी वृद्धि करनेवाला हो॥ ३॥

सम्पत्ति प्रदान करनेवाली वरदायिनी त्रिपुरसुन्दरि! यह सरस शुद्ध कस्तूरी ग्रहण करो। इसे स्वयं देवराज इन्द्रकी पत्नी महारानी शची अपने कर-कमलोंमें लेकर सेवामें खड़ी हैं। इसमें चन्दन, कुंकुम तथा अगुरुका मेल होनेसे और भी इसकी शोभा बढ़ गयी है। इससे बहुत अधिक गन्ध निकलनेके कारण यह बड़ी मनोहर प्रतीत होती है॥ ४॥

माँ श्रीसुन्दरि! यह परम उत्तम निर्मल वस्त्र सेवामें समर्पित है, यह तुम्हारे हर्षको बढ़ावे। माता! इसे गन्धर्व, देवता तथा किन्नरोंकी प्रेयसी सुन्दरियाँ अपने फैलाये हुए कर-कमलोंमें धारण किये खड़ी हैं। यह केसरमें रँगा हुआ पीताम्बर है। इससे परम प्रकाशमान सूर्यमण्डलकी शोभामयी दिव्य कान्ति निकल रही है, जिसके कारण यह बहुत ही सुशोभित हो रहा है॥ ५॥

स्वर्णाकल्पितकुण्डले श्रुतियुगे हस्ताम्बुजे मुद्रिका
मध्ये सारसना नितम्बफलके मञ्जीरमङ्घ्रिद्वये।
हारो वक्षसि कङ्कणौ क्वणरणत्कारौ करद्वन्द्वके
विन्यस्तं मुकुटं शिरस्यनुदिनं दत्तोन्मदं स्तूयताम्॥ ६॥

ग्रीवायां धृतकान्तिकान्तपटलं ग्रैवेयकं सुन्दरं
सिन्दूरं विलसल्ललाटफलके सौन्दर्यमुद्राधरम्।
राजत्कज्जलमुज्ज्वलोत्पलदलश्रीमोचने लोचने
तद्दिव्यौषधिनिर्मितं रचयतु श्रीशाम्भवि श्रीप्रदे॥ ७॥

अमन्दतरमन्दरोन्मथितदुग्धसिन्धूद्भवं
निशाकरकरोपमं त्रिपुरसुन्दरि श्रीप्रदे।
गृहाण मुखमीक्षितुं मुकुरबिम्बमाविद्रुमै-
र्विनिर्मितमघच्छिदे रतिकराम्बुजस्थायिनम्॥ ८॥

तुम्हारे दोनों कानोंमें सोनेके बने हुए कुण्डल झिलमिलाते रहें, कर-कमलकी एक अंगुलीमें अँगूठी शोभा पावे, कटिभागमें नितम्बोंपर करधनी सुहाये, दोनों चरणोंमें मंजीर मुखरित होता रहे, वक्षःस्थलमें हार सुशोभित हो और दोनों कलाइयोंमें कंकन खनखनाते रहें। तुम्हारे मस्तकपर रखा हुआ दिव्य मुकुट प्रतिदिन आनन्द प्रदान करे। ये सब आभूषण प्रशंसाके योग्य हैं॥ ६॥

धन देनेवाली शिवप्रिया पार्वती! तुम गलेमें बहुत ही चमकीली सुन्दर हँसली पहन लो, ललाटके मध्यभागमें सौन्दर्यकी मुद्रा (चिह्न) धारण करनेवाले सिन्दूरकी बेंदी लगाओ तथा अत्यन्त सुन्दर पद्मपत्रकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले नेत्रोंमें यह काजल भी लगा लो, यह काजल दिव्य ओषधियोंसे तैयार किया गया है॥ ७॥

पापोंका नाश करनेवाली सम्पत्तिदायिनी त्रिपुरसुन्दरि! अपने मुखकी शोभा निहारनेके लिये यह दर्पण ग्रहण करो। इसे साक्षात् रति रानी अपने कर-कमलोंमें लेकर सेवामें उपस्थित हैं। इस दर्पणके चारों ओर मूँगे जड़े हैं। प्रचण्ड वेगसे घूमनेवाले मन्दराचलकी मथानीसे जब क्षीरसमुद्र मथा गया, उस समय यह दर्पण उसीसे प्रकट हुआ था। यह चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल है॥ ८॥

कस्तूरीद्रवचन्दनागुरुसुधाधाराभिराप्लावितं
चञ्चच्चम्पकपाटलादिसुरभिद्रव्यैः सुगन्धीकृतम्।
देवस्त्रीगणमस्तकस्थितमहारत्नादिकुम्भव्रजै-
रम्भःशाम्भवि संभ्रमेण विमलं दत्तं गृहाणाम्बिके॥ ९ ॥

कह्लारोत्पलनागकेसरसरोजाख्यावलीमालती-
मल्लीकैरवकेतकादिकुसुमै रक्ताश्वमारादिभिः।
पुष्पैर्माल्यभरेण वै सुरभिणा नानारसस्त्रोतसा
ताम्राम्भोजनिवासिनीं भगवतीं श्रीचण्डिकां पूजये॥ १० ॥

मांसीगुग्गुलचन्दनागुरुरजःकर्पूरशैलेयजै-
र्माध्वीकैः सह कुङ्कुमैः सुरचितैः सर्पिर्भिरामिश्रितैः।
सौरभ्यस्थितिमन्दिरे मणिमये पात्रे भवेत् प्रीतये
धूपोऽयं सुरकामिनीविरचितः श्रीचण्डिके त्वन्मुदे॥ ११ ॥

भगवान् शंकरकी धर्मपत्नी पार्वतीदेवी! देवांगनाओंके मस्तकपर रखे हुए बहुमूल्य रत्नमय कलशोंद्वारा शीघ्रतापूर्वक दिया जानेवाला यह निर्मल जल ग्रहण करो। इसे चम्पा और गुलाल आदि सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित किया गया है तथा यह कस्तूरीरस, चन्दन, अगुरु और सुधाकी धारासे आप्लावित है॥ ९॥

मैं कह्लार, उत्पल, नागकेसर, कमल, मालती, मल्लिका, कुमुद, केतकी और लाल कनेर आदि फूलोंसे, सुगन्धित पुष्पमालाओंसे तथा नाना प्रकारके रसोंकी धारासे लाल कमलके भीतर निवास करनेवाली श्रीचण्डिकादेवीकी पूजा करता हूँ॥ १०॥

श्रीचण्डिका देवि! देववधुओंके द्वारा तैयार किया हुआ यह दिव्य धूप तुम्हारी प्रसन्नता बढ़ानेवाला हो। यह धूप रत्नमय पात्रमें, जो सुगन्धका निवासस्थान है, रखा हुआ है; यह तुम्हें सन्तोष प्रदान करे। इसमें जटामांसी, गुग्गुल, चन्दन, अगुरु-चूर्ण, कपूर, शिलाजीत, मधु, कुंकुम तथा घी मिलाकर उत्तम रीतिसे बनाया गया है॥ ११॥

घृतद्रवपरिस्फुरद्रुचिररत्नयष्ट्यान्वितो
महातिमिरनाशनः सुरनितम्बिनीनिर्मितः।
सुवर्णचषकस्थितः सघनसारवर्त्यान्वित-
स्तव त्रिपुरसुन्दरि स्फुरति देवि दीपो मुदे॥ १२॥

जातीसौरभनिर्भरं रुचिकरं शाल्योदनं निर्मलं
युक्तं हिङ्गुमरीचजीरसुरभिद्रव्यान्वितैर्व्यञ्जनैः।
पक्वान्नेन सपायसेन मधुना दध्याज्यसम्मिश्रितं
नैवेद्यं सुरकामिनीविरचितं श्रीचण्डिके त्वन्मुदे॥ १३॥

लवङ्गकलिकोज्ज्वलं बहुलनागवल्लीदलं
सजातिफलकोमलं सघनसारपूगीफलम्।
सुधामधुरिमाकुलं रुचिररत्नपात्रस्थितं
गृहाण मुखपङ्कजे स्फुरितमम्ब ताम्बूलकम्॥ १४॥

देवी त्रिपुरसुन्दरि! तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यहाँ यह दीप प्रकाशित हो रहा है। यह घीसे जलता है; इसकी दीयटमें सुन्दर रत्नका डंडा लगा है, इसे देवांगनाओंने बनाया है। यह दीपक सुवर्णके चषक (पात्र)-में जलाया गया है। इसमें कपूरके साथ बत्ती रखी है। यह भारी-से-भारी अन्धकारका भी नाश करनेवाला है॥ १२॥

श्रीचण्डिका देवि! देववधुओंने तुम्हारी प्रसन्नताके लिये यह दिव्य नैवेद्य तैयार किया है, इसमें अगहनीके चावलका स्वच्छ भात है, जो बहुत ही रुचिकर और चमेलीकी सुगन्धसे वासित है। साथ ही हींग, मिर्च और जीरा आदि सुगन्धित द्रव्योंसे छौंक-बघारकर बनाये हुए नाना प्रकारके व्यंजन भी हैं, इसमें भाँति-भाँतिके पकवान, खीर, मधु, दही और घीका भी मेल है॥ १३॥

माँ! सुन्दर रत्नमय पात्रमें सजाकर रखा हुआ यह दिव्य ताम्बूल अपने मुखमें ग्रहण करो। लवंगकी कली चुभोकर इसके बीड़े लगाये गये हैं, अतः बहुत सुन्दर जान पड़ते हैं, इसमें बहुत-से पानके पत्तोंका उपयोग किया गया है। इन सब बीड़ोंमें कोमल जावित्री, कपूर और सोपारी पड़े हैं। यह ताम्बूल सुधाके माधुर्यसे परिपूर्ण है॥ १४॥

शरत्प्रभवचन्द्रमःस्फुरितचन्द्रिकासुन्दरं
गलत्सुरतरङ्गिणीललितमौक्तिकाडम्बरम्।
गृहाण नवकाञ्चनप्रभवदण्डखण्डोज्ज्वलं
महात्रिपुरसुन्दरि प्रकटमातपत्रं महत्॥ १५॥
मातस्त्वन्मुदमातनोतु सुभगस्त्रीभिः सदाऽऽन्दोलितं
शुभ्रं चामरमिन्दुकुन्दसदृशं प्रस्वेददुःखापहम्।
सद्योऽगस्त्यवसिष्ठनारदशुकव्यासादिवाल्मीकिभिः
स्वे चित्ते क्रियमाण एव कुरुतां शर्माणि वेदध्वनिः॥ १६॥
स्वर्गाङ्गणे वेणुमृदङ्गशङ्खभेरीनिनादैरुपगीयमाना।
कोलाहलैराकलिता तवास्तु विद्याधरीनृत्यकला सुखाय॥ १७॥

महात्रिपुरसुन्दरी माता पार्वती! तुम्हारे सामने यह विशाल एवं दिव्य छत्र प्रकट हुआ है, इसे ग्रहण करो। यह शरत्कालके चन्द्रमाकी चटकीली चाँदनीके समान सुन्दर है; इसमें लगे हुए सुन्दर मोतियोंकी झालर ऐसी जान पड़ती है, मानो देवनदी गंगाका स्रोत ऊपरसे नीचे गिर रहा हो। यह छत्र सुवर्णमय दण्डके कारण बहुत शोभा पा रहा है॥ १५॥

माँ! सुन्दरी स्त्रियोंके हाथोंसे निरन्तर डुलाया जानेवाला यह श्वेत चँवर, जो चन्द्रमा और कुन्दके समान उज्ज्वल तथा पसीनेके कष्टको दूर करनेवाला है, तुम्हारे हर्षको बढ़ावे। इसके सिवा महर्षि अगस्त्य, वसिष्ठ, नारद, शुक, व्यास आदि तथा वाल्मीकि मुनि अपने-अपने चित्तमें जो वेदमन्त्रोंके उच्चारणका विचार करते हैं, उनकी वह मनःसंकल्पित वेदध्वनि तुम्हारे आनन्दकी वृद्धि करे॥ १६॥

स्वर्गके आँगनमें वेणु, मृदंग, शंख तथा भेरीकी मधुर ध्वनिके साथ जो संगीत होता है तथा जिसमें अनेक प्रकारके कोलाहलका शब्द व्याप्त रहता है, वह विद्याधरीद्वारा प्रदर्शित नृत्य-कला तुम्हारे सुखकी वृद्धि करे॥ १७॥

देवि भक्तिरसभावितवृत्ते प्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तत्र लौल्यमपि सत्फलमेकं जन्मकोटिभिरपीह न लभ्यम्॥ १८ ॥

एतैः षोडशभिः पद्यैरुपचारोपकल्पितैः।
यः परां देवतां स्तौति स तेषां फलमाप्नुयात्॥ १९ ॥

देवि! तुम्हारे भक्तिरससे भावित इस पद्यमय स्तोत्रमें यदि कहींसे भी कुछ भक्तिका लेश मिले तो उसीसे प्रसन्न हो जाओ। माँ! तुम्हारी भक्तिके लिये चित्तमें जो आकुलता होती है, वही एकमात्र जीवनका फल है, वह कोटि-कोटि जन्म धारण करनेपर भी इस संसारमें तुम्हारी कृपाके बिना सुलभ नहीं होती॥ १८ ॥

इन उपचारकल्पित सोलह पद्योंसे जो परा देवता भगवती त्रिपुरसुन्दरीका स्तवन करता है, वह उन उपचारोंके समर्पणका फल प्राप्त करता है॥ १९ ॥

अथ दुर्गाद्वात्रिंशन्नाममाला

एक समयकी बात है, ब्रह्मा आदि देवताओंने पुष्प आदि विविध उपचारोंसे महेश्वरी दुर्गाका पूजन किया। इससे प्रसन्न होकर दुर्गतिनाशिनी दुर्गाने कहा— 'देवताओ! मैं तुम्हारे पूजनसे संतुष्ट हूँ, तुम्हारी जो इच्छा हो, माँगो, मैं तुम्हें दुर्लभ-से-दुर्लभ वस्तु भी प्रदान करूँगी।' दुर्गाका यह वचन सुनकर देवता बोले—'देवि! हमारे शत्रु महिषासुरको, जो तीनों लोकोंके लिये कंटक था, आपने मार डाला, इससे सम्पूर्ण जगत् स्वस्थ एवं निर्भय हो गया। आपकी ही कृपासे हमें पुनः अपने-अपने पदकी प्राप्ति हुई है। आप भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष हैं, हम आपकी शरणमें आये हैं। अतः अब हमारे मनमें कुछ भी पानेकी अभिलाषा शेष नहीं है। हमें सब कुछ मिल गया; तथापि आपकी आज्ञा है, इसलिये हम जगत्की रक्षाके लिये आपसे कुछ पूछना चाहते हैं। महेश्वरि! कौन-सा ऐसा उपाय है, जिससे शीघ्र प्रसन्न होकर आप संकटमें पड़े हुए जीवकी रक्षा करती हैं। देवेश्वरि! यह बात सर्वथा गोपनीय हो तो भी हमें अवश्य बतावें।'

देवताओंके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर दयामयी दुर्गादेवीने कहा— 'देवगण! सुनो—यह रहस्य अत्यन्त गोपनीय और दुर्लभ है। मेरे बत्तीस नामोंकी माला सब प्रकारकी आपत्तिका विनाश करनेवाली है। तीनों लोकोंमें इसके समान दूसरी कोई स्तुति नहीं है। यह रहस्यरूप है। इसे बतलाती हूँ, सुनो—

दुर्गा दुर्गार्तिशमनी दुर्गापद्विनिवारिणी।
दुर्गमच्छेदिनी दुर्गसाधिनी दुर्गनाशिनी॥
दुर्गतोद्धारिणी दुर्गनिहन्त्री दुर्गमापहा।
दुर्गमज्ञानदा दुर्गदैत्यलोकदवानला॥
दुर्गमा दुर्गमालोका दुर्गमात्मस्वरूपिणी।
दुर्गमार्गप्रदा दुर्गमविद्या दुर्गमाश्रिता॥
दुर्गमज्ञानसंस्थाना दुर्गमध्यानभासिनी।
दुर्गमोहा दुर्गमगा दुर्गमार्थस्वरूपिणी॥
दुर्गमासुरसंहन्त्री दुर्गमायुधधारिणी।
दुर्गमाङ्गी दुर्गमता दुर्गम्या दुर्गमेश्वरी॥
दुर्गभीमा दुर्गभामा दुर्गभा दुर्गदारिणी।
नामावलिमिमां यस्तु दुर्गाया मम मानवः॥
पठेत् सर्वभयान्मुक्तो भविष्यति न संशयः॥

---

१ दुर्गा, २ दुर्गार्तिशमनी, ३ दुर्गापद्विनिवारिणी, ४ दुर्गमच्छेदिनी, ५ दुर्गसाधिनी, ६ दुर्गनाशिनी, ७ दुर्गतोद्धारिणी, ८ दुर्गनिहन्त्री, ९ दुर्गमापहा, १० दुर्गमज्ञानदा, ११ दुर्गदैत्यलोकदवानला, १२ दुर्गमा, १३ दुर्गमालोका, १४ दुर्गमात्मस्वरूपिणी, १५ दुर्गमार्गप्रदा, १६ दुर्गमविद्या, १७ दुर्गमाश्रिता, १८ दुर्गमज्ञानसंस्थाना, १९ दुर्गमध्यानभासिनी, २० दुर्गमोहा, २१ दुर्गमगा, २२ दुर्गमार्थस्वरूपिणी, २३ दुर्गमासुरसंहन्त्री, २४ दुर्गमायुधधारिणी, २५ दुर्गमाङ्गी, २६ दुर्गमता, २७ दुर्गम्या, २८ दुर्गमेश्वरी, २९ दुर्गभीमा, ३० दुर्गभामा, ३१ दुर्गभा, ३२ दुर्गदारिणी।

जो मनुष्य मुझ दुर्गाकी इस नाममालाका पाठ करता है, वह निःसन्देह सब प्रकारके भयसे मुक्त हो जायगा।'

'कोई शत्रुओंसे पीड़ित हो अथवा दुर्भेद्य बन्धनमें पड़ा हो, इन बत्तीस नामोंके पाठमात्रसे संकटसे छुटकारा पा जाता है। इसमें तनिक भी संदेहके लिये स्थान नहीं है। यदि राजा क्रोधमें भरकर वधके लिये अथवा और किसी कठोर

दण्डके लिये आज्ञा दे दे या युद्धमें शत्रुओंद्वारा मनुष्य घिर जाय अथवा वनमें व्याघ्र आदि हिंसक जन्तुओंके चंगुलमें फँस जाय, तो इन बत्तीस नामोंका एक सौ आठ बार पाठमात्र करनेसे वह सम्पूर्ण भयोंसे मुक्त हो जाता है। विपत्तिके समय इसके समान भयनाशक उपाय दूसरा नहीं है। देवगण! इस नाममालाका पाठ करनेवाले मनुष्योंकी कभी कोई हानि नहीं होती। अभक्त, नास्तिक और शठ मनुष्यको इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो भारी विपत्तिमें पड़नेपर भी इस नामावलीका हजार, दस हजार अथवा लाख बार पाठ स्वयं करता या ब्राह्मणोंसे कराता है, वह सब प्रकारकी आपत्तियोंसे मुक्त हो जाता है। सिद्ध अग्निमें मधुमिश्रित सफेद तिलोंसे इन नामोंद्वारा लाख बार हवन करे तो मनुष्य सब विपत्तियोंसे छूट जाता है। इस नाममालाका पुरश्चरण तीस हजारका है। पुरश्चरणपूर्वक पाठ करनेसे मनुष्य इसके द्वारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध कर सकता है। मेरी सुन्दर मिट्टीकी अष्टभुजा मूर्ति बनावे, आठों भुजाओंमें क्रमशः गदा, खड्ग, त्रिशूल, बाण, धनुष, कमल, खेट (ढाल) और मुद्गर धारण करावे। मूर्तिके मस्तकमें चन्द्रमाका चिह्न हो, उसके तीन नेत्र हों, उसे लाल वस्त्र पहनाया गया हो, वह सिंहके कंधेपर सवार हो और शूलसे महिषासुरका वध कर रही हो, इस प्रकारकी प्रतिमा बनाकर नाना प्रकारकी सामग्रियोंसे भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करे। मेरे उक्त नामोंसे लाल कनेरके फूल चढ़ाते हुए सौ बार पूजा करे और मन्त्र-जप करते हुए पूएसे हवन करे। भाँति-भाँतिके उत्तम पदार्थ भोग लगावे। इस प्रकार करनेसे मनुष्य असाध्य कार्यको भी सिद्ध कर लेता है। जो मानव प्रतिदिन मेरा भजन करता है, वह कभी विपत्तिमें नहीं पड़ता।'

देवताओंसे ऐसा कहकर जगदम्बा वहीं अन्तर्धान हो गयीं। दुर्गाजीके इस उपाख्यानको जो सुनते हैं, उनपर कोई विपत्ति नहीं आती।

अथ देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रम्

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुसरणं क्लेशहरणम्॥ १॥
विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्या च्युतिरभूत्।
तदेतत् क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ २॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरलतरलोऽहं तव सुतः।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ३॥

माँ! मैं न मन्त्र जानता हूँ, न यन्त्र; अहो! मुझे स्तुतिका भी ज्ञान नहीं है। न आवाहनका पता है, न ध्यानका। स्तोत्र और कथाकी भी जानकारी नहीं है। न तो तुम्हारी मुद्राएँ जानता हूँ और न मुझे व्याकुल होकर विलाप करना ही आता है; परंतु एक बात जानता हूँ, केवल तुम्हारा अनुसरण—तुम्हारे पीछे चलना। जो कि सब क्लेशोंको—समस्त दुःख-विपत्तियोंको हर लेनेवाला है॥ १॥

सबका उद्धार करनेवाली कल्याणमयी माता! मैं पूजाकी विधि नहीं जानता, मेरे पास धनका भी अभाव है, मैं स्वभावसे भी आलसी हूँ तथा मुझसे ठीक-ठीक पूजाका सम्पादन हो भी नहीं सकता; इन सब कारणोंसे तुम्हारे चरणोंकी सेवामें जो त्रुटि हो गयी है, उसे क्षमा करना; क्योंकि कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ २॥

माँ! इस पृथ्वीपर तुम्हारे सीधे-सादे पुत्र तो बहुत-से हैं, किंतु उन सबमें मैं ही अत्यन्त चपल तुम्हारा बालक हूँ; मेरे-जैसा चंचल कोई विरला ही होगा। शिवे! मेरा जो यह त्याग हुआ है, यह तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है; क्योंकि संसारमें कुपुत्रका होना सम्भव है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ ३॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति॥ ४॥
परित्यक्ता देवा विविधविधसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम्॥ ५॥
श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटिकनकैः।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदं
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ॥ ६॥

जगदम्ब! मातः! मैंने तुम्हारे चरणोंकी सेवा कभी नहीं की, देवि! तुम्हें अधिक धन भी समर्पित नहीं किया; तथापि मुझ-जैसे अधमपर जो तुम अनुपम स्नेह करती हो, इसका कारण यही है कि संसारमें कुपुत्र पैदा हो सकता है, किंतु कहीं भी कुमाता नहीं होती॥ ४॥

गणेशजीको जन्म देनेवाली माता पार्वती! [अन्य देवताओंकी आराधना करते समय] मुझे नाना प्रकारकी सेवाओंमें व्यग्र रहना पड़ता था, इसलिये पचासी वर्षसे अधिक अवस्था बीत जानेपर मैंने देवताओंको छोड़ दिया है, अब उनकी सेवा-पूजा मुझसे नहीं हो पाती; अतएव उनसे कुछ भी सहायता मिलनेकी आशा नहीं है। इस समय यदि तुम्हारी कृपा नहीं होगी तो मैं अवलम्बरहित होकर किसकी शरणमें जाऊँगा॥ ५॥

माता अपर्णा! तुम्हारे मन्त्रका एक अक्षर भी कानमें पड़ जाय तो उसका फल यह होता है कि मूर्ख चाण्डाल भी मधुपाकके समान मधुर वाणीका उच्चारण करनेवाला उत्तम वक्ता हो जाता है, दीन मनुष्य भी करोड़ों स्वर्ण-मुद्राओंसे सम्पन्न हो चिरकालतक निर्भय विहार करता रहता है। जब मन्त्रके एक अक्षरके श्रवणका ऐसा फल है तो जो लोग विधिपूर्वक जपमें लगे रहते हैं, उनके जपसे प्राप्त होनेवाला उत्तम फल कैसा होगा? इसको कौन मनुष्य जान सकता है॥ ६॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैकपदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम्॥ ७॥
न मोक्षस्याकाङ्क्षा भवविभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः॥ ८॥
नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः।
श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव॥ ९॥

भवानी! जो अपने अंगोंमें चिताकी राख-भभूत लपेटे रहते हैं, जिनका विष ही भोजन है, जो दिगम्बरधारी (नग्न रहनेवाले) हैं, मस्तकपर जटा और कण्ठमें नागराज वासुकिको हारके रूपमें धारण करते हैं तथा जिनके हाथमें कपाल (भिक्षापात्र) शोभा पाता है, ऐसे भूतनाथ पशुपति भी जो एकमात्र 'जगदीश' की पदवी धारण करते हैं, इसका क्या कारण है? यह महत्त्व उन्हें कैसे मिला; यह केवल तुम्हारे पाणिग्रहणकी परिपाटीका फल है; तुम्हारे साथ विवाह होनेसे ही उनका महत्त्व बढ़ गया॥ ७॥

मुखमें चन्द्रमाकी शोभा धारण करनेवाली माँ! मुझे मोक्षकी इच्छा नहीं है, संसारके वैभवकी भी अभिलाषा नहीं है; न विज्ञानकी अपेक्षा है, न सुखकी आकांक्षा; अतः तुमसे मेरी यही याचना है कि मेरा जन्म 'मृडानी, रुद्राणी, शिव, शिव, भवानी'—इन नामोंका जप करते हुए बीते॥ ८॥

माँ श्यामा! नाना प्रकारकी पूजन-सामग्रियोंसे कभी विधिपूर्वक तुम्हारी आराधना मुझसे न हो सकी। सदा कठोर भावका चिन्तन करनेवाली मेरी वाणीने कौन-सा अपराध नहीं किया है! फिर भी तुम स्वयं ही प्रयत्न करके मुझ अनाथपर जो किंचित् कृपादृष्टि रखती हो, माँ! यह तुम्हारे ही योग्य है। तुम्हारी-जैसी दयामयी माता ही मेरे-जैसे कुपुत्रको भी आश्रय दे सकती है॥ ९॥

आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं
करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः
क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति॥ १० ॥

जगदम्ब विचित्रमत्र किं
परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि।
अपराधपरम्परापरं
न हि माता समुपेक्षते सुतम्॥ ११ ॥

मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथायोग्यं तथा कुरु॥ १२ ॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचितं देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

माता दुर्गे! करुणासिन्धु महेश्वरी! मैं विपत्तियोंमें फँसकर आज जो तुम्हारा स्मरण करता हूँ [पहले कभी नहीं करता रहा] इसे मेरी शठता न मान लेना; क्योंकि भूख-प्याससे पीड़ित बालक माताका ही स्मरण करते हैं॥ १० ॥

जगदम्ब! मुझपर जो तुम्हारी पूर्ण कृपा बनी हुई है, इसमें आश्चर्यकी कौन-सी बात है, पुत्र अपराध-पर-अपराध क्यों न करता जाता हो, फिर भी माता उसकी उपेक्षा नहीं करती॥ ११ ॥

महादेवि! मेरे समान कोई पातकी नहीं है और तुम्हारे समान दूसरी कोई पापहारिणी नहीं है; ऐसा जानकर जो उचित जान पड़े, वह करो॥ १२ ॥

सिद्धकुञ्जिकास्तोत्रम्

शिव उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम्।
येन मन्त्रप्रभावेण चण्डीजापः शुभो भवेत्॥ १॥
न कवचं नार्गलास्तोत्रं कीलकं न रहस्यकम्।
न सूक्तं नापि ध्यानं च न न्यासो न च वार्चनम्॥ २॥
कुञ्जिकापाठमात्रेण दुर्गापाठफलं लभेत्।
अति गुह्यतरं देवि देवानामपि दुर्लभम्॥ ३॥
गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्वति।
मारणं मोहनं वश्यं स्तम्भनोच्चाटनादिकम्।
पाठमात्रेण संसिद्ध्येत् कुञ्जिकास्तोत्रमुत्तमम्॥ ४॥

अथ मन्त्रः

ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः
ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल
ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा॥

॥ इतिमन्त्रः॥

शिवजी बोले—

देवी! सुनो। मैं उत्तम कुंजिकास्तोत्रका उपदेश करूँगा, जिस मन्त्रके प्रभावसे देवीका जप (पाठ) सफल होता है॥ १॥

कवच, अर्गला, कीलक, रहस्य, सूक्त, ध्यान, न्यास यहाँतक कि अर्चन भी (आवश्यक) नहीं है॥ २॥

केवल कुंजिकाके पाठसे दुर्गापाठका फल प्राप्त हो जाता है। (यह कुंजिका) अत्यन्त गुप्त और देवोंके लिये भी दुर्लभ है॥ ३॥

हे पार्वती! इसे स्वयोनिकी भाँति प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये। यह उत्तम कुंजिकास्तोत्र केवल पाठके द्वारा मारण, मोहन, वशीकरण, स्तम्भन और उच्चाटन आदि (आभिचारिक) उद्देश्योंको सिद्ध करता है॥ ४॥

मन्त्र—ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे॥ ॐ ग्लौं हुं क्लीं जूं सः ज्वालय ज्वालय ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे ज्वल हं सं लं क्षं फट् स्वाहा॥

नमस्ते रुद्ररूपिण्यै नमस्ते मधुमर्दिनि।
नमः कैटभहारिण्यै नमस्ते महिषार्दिनि॥ १॥

नमस्ते शुम्भहन्त्र्यै च निशुम्भासुरघातिनि॥ २॥

जाग्रतं हि महादेवि जपं सिद्धं कुरुष्व मे।
ऐंकारी सृष्टिरूपायै ह्रींकारी प्रतिपालिका॥ ३॥

क्लींकारी कामरूपिण्यै बीजरूपे नमोऽस्तु ते।
चामुण्डा चण्डघाती च यैकारी वरदायिनी॥ ४॥

विच्चे चाभयदा नित्यं नमस्ते मन्त्ररूपिणि॥ ५॥

धां धीं धूं धूर्जटेः पत्नी वां वीं वूं वागधीश्वरी।
क्रां क्रीं क्रूं कालिका देवि शां शीं शूं मे शुभं कुरु॥ ६॥

हुं हुं हुंकाररूपिण्यै जं जं जं जम्भनादिनी।

(मन्त्रमें आये बीजोंका अर्थ जानना न सम्भव है, न आवश्यक और न वांछनीय। केवल जप पर्याप्त है।)

हे रुद्रस्वरूपिणी! तुम्हें नमस्कार। हे मधु दैत्यको मारनेवाली! तुम्हें नमस्कार है। कैटभविनाशिनीको नमस्कार। महिषासुरको मारनेवाली देवी! तुम्हें नमस्कार है॥ १॥

शुम्भका हनन करनेवाली और निशुम्भको मारनेवाली! तुम्हें नमस्कार है॥ २॥

हे महादेवि! मेरे जपको जाग्रत् और सिद्ध करो। 'ऐंकार' के रूपमें सृष्टिस्वरूपिणी, 'ह्रीं' के रूपमें सृष्टिपालन करनेवाली॥ ३॥ 'क्लीं' के रूपमें कामरूपिणी (तथा निखिल ब्रह्माण्ड)-की बीजरूपिणी देवी! तुम्हें नमस्कार है। चामुण्डाके रूपमें चण्डविनाशिनी और 'यैकार' के रूपमें तुम वर देनेवाली हो॥ ४॥ 'विच्चे' रूपमें तुम नित्य ही अभय देती हो। (इस प्रकार **'ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे'**) तुम इस मन्त्रका स्वरूप हो॥ ५॥ **'धां धीं धूं'** के रूपमें धूर्जटी (शिव)-की तुम पत्नी हो। **'वां वीं वूं'** के रूपमें तुम वाणीकी अधीश्वरी हो। **'क्रां क्रीं क्रूं'** के रूपमें कालिकादेवी, **'शां शीं शूं'** के रूपमें मेरा कल्याण करो॥ ६॥ **'हुं हुं हुंकार'** स्वरूपिणी, **'जं जं जं'** जम्भनादिनी,

भ्रां भ्रीं भ्रूं भैरवी भद्रे भवान्यै ते नमो नमः॥ ७॥
अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं
धिजाग्रं धिजाग्रं त्रोटय त्रोटय दीप्तं कुरु कुरु स्वाहा॥
पां पीं पूं पार्वती पूर्णा खां खीं खूं खेचरी तथा॥ ८॥
सां सीं सूं सप्तशती देव्या मन्त्रसिद्धिं कुरुष्व मे॥
इदं तु कुञ्जिकास्तोत्रं मन्त्रजागर्तिहेतवे।
अभक्ते नैव दातव्यं गोपितं रक्ष पार्वति॥
यस्तु कुञ्जिकया देवि हीनां सप्तशतीं पठेत्।
न तस्य जायते सिद्धिररण्ये रोदनं यथा॥

इति श्रीरुद्रयामले गौरीतन्त्रे शिवपार्वतीसंवादे
*कुञ्जिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्।**
॥ ॐ तत्सत्॥

'भ्रां भ्रीं भ्रूं' के रूपमें हे कल्याणकारिणी भैरवी भवानी! तुम्हें बार-बार प्रणाम॥ ७॥

'अं कं चं टं तं पं यं शं वीं दुं ऐं वीं हं क्षं धिजाग्रं धिजाग्रं' इन सबको तोड़ो और दीप्त करो, करो स्वाहा। **'पां पीं पूं'** के रूपमें तुम पार्वती पूर्णा हो। **'खां खीं खूं'** के रूपमें तुम खेचरी (आकाशचारिणी) अथवा खेचरी मुद्रा हो॥ ८॥ **'सां सीं सूं'** स्वरूपिणी सप्तशती देवीके मन्त्रको मेरे लिये सिद्ध करो। यह कुंजिकास्तोत्र मन्त्रको जगानेके लिये है। इसे भक्तिहीन पुरुषको नहीं देना चाहिये। हे पार्वती! इसे गुप्त रखो। हे देवी! जो बिना कुंजिकाके सप्तशतीका पाठ करता है उसे उसी प्रकार सिद्धि नहीं मिलती जिस प्रकार वनमें रोना निरर्थक होता है।

इस प्रकार श्रीरुद्रयामलके गौरीतन्त्रमें शिव-पार्वती-संवादमें
सिद्धकुंजिकास्तोत्र सम्पूर्ण हुआ।

---

* (प्रतिदिन प्रातःकाल उपर्युक्त स्तोत्रका पाठ करनेसे सब प्रकारके बाधा-विघ्न नष्ट हो जाते हैं। इस कुंजिकास्तोत्र तथा देवीसूक्तके सहित सप्तशती पाठसे परम सिद्धि प्राप्त होती है।) **मारण**—काम-क्रोधनाश, **मोहन**—इष्टदेव-मोहन, **वशीकरण**—मनका वशीकरण, **स्तम्भन**—इन्द्रियोंकी विषयोंके प्रति उपरति और **उच्चाटन**—मोक्षप्राप्तिके लिये छटपटाहट—ये सभी इस स्तोत्रका इस उद्देश्यसे सेवन करनेसे सफल होते हैं।

सप्तशतीके कुछ सिद्ध सम्पुट-मन्त्र

श्रीमार्कण्डेयपुराणान्तर्गत देवीमाहात्म्यमें 'श्लोक', 'अर्धश्लोक' और 'उवाच' आदि मिलाकर ७०० मन्त्र हैं। यह माहात्म्य दुर्गासप्तशतीके नामसे प्रसिद्ध है। सप्तशती अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको प्रदान करनेवाली है। जो पुरुष जिस भाव और जिस कामनासे श्रद्धा एवं विधिके साथ सप्तशतीका पारायण करता है, उसे उसी भावना और कामनाके अनुसार निश्चय ही फल-सिद्धि होती है। इस बातका अनुभव अगणित पुरुषोंको प्रत्यक्ष हो चुका है। यहाँ हम कुछ ऐसे चुने हुए मन्त्रोंका उल्लेख करते हैं, जिनका सम्पुट देकर विधिवत् पारायण करनेसे विभिन्न पुरुषार्थोंकी व्यक्तिगत और सामूहिक रूपसे सिद्धि होती है। इनमें अधिकांश सप्तशतीके ही मन्त्र हैं और कुछ बाहरके भी हैं—

(१) *सामूहिक कल्याणके लिये—*

देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या
निश्शेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ।
तामम्बिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यां
भक्त्या नताः स्म विदधातु शुभानि सा नः ॥

(२) *विश्वके अशुभ तथा भयका विनाश करनेके लिये—*

यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो
ब्रह्मा हरश्च न हि वक्तुमलं बलं च।
सा चण्डिकाखिलजगत्परिपालनाय
नाशाय चाशुभभयस्य मतिं करोतु॥

(३) *विश्वकी रक्षाके लिये—*

या श्रीः स्वयं सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः
पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः।
श्रद्धा सतां कुलजनप्रभवस्य लज्जा
तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम्॥

(४) *विश्वके अभ्युदयके लिये—*

विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वं
विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्।
विश्वेशवन्द्या भवती भवन्ति
विश्वाश्रया ये त्वयि भक्तिनम्राः॥

(५) *विश्वव्यापी विपत्तियोंके नाशके लिये—*

देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद
प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य।
प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं
त्वमीश्वरी देवि चराचरस्य॥

(६) *विश्वके पाप-ताप-निवारणके लिये—*

देवि प्रसीद परिपालय नोऽरिभीते-
र्नित्यं यथासुरवधादधुनैव सद्यः।
पापानि सर्वजगतां प्रशमं नयाशु
उत्पातपाकजनितांश्च महोपसर्गान्॥

(७) *विपत्ति-नाशके लिये—*

शरणागतदीनार्तपरित्राणपरायणे।
सर्वस्यार्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(८) *विपत्तिनाश और शुभकी प्राप्तिके लिये—*

करोतु सा नः शुभहेतुरीश्वरी
शुभानि भद्राण्यभिहन्तु चापदः।

(९) *भय-नाशके लिये—*

(क) सर्वस्वरूपे सर्वेशे सर्वशक्तिसमन्विते।
भयेभ्यस्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते॥

(ख) एतत्ते वदनं सौम्यं लोचनत्रयभूषितम्।
पातु नः सर्वभीतिभ्यः कात्यायनि नमोऽस्तु ते॥

(ग) ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम्।
त्रिशूलं पातु नो भीतेर्भद्रकालि नमोऽस्तु ते॥

(१०) *पाप-नाशके लिये—*

हिनस्ति दैत्यतेजांसि स्वनेनापूर्य या जगत्।
सा घण्टा पातु नो देवि पापेभ्योऽनः सुतानिव॥

(११) *रोग-नाशके लिये—*

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति॥

(१२) *महामारी-नाशके लिये—*

जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥

(१३) *आरोग्य और सौभाग्यकी प्राप्तिके लिये—*

देहि सौभाग्यमारोग्यं देहि मे परमं सुखम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥

(१४) *सुलक्षणा पत्नीकी प्राप्तिके लिये—*

पत्नीं मनोरमां देहि मनोवृत्तानुसारिणीम्।
तारिणीं दुर्गसंसारसागरस्य कुलोद्भवाम्॥

(१५) *बाधा-शान्तिके लिये—*

सर्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्यमस्मद्वैरिविनाशनम्॥

(१६) *सर्वविध अभ्युदयके लिये—*

ते सम्मता जनपदेषु धनानि तेषां
तेषां यशांसि न च सीदति धर्मवर्गः।
धन्यास्त एव निभृतात्मजभृत्यदारा
येषां सदाभ्युदयदा भवती प्रसन्ना॥

(१७) *दारिद्र्यदुःखादिनाशके लिये—*

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥

(१८) *रक्षा पानेके लिये—*

शूलेन पाहि नो देवि पाहि खड्गेन चाम्बिके।
घण्टास्वनेन नः पाहि चापज्यानिःस्वनेन च॥

(१९) *समस्त विद्याओंकी और समस्त स्त्रियोंमें मातृभावकी प्राप्तिके लिये—*

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः
स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत्
का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः॥

(२०) *सब प्रकारके कल्याणके लिये—*

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(२१) *शक्ति-प्राप्तिके लिये—*

सृष्टिस्थितिविनाशानां शक्तिभूते सनातनि।
गुणाश्रये गुणमये नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(२२) *प्रसन्नताकी प्राप्तिके लिये—*

प्रणतानां प्रसीद त्वं देवि विश्वार्तिहारिणि।
त्रैलोक्यवासिनामीड्ये लोकानां वरदा भव॥

(२३) *विविध उपद्रवोंसे बचनेके लिये—*

रक्षांसि यत्रोग्रविषाश्च नागा
यत्रारयो दस्युबलानि यत्र।
दावानलो यत्र तथाब्धिमध्ये
तत्र स्थिता त्वं परिपासि विश्वम्॥

(२४) *बाधामुक्त होकर धन-पुत्रादिकी प्राप्तिके लिये—*

सर्वाबाधाविनिर्मुक्तो धनधान्यसुतान्वितः।
मनुष्यो मत्प्रसादेन भविष्यति न संशयः॥

(२५) *भुक्ति-मुक्तिकी प्राप्तिके लिये—*

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम्।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥

(२६) *पापनाश तथा भक्तिकी प्राप्तिके लिये—*

नतेभ्यः सर्वदा भक्त्या चण्डिके दुरितापहे।
रूपं देहि जयं देहि यशो देहि द्विषो जहि॥

(२७) *स्वर्ग और मोक्षकी प्राप्तिके लिये—*

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।
त्वं स्तुता स्तुतये का वा भवन्तु परमोक्तयः॥

(२८) *स्वर्ग और मुक्तिके लिये—*

सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते॥

(२९) *मोक्षकी प्राप्तिके लिये—*

त्वं वैष्णवी शक्तिरनन्तवीर्या
विश्वस्य बीजं परमासि माया।
सम्मोहितं देवि समस्तमेतत्
त्वं वै प्रसन्ना भुवि मुक्तिहेतुः॥

(३०) *स्वप्नमें सिद्धि-असिद्धि जाननेके लिये—*

दुर्गे देवि नमस्तुभ्यं सर्वकामार्थसाधिके।
मम सिद्धिमसिद्धिं वा स्वप्ने सर्वं प्रदर्शय॥

श्रीदेवीजीकी आरती

जगजननी जय! जय!! (मा! जगजननी जय! जय!!)
भयहारिणि, भवतारिणि, भवभामिनि जय! जय!! जग०
तू ही सत-चित-सुखमय शुद्ध ब्रह्मरूपा।
सत्य सनातन सुन्दर पर-शिव सुर-भूपा॥ १ ॥ जगजननी०
आदि अनादि अनामय अविचल अविनाशी।
अमल अनन्त अगोचर अज आनँदराशी॥ २ ॥ जग०
अविकारी, अघहारी, अकल, कलाधारी।
कर्त्ता विधि, भर्त्ता हरि, हर सँहारकारी॥ ३ ॥ जग०
तू विधिवधू, रमा, तू उमा, महामाया।
मूल प्रकृति विद्या तू, तू जननी, जाया॥ ४ ॥ जग०
राम, कृष्ण तू, सीता, व्रजरानी राधा।
तू वांछाकल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा॥ ५ ॥ जग०
दश विद्या, नव दुर्गा, नानाशस्त्रकरा।
अष्टमातृका, योगिनि, नव नव रूप धरा॥ ६ ॥ जग०
तू परधामनिवासिनि, महाविलासिनि तू।
तू ही श्मशानविहारिणि, ताण्डवलासिनि तू॥ ७ ॥ जग०
सुर-मुनि-मोहिनि सौम्या तू शोभाऽऽधारा।
विवसन विकट-सरूपा, प्रलयमयी धारा॥ ८ ॥ जग०
तू ही स्नेह-सुधामयि, तू अति गरलमना।
रत्नविभूषित तू ही, तू ही अस्थि-तना॥ ९ ॥ जग०
मूलाधारनिवासिनि, इह-पर-सिद्धिप्रदे।
कालातीता काली, कमला तू वरदे॥ १० ॥ जग०
शक्ति शक्तिधर तू ही नित्य अभेदमयी।
भेदप्रदर्शिनि वाणी विमले! वेदत्रयी॥ ११ ॥ जग०
हम अति दीन दुखी मा! विपत-जाल घेरे।
हैं कपूत अति कपटी, पर बालक तेरे॥ १२ ॥ जग०
निज स्वभाववश जननी! दयादृष्टि कीजै।
करुणा कर करुणामयि! चरण-शरण दीजै॥ १३ ॥ जग०

श्रीअम्बाजीकी आरती

जय अम्बे गौरी मैया जय श्यामागौरी।
तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिव री॥ १ ॥ जय अम्बे०
माँग सिंदूर विराजत टीको मृगमदको।
उज्ज्वलसे दोउ नैना, चंद्रवदन नीको॥ २ ॥ जय अम्बे०
कनक समान कलेवर रक्ताम्बर राजै।
रक्त-पुष्प गल माला, कण्ठनपर साजै॥ ३ ॥ जय अम्बे०
केहरि वाहन राजत, खड्ग खपर धारी।
सुर-नर-मुनि-जन सेवत, तिनके दुखहारी॥ ४ ॥ जय अम्बे०
कानन कुण्डल शोभित, नासाग्रे मोती।
कोटिक चंद्र दिवाकर सम राजत ज्योती॥ ५ ॥ जय अम्बे०
शुम्भ निशुम्भ विदारे, महिषासुर-घाती।
धूम्रविलोचन नैना निशिदिन मदमाती॥ ६ ॥ जय अम्बे०
चण्ड मुण्ड संहारे, शोणितबीज हरे।
मधु कैटभ दोउ मारे, सुर भयहीन करे॥ ७ ॥ जय अम्बे०
ब्रह्माणी, रुद्राणी तुम कमलारानी।
आगम-निगम-बखानी, तुम शिव पटरानी॥ ८ ॥ जय अम्बे०
चौंसठ योगिनि गावत, नृत्य करत भैरूँ।
बाजत ताल मृदंगा औ बाजत डमरू॥ ९ ॥ जय अम्बे०
तुम ही जगकी माता, तुम ही हो भरता।
भक्तनकी दुख हरता सुख सम्पति करता॥ १० ॥ जय अम्बे०
भुजा चार अति शोभित, वर-मुद्रा धारी।
मनवाञ्छित फल पावत, सेवत नर-नारी॥ ११ ॥ जय अम्बे०
कंचन थाल विराजत अगर कपुर बाती।
(श्री) मालकेतुमें राजत कोटिरतन ज्योती॥ १२ ॥ जय अम्बे०
(श्री) अम्बेजीकी आरति जो कोइ नर गावै।
कहत शिवानँद स्वामी, सुख सम्पति पावै॥ १३ ॥ जय अम्बे०

देवीमयी

तव च का किल न स्तुतिरम्बिके !
सकलशब्दमयी किल ते तनुः।
निखिलमूर्तिषु मे भवदन्वयो
मनसिजासु बहिःप्रसरासु च॥
इति विचिन्त्य शिवे ! शमिताशिवे !
जगति जातमयत्नवशादिदम्।
स्तुतिजपार्चनचिन्तनवर्जिता
न खलु काचन कालकलास्ति मे॥

'हे जगदम्बिके! संसारमें कौन-सा वाङ्मय ऐसा है, जो तुम्हारी स्तुति नहीं है; क्योंकि तुम्हारा शरीर तो सकलशब्दमय है। हे देवि! अब मेरे मनमें संकल्पविकल्पात्मक रूपसे उदित होनेवाली एवं संसारमें दृश्यरूपसे सामने आनेवाली सम्पूर्ण आकृतियोंमें आपके स्वरूपका दर्शन होने लगा है। हे समस्त अमंगलध्वंसकारिणि कल्याणस्वरूपे शिवे! इस बातको सोचकर अब बिना किसी प्रयत्नके ही सम्पूर्ण चराचर जगत्‌में मेरी यह स्थिति हो गयी है कि मेरे समयका क्षुद्रतम अंश भी तुम्हारी स्तुति, जप, पूजा अथवा ध्यानसे रहित नहीं है। अर्थात् मेरे सम्पूर्ण जागतिक आचार-व्यवहार तुम्हारे ही भिन्न-भिन्न रूपोंके प्रति यथोचितरूपसे व्यवहृत होनेके कारण तुम्हारी पूजाके रूपमें परिणत हो गये हैं।'

—महामाहेश्वर आचार्य अभिनवगुप्त